BIHAR YOGA

नव योगिनी तन्त्र

महिलाओं के लिए योग साधना पद्धति

स्वामी मुक्तानन्द

प्रत्यक्ष मार्गदशन – स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, मुंगेर, बिहार, भारत

नव योगिनी तन्त्र

नव योगिनी तन्त्र

महिलाओं के लिए योग साधना पद्धति

स्वामी मुक्तानन्द

प्रत्यक्ष मार्गदर्शन

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, मुंगेर, बिहार, भारत

बिहार योग विद्यालय द्वारा
योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट द्वारा

प्रथम प्रकाशन 1977
द्वितीय संस्करण 1982
संशोधित संस्करण 2000
पुनर्मुद्रण 2003, 2005, 2014

ISBN: 978-81-86336-15-1

© बिहार योग विद्यालय 2000

प्रकाशक एवं वितरक—योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट,
मुंगेर, बिहार, भारत
मुद्रक—थॉमसन प्रेस (इंडिया) लिमिटेड,
नई दिल्ली

वेबसाइट : www.biharyoga.net

योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट से लिखित अनुमति के बिना इस पुस्तक के किसी भी अंश का अन्यत्र मुद्रण या अन्य किसी रूप में प्रयोग वर्जित है।

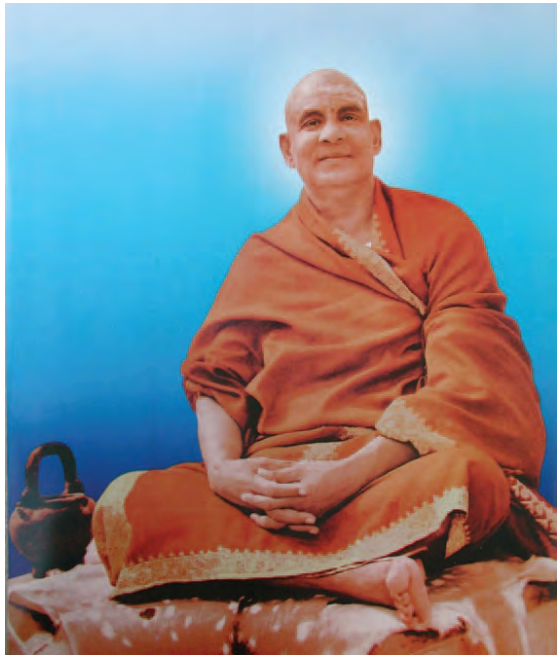

सविनय समर्पण

स्वामी शिवानन्द सरस्वती के चरणों में
जिन्होंने स्वामी सत्यानन्द सरस्वती को योग के रहस्यों की शिक्षा दी

नमो नारायण

योगविद्या भारतवर्ष की सबसे प्राचीन संस्कृति और जीवन-पद्धति है तथा इसी विद्या के बल पर भारतवासी प्राचीनकाल में सुखी, समृद्ध और स्वस्थ जीवन बिताते थे। जब से भारत में योग विद्या का ह्रास हुआ, तभी से भारतवासी गरीब, दु:खी और अस्वस्थ हैं। पूजा-पाठ, धर्म-कर्म से शान्ति मिलती है और योगाभ्यास से धन-धान्य, समृद्धि और स्वास्थ्य। भारत में सुख, समृद्धि, शक्ति और स्वास्थ्य के लिए हर व्यक्ति को योगाभ्यास करना चाहिए।

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती
रिखियापीठ, 2005

विषय सूची

नारी और अध्यात्म

नारी और अध्यात्म	3
नारी शरीर	9
योग शरीर	20
मासिक चक्र	32
रजोदर्शन एवं रजोनिवृत्ति	43
नारीत्व की विकास प्रक्रिया	57
आद्या शक्ति	68
विवाह	77
अन्य विकल्प	86
आत्म स्थित भगवती	97

कुछ विशेष प्रयुक्तियाँ

पीठ दर्द	109
विषाद	117
सिर दर्द	135
श्वेत प्रदर	143
ऋतुस्राव सम्बन्धी अनियमिततायें	151
मोटापा	158
गर्भावस्था	168
भ्रंश	190
मूत्र-प्रणाली के रोग	194
अपस्फीत शिरा	201

नारियों के लिए योग साधना

साधना के लिए मार्गदर्शन	209
प्रारम्भिक अभ्यासियों के लिए	211
मध्यम वर्ग के अभ्यास	222
उच्च अभ्यास	235

समर्पण

सम्पूर्ण नारी जाति को
पूरब हो या पश्चिम
वृद्धा हो या युवा
रत रही हैं जो सेवा में स्वामी सत्यानन्द की
जो कर रही हैं सेवा, या
जिन्होंने की है सेवा
उनके परिव्रजन काल में
आश्रम जीवन में
उनके महती उद्देश्य में
संन्यासिन, शिष्यायें या कि भक्तिनें
उन सभी
समस्त नारी स्वरूपों को
जिनसे सीखा है बहुत-बहुत
और जिनसे प्रतिसन्तुलन
हुआ है पुष्पित, पल्लवित
और जिनके स्नेह से दीप्त हुआ है प्रबोध-दीप

नारी और अध्यात्म

नारी और अध्यात्म

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

तन्त्र में शक्ति के दो महत्त्वपूर्ण ध्रुव-शिव और शक्ति माने गये हैं। वस्तुत: शिव और शक्ति ब्रह्माण्ड तथा प्रत्येक व्यक्ति में विभिन्न रूपों में क्रियाशील रहते हैं। साधारण मानव समाज में पुरुष और स्त्री क्रमश: शिव और शक्ति का प्रतिनिधित्व करते हैं। सार्वभौमिक चेतना में काल और स्थान, शिव और शक्ति पक्षों का निरूपण करते हैं। आध्यात्मिक जीवन में मन तथा प्राण शिव और शक्ति के प्रतिरूप हैं। हठयोग से सम्बन्धित शास्त्रों में इन दोनों शक्तियों का उल्लेख इड़ा और पिंगला के रूप में किया गया है। इड़ा को चेतना का और पिंगला को जीवनी शक्ति या प्राण का प्रतिनिधि माना गया है।

ये दोनों शक्तियाँ ऊर्जा के दो विपरीत ध्रुव हैं। सामान्यतया ये दोनों कभी एक नहीं होतीं, किन्तु सृजन के क्षणों में ये एक बिन्दु पर एक-दूसरे में समाहित हो जाती हैं। सार्वभौमिक चेतना में काल एवं स्थान केन्द्र पर आकर मिलते हैं और उनका आपस में विलय होता है, तब पदार्थ में विस्फोट होता है। यहाँ काल और स्थान में क्रमश: धनात्मक एवं ऋणात्मक शक्तियाँ प्रतिबिम्बित हैं।

सजगता की अवस्थाएँ

साधारण मानव समाज में पुरुष और स्त्री शक्ति के दो भिन्न ध्रुव हैं। प्राचीन तान्त्रिक शास्त्रों में शक्ति के इन ध्रुवों का विस्तृत विवेचन किया गया है। सम्भवत: आपने एक चित्र देखा होगा, शिव जमीन पर चित्त लेटे हुए हैं और लगभग पूरी तरह नग्न काली का एक पैर उनके शरीर पर है। काली की मुद्रा भयंकर है। रक्तरंजित जिह्वा और गले में एक सौ आठ मुण्डों की माला। यह काली की जाग्रत अवस्था है। हो सकता है आपने एक अत्यन्त दुर्लभ चित्र

भी देखा हो, जिसमें शिव पद्मासन में बैठे हुए हैं। इसमें उनका आधा शरीर शिव का और आधा शरीर शक्ति का है। एक और चित्र में आपने शिव को गुरु एवं पार्वती को शिष्या रूप में बैठे देखा होगा। शिव पद्मासन में बैठे हुए हैं तथा पार्वती नीचे की वेदी पर आसीन। यहाँ शिव तन्त्र के रहस्यों का उद्घाटन कर रहे हैं। ये तीन उदाहरण हुए। एक चौथा उदाहरण भी है जिसके विषय में आपने सुना होगा। मुंगेर से लगभग एक सौ दस मील दूर स्थित तन्त्र का एक महत्त्वपूर्ण केन्द्र है, तारापीठ। यहाँ आप देखेंगे कि शिव शक्ति का स्तन-पान कर रहे हैं।

विकास और जागृति के विभिन्न स्तरों पर शिव तथा शक्ति के ये विभिन्न सम्बन्ध हैं। एक स्थिति में शक्ति शिष्या है और शिव गुरु हैं, अर्थात् स्त्री शिष्या है और पुरुष गुरु है। दूसरे स्तर पर दोनों में कोई अन्तर नहीं है, शिव और शक्ति एक-दूसरे से संयुक्त हैं–एक शरीर, एक आकार और एक मनोभाव में संयुक्त हैं। विकास का एक अन्य स्तर है जहाँ शक्ति सर्वोपरि है और शिव उनके अनुयायी। ये सब प्रत्येक व्यक्ति के अन्दर सहज रूप से विद्यमान रहने वाली शक्ति की जाग्रत अवस्थाओं की दार्शनिक व्याख्याएँ हैं।

स्त्रियों में आध्यात्मिक जागृति

जहाँ तक तन्त्र दीक्षा का सम्बन्ध है, तान्त्रिक परम्परा के अनुसार स्त्री को पुरुष से श्रेष्ठ माना गया है, किन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि सामाजिक स्तर पर ऐसा कोई दावा किया जा सकता है। यह तो महत्तर चेतना के विकास से सम्बन्धित विशुद्ध आध्यात्मिक दृष्टिकोण है। निश्चय ही नारी शरीर, उसकी भावनायें और उसकी चेतना का विकास, पुरुष की अपेक्षा श्रेष्ठतर है। पुरुष शरीर की अपेक्षा नारी शरीर में आध्यात्मिक शक्ति, अर्थात् कुण्डलिनी का जागरण अत्यधिक सरलता से होता है।

इसके अतिरिक्त हमें एक और महत्त्वपूर्ण बात ध्यान में रखनी चाहिए। सामान्यत: एक पुरुष जब चेतना की गहराइयों में प्रवेश करता है और पुन: वापस लौटता है तब वह उन अनुभवों को अपने साथ लौटा लाने में सक्षम नहीं होता, परन्तु स्त्री ऐसा कर पाती है। मुझे ऐसा लगता है कि स्त्री की आन्तरिक एवं बाह्य जागरूकता में बहुत कम अन्तर होता है। जब आप अपनी चेतना में बहुत गहरे उतरते हैं तो आपको कुछ निश्चित अनुभव होते हैं। किन्तु जब आप मन की उस सूक्ष्म अवस्था में जागरूकता की स्थूल स्थिति में वापस

आते हैं तो उन सूक्ष्म अनुभवों और चेतन मन के बीच एक आवरण पड़ जाता है। स्त्री के साथ ऐसा नहीं होता। इसके साथ ही आध्यात्मिक रूप से स्त्री का चेतन अस्तित्व अत्यधिक आवेशित रहता है। एक स्त्री या एक बालिका की जो बाह्याभिव्यक्ति आप देखते हैं, वास्तव में वह सौन्दर्य के प्रति उसके प्रेम, उसकी सौम्यता, संवेदनशीलता, सहृदयता, उसके अवबोध आदि की आन्तरिक अभिव्यक्ति होती है। मैं प्राय: विनोदपूर्वक कहता हूँ कि यदि इस संसार में स्त्रियाँ न रहें तो यह संसार एक मरुभूमि के समान हो जायेगा। यहाँ न रंग होंगे, न सुगन्ध होगी, न मुस्कान होगी और न ही सौन्दर्य होगा। यह इंगित करता है कि स्त्री की आन्तरिक सजगता अत्यन्त सुग्राह्य होती है और विस्फोट के लिए सदा प्रस्तुत!

कुण्डलिनी योग के क्षेत्र में भी नारी शरीर एक विशेष केन्द्र के द्वारा आविष्ट रहता है। पुरुष शरीर में मूलाधार चक्र अन्यान्य अवयवों की जकड़नों के बीच स्थित होता है। पुरुष मूलबन्ध का अभ्यास करते हैं, किन्तु कोई परिवर्तन नहीं होता। इसके विपरीत स्त्री के शरीर में स्थित मूलाधार को अंगुली द्वारा अनुभव किया जा सकता है। इसलिए पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों में जागरूकता जल्दी आती है।

एक महत्त्वपूर्ण बात यह भी कि सदा से स्त्री शक्ति की वाहिका रही है और पुरुष महज एक माध्यम। एक स्त्री केवल आपकी पत्नी ही नहीं होती, वह आपकी माता, पुत्री या शिष्या भी हो सकती है। मरियम, ईसामसीह की माता थी। श्री अरविन्द आश्रम की 'माँ' एक शिष्या थीं। इसी प्रकार तान्त्रिक परम्परा में चौंसठ योगिनियों की कथा वर्णित है। शाब्दिक दृष्टि से 'योगिनी' योगी का स्त्रीलिंग रूप है। इन योगिनियों की पूजा पूरे भारत में होती है। स्त्री शक्ति के चौंसठ रूपों के लिए चौंसठ मन्दिर हैं। उनमें से एक आसाम में और दूसरा कोलकाता में काली घाट में स्थित है।

तन्त्र में भूमिका

वाम मार्ग में शक्ति का महत्त्व यौन सम्बन्धी जीवन में ही नहीं, बल्कि आध्यात्मिक अभ्यासों में, सृजनात्मक प्रक्रियाओं में और आध्यात्मिक अनुष्ठानों में भी है। हिन्दुओं के सभी अनुष्ठान, धार्मिक या अन्य, मुख्यत: स्त्रियों द्वारा ही सम्पन्न किये जाते हैं, पुरुष केवल उनका साथ देते हैं। स्त्री समादेष्टा होती है और पुरुष उसका सहभागी। सामान्य सामाजिक उत्सव हो, धार्मिक उत्सव हो,

किसी देवी-देवता की पूजा हो या एक दिवसीय उपवास हो, स्त्री ही सबका कार्यान्वयन करती है। पुरुष केवल उसका साथ देता है। भारत में यह परम्परा है, जिसे स्त्री द्वारा पुरुष को दीक्षा की परम्परा के रूप में जाना जाता है।

अब प्रश्न यह है कि वाम मार्ग है क्या? यह अध्यात्म का वह मार्ग है जिसमें अपने साथी के साथ चला जा सकता है। इसका दूसरा विभाग कौलाचार कहलाता है। इसके अन्तर्गत माता अपने पुत्र को दीक्षा देती है।

इस प्रकार की दीक्षा का केन्द्र विशेष रूप से बिहार के उत्तरी भाग में स्थित है। उत्तर में नेपाल की सीमाओं तक, पूर्व में आसाम और पश्चिम में उत्तर प्रदेश के क्षेत्रों में कौलाचार दीक्षा आज भी प्रचलित है। इस परम्परा के अनुसार माता अपने पुत्र के लिए एक देवी के समान होती है। जिस प्रकार ईसाई प्रत्येक रविवार को गिरिजाघर जाते हैं, हिन्दू हर सुबह मन्दिर जाकर अपने देवी-देवता के सम्मुख नतमस्तक होते हैं या किसी विशेष प्रकार की पूजा करते हैं, ठीक उसी प्रकार के भाव के साथ पुत्र अपनी माता के पास जाता है।

यह सम्मान वैसा नहीं जो सामाजिक मान्यताओं पर आधारित हो, बल्कि यह एक आध्यात्मिक आराधना है। पुत्र मात्र इसलिए सम्मान नहीं करता कि वह उसकी माता है, बल्कि इसलिए कि वह उसकी गुरु है।

ऐसा ही वाम मार्ग में भी होता है, किन्तु इसमें वह पुत्र नहीं, बल्कि एक सहभागी होता है जो स्त्री के सम्मुख साष्टांग प्रणत होता है और तब स्त्री उसे आध्यात्मिक प्रतीक या आशीर्वाद सूचक प्रतीक प्रदान करती है। यह क्रिया स्त्री द्वारा पुरुष के लिए की जाती है, पुरुष द्वारा स्त्री के लिए नहीं।

इस प्रकार तन्त्र में स्त्री की ये दो महत्त्वपूर्ण भूमिकाएँ हैं। तन्त्र में स्त्री को केवल यौनाचार में साझीदार समझना एक दु:खद भूल है। यौन जीवन महत्त्वपूर्ण है, किन्तु पुरुष और स्त्री के बीच केवल यही एक सम्बन्ध नहीं होता। आखिर आपकी माता, पुत्री, पत्नी, सभी तो स्त्रियाँ ही हैं।

स्त्री की प्रमुखता

तन्त्र में दीक्षा देने की भूमिका पुरुष के स्थान पर स्त्री को प्राप्त होती है। रामकृष्ण परमहंस ने अपनी पत्नी शारदा को सदा देवी माना। संस्कृत में देवी का अर्थ होता है प्रबुद्ध, प्रदीप्त या ज्योतिर्मय। जब रामकृष्ण का विवाह हुआ तब वे अल्पवयस्क थे और उनकी पत्नी तो शिशु ही थीं, किन्तु वे सदैव उन्हें देवी मानते रहे। उन्होंने उनके प्रति उसी प्रकार का व्यवहार किया और उसी रूप में माना।

विकास की प्रक्रिया में शक्ति पहले आती है और शिव उनके बाद। यदि आप इस प्रवृत्ति के साथ आध्यात्मिक पथ पर चलें तो आप पायेंगे कि आपकी पत्नी, पुत्री या शिष्या सक्रिय कारक हैं और आप मात्र उनके सहयोगी हैं। यदि एक पुरुष उच्चतर चेतना की अवस्था तक पहुँच भी जाता है, फिर भी उसके लिये बिना किसी स्त्री की सहायता के अपनी अनुभूतियों को अन्य लोगों तक सम्प्रेषित कर पाना कठिन कार्य है।

हठयोग में परिकल्पना

तन्त्र के सम्बन्ध में हमें एक और बात याद रखनी चाहिए कि इसका एक अन्य मार्ग भी है जिसे दक्षिण मार्ग या वैदिक तन्त्र कहा जाता है। इसमें स्त्री पुत्री या माता अथवा पत्नी या किसी भी रूप में आवश्यक नहीं होती, क्योंकि माना यह जाता है कि इस मार्ग पर चलने वाले अभीप्सु के अन्दर दोनों शक्तियाँ विद्यमान हैं। इड़ा स्त्री और पिंगला पुरुष शक्ति है। मन और प्राण का मिलन स्त्री और पुरुष के मिलन के समान माना जाता है। हठयोग की यही परिकल्पना है।

इड़ा शक्ति है और पिंगला शिव। जब ये दोनों आज्ञाचक्र में मिलते हैं तो वास्तविक मिलन होता है। शक्ति मूलाधार में स्थित होती है। शिव सहस्रार में आसीन होते हैं। यहाँ शिव निष्क्रिय, निर्लिप्त, निराकार और नामहीन होकर अनन्त योगनिद्रा में होते हैं। सृजन या विनाश से उनका कोई सम्बन्ध नहीं होता। इस अवस्था में उनकी चेतना समरूप और सम्पूर्ण होती है। सहस्रार में कोई कम्पन या स्पन्दन नहीं होता। शक्ति मूलाधार में होती है और आप योग के अभ्यास से उसे जाग्रत करते हैं। जाग्रत होकर वह सुषुम्ना से होती हुई आज्ञाचक्र तक पहुँचती है। शक्ति के आज्ञा चक्र में पहुँचने पर दोनों का मिलन होता है।

शिव का नृत्य

जब दो शक्तियाँ एक-दूसरे की निकटता प्राप्त करती हैं, तब मिलन होता है। जब आप स्विच दबाते हैं तो बिजली का प्रकाश जल उठता है, क्योंकि बिजली के तारों का सम्बन्ध स्विच से होता है। उसी प्रकार जब आज्ञा चक्र में मिलन होता है तो साथ ही विस्फोट होता है। इसके फलस्वरूप आज्ञाचक्र में उत्पन्न शक्ति सहस्रार तक जाती है। वहाँ शिव और शक्ति का मिलन होता है और तब शिव नृत्य प्रारम्भ कर देते हैं। शायद आपने नटराज का चित्र देखा होगा। वह जाग्रत शिव की प्रतीकात्मक अभिव्यक्ति है।

अपनी गहन योगनिद्रा से जब शिव जागते हैं तब वे नृत्य आरम्भ करते हैं। मैं यहाँ शरीर की नहीं, बल्कि एक शक्ति की चर्चा कर रहा हूँ। शिव का नर्तक रूप 'नटराज' मनुष्य में उसी शक्ति के जागरण का प्रतीक है। तत्पश्चात् शिव और शक्ति उसी मार्ग से मूलाधार तक अवतरित होते हैं। दोनों संयुक्त रूप से सांसारिकता के स्थूल स्तर पर उतर आते हैं। यही वह मार्ग है जिसके माध्यम से सन्त गण समय-समय पर हम लोगों तक आते हैं। यदि आप कभी श्री अरविन्द का दर्शन पढ़ेंगे तो शक्ति का जागरण, शिव से उनका मिलन, दोनों के युगल नृत्य और फिर हमारे अस्तित्व के स्तर पर उनके अवतरण को समझ पायेंगे। इसीलिए हमारे क्रियायोग में आरोहण और अवरोहण के ये दो मार्ग बतलाए गये हैं।

नवीन समाज

आध्यात्मिक क्षेत्र में स्त्री की भूमिका तो पारिभाषित की गई, किन्तु आधुनिक संस्कृतियों में स्त्रियों की स्थिति इससे बहुत भिन्न है। सम्पूर्ण विश्व में लोग अपने अपराध और पाप से लड़ रहे हैं। यदि आप स्त्रियों की सम्माननीय आद्य अवस्था को पुनर्जीवित करना चाहते हैं तो आपको अपनी मनोवृत्ति में पूर्ण परिवर्तन लाना होगा। वस्तुत: सामाजिक संरचना को धार्मिक वास्तविकताओं की नई अवधारणा का ऐसा आधार देना होगा जिसमें मनुष्य के आध्यात्मिक विकास में स्त्री की भूमिका को अच्छी तरह समझा और स्वीकार किया गया हो। नये समाज के उद्‌भव के लिए यह परम आवश्यक है।

नारी शरीर

किसी जाति के उस सदस्य को जैविक अर्थ में स्त्री कहा जाता है जो गर्भ धारण करती है। हालाँकि सामान्य व्यवहार में इस शब्द का अधिक व्यापक प्रयोग होने लगा है, क्योंकि इसके अर्थ के साथ ऐसी विशेषताएँ भी जुड़ गयी हैं जो इसकी विशुद्ध जीव विज्ञान जनित व्याख्या से भिन्न हैं। आजकल बालिका के रूप में उत्पन्न होने पर उससे केवल गर्भ धारण की क्षमता की अपेक्षा नहीं रखी जाती, बल्कि यह भी अपेक्षा की जाती है कि वह कुछ विशेष प्रकार के मनोवैज्ञानिक आचरण के लक्षण भी प्रदर्शित करेगी।

इन विशेषताओं और आचरणों का निर्धारण भिन्न-भिन्न संस्कृतियों में भिन्न-भिन्न आधार पर होता है और समय के साथ उनमें भी परिवर्तन आते-जाते हैं। अत: यह स्पष्ट है कि उनकी विशेषताओं का निर्धारण केवल जैविक आधार पर नहीं, बल्कि सामाजिक मान्यताओं पर भी निर्भर होता है। इससे यह स्पष्ट है कि नारी कहने का तात्पर्य केवल उसके शरीर से नहीं, बल्कि पूर्ण रूप से विकसित व्यक्ति की मनोवैज्ञानिक विशेषताओं से भी होता है।

विभिन्न संस्कृतियों में स्त्रियों की छवि और आदर्शों की जो रूपरेखा निश्चित की गई है उसमें समानता प्रतीत होती है। इस रूपरेखा को अंकित करने के पूर्व हम स्त्रीत्व का जैविक अर्थ में परीक्षण करेंगे।

मूल कारण

पुरुष एवं स्त्री में होने वाले विकास की भिन्नता को जीवित प्राणियों की सूक्ष्मतम इकाई – कोशिका के अध्ययन द्वारा देख सकते हैं। प्रत्येक कोशिका में सूत्र जैसी सूक्ष्म संरचनाएँ होती हैं जिन्हें गुण-सूत्र कहते हैं। गुण-सूत्रों के साथ

'जीन' होते हैं जिनमें कोड के रूप में ऐसी सूचनाएँ अन्तर्निहित होती हैं जो यह निर्धारित करती हैं कि प्राणी पुरुष होगा या स्त्री। सभी सामान्य मानव कोशिकाओं में बाईस जोड़े ऐसे गुण-सूत्र होते हैं जो उनके अलैंगिक लक्षणों का निर्धारण करते हैं। इन्हें 'ग' गुण-सूत्र कहा जाता है। एक जोड़ा गुणसूत्र ऐसा होता है जो मनुष्य के लिंग तथा उससे सम्बन्धित लक्षणों को निर्धारित करता है। इस प्रकार कुल तेईस जोड़े गुण-सूत्र होते हैं।

मानव शरीर की सभी कोशिकाओं में कुल तेईस जोड़े गुण-सूत्र होते हैं, किन्तु स्त्री के एक डिम्ब तथा पुरुष के एक शुक्राणु से ही पूर्ण कोशिका बनती है। गर्भधारण के समय उद्‌भूत हुई यह कोशिका वह मौलिक इकाई है जिसके द्वारा भावी मनुष्य के शरीर की सभी कोशिकाओं का निर्माण होता है।

प्रत्येक स्त्री डिम्ब में भावी जीव के लिए आधे गुण-सूत्र होते हैं। जीव के लिंग का निर्धारण करने वाले जोड़ों में जो गुण-सूत्र डिम्ब में रहते हैं वे केवल 'ग' प्रकार के होते हैं और इसे 'ग' गुण-सूत्र कहा जाता है। शुक्राणु में शेष आधे गुण-सूत्र होते हैं जो या तो 'ग' प्रकार के होते हैं या 'अ' प्रकार के। बच्चे का लिंग निर्धारण शुक्राणु पर निर्भर रहता है, क्योंकि यदि इसके 'ग' गुणसूत्र का सायुज्य डिम्ब से होता है तो उससे 'ग ग' गुणसूत्र जोड़ा उत्पन्न होता है। इस स्थिति में वह मानव जीव स्त्री शरीर धारण करेगा। यदि शुक्राणु का 'अ' गुणसूत्र सक्रिय होता है तो 'ग अ' गुणसूत्रों का जोड़ा बनेगा और परिणामस्वरूप उत्पन्न होने वाला प्राणी पुरुष होगा।

इस प्रकार हम देखते हैं कि मानव शरीर के छियालीस गुण-सूत्रों में से पैंतालीस गुण-सूत्र दोनों लिंगों में समान होते हैं, केवल एक गुण-सूत्र में अन्तर होता है। इस अन्तर के कारण दोनों लिंगों में जो भिन्नताएँ होती हैं उन्हें अधिकतर व्यक्ति बढ़ा-चढ़ाकर देखते हैं और स्वयं को भ्रमित कर पार्थक्य को तूल देते तथा यह भूल जाते हैं कि दोनों लिंगों में कितनी अधिक समानताएँ हैं।

स्त्री और पुरुष

प्रजनन अंगों के अतिरिक्त पुरुष एवं स्त्री के शरीरों की संरचना समान होती है। उनमें जो न्यूनाधिक अन्तर होते भी हैं, वे नगण्य होते हैं। इनमें सर्वाधिक उल्लेखनीय अन्तर है स्त्रियों के अपेक्षाकृत कम क्षमता वाले फेफड़ों का। दोनों में परिसंचरण तन्त्र एक जैसा होता है, किन्तु स्त्री में यह अधिक मजबूत

प्रतीत होता है, तभी तो उसे दिल का दौरा पड़ने और उससे सम्बन्धित रोगों की आशंका कम होती है। यद्यपि स्त्रियों और पुरुषों में स्नायु तन्त्र समान होता है, फिर भी कहा जाता है कि पुरुषों का मस्तिष्क बड़ा होता है। यदि शरीर के अनुपात में देखा जाय तो यह पता चलता है कि वस्तुत: स्त्री का मस्तिष्क ही बड़ा होता है।

कुल मिलाकर स्त्री की हड्डियाँ पुरुष की अपेक्षा अधिक हल्की और कोमल होती हैं। हालाँकि दोनों के अस्थि-पिंजरों में इतनी समानता होती है कि वैज्ञानिक नि:शंक होकर इसका निर्धारण नहीं कर सकते हैं कि पिंजर विशेष किसी स्त्री का है या पुरुष का। सामान्यत: पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों का कंधा कम चौड़ा और झुका हुआ होता है। अधिकतर पुरुषों के नितम्ब उनके कन्धों से पतले होते हैं, जबकि अधिकतर स्त्रियों में नितम्ब उनके वक्ष और कन्धों से चौड़े होते हैं या बराबर होते हैं। यह सत्य है कि स्त्रियों के पैर उनकी कुल लम्बाई के अनुपात में पुरुषों की अपेक्षा छोटे होते हैं। यद्यपि बाल्यकाल में लिए गये भोजन और उस समय किए गये व्यायामों पर भी यह सब बहुत निर्भर रहता है।

सामान्यत: स्त्रियाँ पुरुषों की अपेक्षा कम मांसल होती हैं, विशेषकर वक्ष क्षेत्र में। स्त्रियों की मांसपेशियों में वसा ऊतक अधिक होते हैं। उनके आकार और कठोरता का विकास पुरुष शरीर के समान नहीं होता है। फिर भी यदि स्त्रियाँ पुरुषों जैसे कार्य लगातार करें तो उनकी मांसपेशियों का वैसा ही विकास सम्भव है।

सार्वभौमिक रूप से यह मान लिया गया है कि पुरुष सबल होते हैं और स्त्रियाँ अबला। संरचनात्मक रूप से पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों के अधिक सबल होने के प्रमाणों के बावजूद इस बात को दुहराया जाता है। स्त्रियाँ अधिक दिनों तक जीवित रहती हैं। प्रत्येक आयु वर्ग में स्त्रियों की अपेक्षा पुरुषों की मृत्यु दर अधिक होती है। कम स्त्रियाँ ही व्रण (अल्सर) से पीड़ित होती हैं और उन्हें कम ही दिल का दौरा पड़ता है। अब ऐसा माना जाने लगा है कि पुरुषों में हृदय रोग की प्रवणता का सम्बन्ध उनके वृषणों में उत्पन्न होने वाले हार्मोनों से है। आँकड़ों से यह पता चलता है कि स्त्रियों में कठिनाइयों और तनावों को सहन करने की ताकत अधिक होती है तथा शारीरिक रूप से पुरुषों की तरह वे कोमल भी नहीं होती हैं। ऐसा कहा जाता है कि पुरुष अधिक ताकतवर होते हैं, किन्तु स्त्रियाँ अधिक मजबूत होती हैं।

हॉर्मोन तन्त्र

अन्त:स्रावी तन्त्र स्नायु तन्त्र के साथ-साथ चलता है और एक 'दूत प्रणाली' के समान विभिन्न आन्तरिक क्रियाओं में सामंजस्य स्थापित करता है। इसके अन्तर्गत विभिन्न प्रकार के रसायन, जिन्हें हॉर्मोन कहा जाता है, विशेष नलिका विहीन ग्रन्थियों के द्वारा सीधे रक्तधारा में नि:स्रवित हो जाते हैं। तब ये हॉर्मोन पूरे शरीर के सभी भागों में संचरित होकर शरीर की वृद्धि, उसके गठन और आकार पर अद्भुत प्रभाव डालते हैं। वे स्त्रियों की मनोदशा, मानसिक शक्तियों, जीवन के प्रति उनकी अभिवृत्ति, ऊर्जा और व्यक्तित्व का निर्माण करते हैं।

ये नलिकाविहीन ग्रन्थियाँ हैं–पीयूषिका, पीनियल, अवटु, परावटु, अग्नाशय, थाइमस, एड्रीनल ग्रन्थियाँ तथा जनन ग्रन्थियाँ। ये प्राय: सभी दो-दो की संख्या में होती हैं ताकि उनमें से एक यदि क्षतिग्रस्त या रोगग्रस्त हो जाय तो दूसरी शरीर की आवश्यकताओं को पूरा करे। प्रत्येक ग्रन्थि की क्रियाओं का एक-दूसरे से घनिष्ठ सम्बन्ध होता है। विभिन्न हॉर्मोनों की अन्त:क्रियाएँ इस तन्त्र का महत्त्वपूर्ण पक्ष है। इस प्रकार किसी एक ग्रन्थि में भी यदि कोई विकार उत्पन्न हो जाय तो स्त्री के सम्पूर्ण शरीर तथा उसके मनोभावों पर गम्भीर प्रभाव पड़ता है।

पीयूषिका मटर के दाने के आकार की ग्रन्थि है जो मस्तिष्क के नीचे स्थित होती है। यह ऐसी प्रमुख ग्रन्थि है जो विभिन्न हॉर्मोनों की सहायता से अन्य सभी ग्रन्थियों पर नियन्त्रण रखती है। स्त्री का प्रजनन चक्र भी इसी के द्वारा नियन्त्रित होता है। यह शरीर के अन्दर जल और लवण के बीच के सन्तुलन को भी नियन्त्रित करती है। ऋतुस्राव से सम्बन्धित द्रव अवरोधन का जो अनुभव अनेक स्त्रियों को समय-समय पर होता है वह भी इसी ग्रन्थि के कारण होता है। मस्तिष्क वृन्त में मेरुदण्ड के सबसे ऊपर स्थित इस पीयूषिका के कारण स्नायु एवं हार्मोन तन्त्र तनाव के प्रति अत्यन्त संवेदनशील होते हैं। इस ग्रन्थि में उत्पन्न होने वाले असन्तुलन का अनुभव शरीर के अनेक भागों में किया जा सकता है। एक स्त्री मासिक धर्म के आवर्तन के समय इसका स्पष्ट अनुभव करती है।

पीनियल ग्रन्थि चेतना को सहज रूप से एक अवस्था से दूसरी अवस्था (जागृति से निद्रा, निद्रा से स्वप्न) में पहुँचाने तथा आध्यात्मिक क्रियाओं के लिए उत्तरदायी होती है। बालक और बालिकाओं की शारीरिक परिपक्वता तथा वयस्कों में भावनात्मक स्थिरता इस ग्रन्थि पर निर्भर रहती है। सेरोटोनीन

नामक एक पीनियल हॉर्मोन की अपर्याप्तता सभी आयु की स्त्रियों में अन्तर्जात अवसाद का कारण बन जाती है। यह समस्या सभी आयुवर्ग की स्त्रियों में होती हैं।

अवटु ग्रन्थियों (थॉयरॉयड) द्वारा चयापचय, शारीरिक वृद्धि और रक्त की संरचना का नियन्त्रण होता है। यह विभिन्न अंगों एवं तन्त्रों को सक्रिय या अवरुद्ध कर शरीर के अन्दर की जैविक घड़ी का नियमन करती है। तितली के आकार की यह ग्रन्थि गले के सामने श्वास नली के दोनों ओर स्थित होती है। अवटु के अधिक सक्रिय होने पर स्त्री का वजन घटता है, वह घबरायी हुई, चिड़चिड़ी और क्रुद्ध रहती है। इसकी अपर्याप्त सक्रियता से स्त्री का वजन बढ़ता है, वह आलसी, रुआँसी और निराशावादी हो जाती है। अन्य चक्रों पर भी विपरीत प्रभाव पड़ता है।

परावटु ग्रन्थियाँ बहुत छोटी होती हैं और श्वास नली के दोनों ओर दो-दो की संख्या में लगी हुई रहती हैं। यद्यपि ये अवटु से घिरी हुई होती हैं, फिर भी ये स्वतन्त्र रूप से अस्थि वृद्धि एवं कैल्शियम और फॉस्फोरस के वितरण का नियन्त्रण करती हैं।

थाइमस वक्ष के बीच में स्थित होती है। बच्चों की वृद्धि के स्वरूप का नियन्त्रण करने में इसका विशेष महत्त्व होता है। यद्यपि वयस्कों में इसका उतना महत्त्व नहीं, फिर भी एलर्जी तथा रोगों का संक्रमण होने पर प्रतिरक्षण प्रतिक्रियाओं में इसकी महत्त्वपूर्ण भूमिका अब ज्ञात हो चुकी है। थाइमस के असन्तुलित होने पर शरीर की प्रतिरोधकता एवं भावनात्मक स्थिरता कम हो जाती है।

एड्रीनल ग्रन्थियाँ प्रत्येक गुर्दे के ऊपरी सिरे से जुड़ी रहती हैं। इनके बीच के भाग (मज्जा) से एड्रिनेलिन एवं नारएड्रिनेलिन उत्पन्न होते हैं, जो रक्तचाप, श्वसन, ऑक्सीजन की खपत तथा 'लड़ो या भागो' जैसी प्रतिक्रियाओं को प्रभावित करते हैं। इन हॉर्मोनों की अतिशयता उच्च रक्तचाप तथा परिसंचरण सम्बन्धी समस्याएँ उत्पन्न कर देती है। पाचन सम्बन्धी विकार उत्पन्न हो जाता है, निरन्तर भय और चिन्ता सताने लगते हैं। एड्रिनेलिन कॉर्टेक्स से ऐसे स्टेरॉयड उत्पन्न होते हैं जो यकृत, गुर्दों, प्रजनन अंगों, रक्तचाप, प्रोटीन पाचन तथा शर्करा एवं वसा के चयापचय को प्रभावित करते हैं। इस प्रकार के किसी रोग में निश्चित रूप से अनुपयुक्त कार्टिजोन का उत्पादन होने लगता है।

अग्नाशय में लैंगरहैंस की द्वीपिकाएँ होती हैं जिनमें पाचक रस और इन्सुलिन हॉर्मोन उत्पन्न होते हैं जो रक्त शर्करा को नियन्त्रण में रखते हैं। इन्सुलिन उत्पादन के बाधित होने से अनेक जटिलताओं के साथ मधुमेह रोग हो जाता है।

प्रजनन ग्रन्थियाँ प्रजनन तन्त्र का अंग होती हैं। पुरुषों में वृषण एवं पुरस्थ तथा स्त्रियों में डिम्बाशय से ऐसे हॉर्मोन उत्पन्न होते हैं जो लैंगिक अन्तर एवं परिपक्वता के लिए आवश्यक होते हैं। स्त्रियों में डिम्ब ग्रन्थियों से ओएस्ट्रोजन और प्रोजेस्ट्रोन उत्पन्न होते हैं जो ऋतुस्राव को नियमित रखते हैं। इन हॉर्मोनों के असन्तुलित होने से प्रजनन सम्बन्धी गड़बड़ी, भावनात्मक संवेदनशीलता, चिन्ता और विषाद उत्पन्न हो जाते हैं। स्त्रियों में इन हॉर्मोनों का उत्पादन अन्य ग्रन्थियों, जैसे पीयूषिका की प्रतिपुष्टि से नियन्त्रित होता है और यह स्नायविक उद्वेग एवं भावनात्मक तनाव के प्रति संवेदनशील होते हैं।

स्त्री और पुरुष, दोनों में लिंग सम्बन्धी हॉर्मोनों के साथ सभी हॉर्मोन विद्यमान रहते हैं, किन्तु उनमें हॉर्मोन का सन्तुलन स्तर भिन्न होता है। टेस्टोस्टेरोन तथा अन्य पुरुष हॉर्मोनों को ऐन्ड्रोजेन कहते हैं। स्त्रियों में ये हॉर्मोन ओएस्ट्रोजेन कहलाते हैं। दोनों लिंगों में एड्रीनल ग्रन्थियों से प्रचुर मात्रा में एन्ड्रोजेन एवं ओएस्ट्रोजेन उत्पन्न होते हैं। ओएस्ट्रोजेन को किसी विशेष क्रिया से सम्बद्ध नहीं किया जा सकता है। दोनों लिंगों में एन्ड्रोजेन शारीरिक स्तरों पर लैंगिक तनाव उत्पन्न करता है।

पीयूषिका ग्रन्थि के प्रभाव से यौवनारम्भ पर सम्पूर्ण अन्त:स्रावी तन्त्र एवं विभिन्न हॉर्मोनों की अन्त:प्रतिक्रियाओं में परिवर्तन आता है। पुरुषों में वृषणों की परिपक्व क्रियाओं के साथ ही ऐन्ड्रोजेन और ओएस्ट्रोजेन के बीच का सन्तुलन यौवन से छियालीस प्रतिशत रहता है। स्त्री शरीर में ऐन्ड्रोजेन और ओएस्ट्रोजेन का अनुपात छियालीस से चौवन प्रतिशत होता है तथा इस सन्तुलन का निर्धारण डिम्बाशय करता है। इस स्थिति का परीक्षण करने पर इन दोनों लिंगों के बीच की समानता उतनी ही विचित्र प्रतीत होती है जितनी उनकी भिन्नता।

यौवनारम्भ के समय हॉर्मोनों के सन्तुलन में होने वाले परिवर्तन से ही प्रजनन तन्त्र में विकास होता है जिससे पुरुष और स्त्री के बीच के अन्तर अधिक स्पष्ट हो जाते हैं। पुरुषों के शरीर में टेस्टोस्टेरोन के प्रचुर उत्पादन से ही लैंगिक अंगों में परिपक्वता आती है, गले की आवाज भारी हो जाती है

तथा शरीर पर बाल एवं दाढ़ी उग आते हैं। स्त्रियों के शरीर में ओएस्ट्रोजेन की अधिकता से स्तनों का विकास होता है और श्रोणि प्रदेश चौड़ा हो जाता है। इसके परिणामस्वरूप शरीर के विभिन्न भागों पर चर्बी की परतें जमा हो जाती हैं जिससे परिपक्व स्त्री का विशेष रूप से गोलमोल आकार बनता है, किन्तु साथ ही इनके गले की आवाज में उच्च तारता बनी रहती है।

प्रोजेस्टेरोन नामक हॉर्मोन स्त्री जीवन में लम्बी अवधि तक डिम्ब क्षरण और ऋतुस्राव को संचालित रखता है। यह चक्र स्त्री के शरीर क्रिया विज्ञान का अत्यन्त नाटकीय पक्ष है जो स्त्री एवं पुरुष शरीर के बीच का महत्त्वपूर्ण अन्तर है।

प्रजनन सम्बन्धी ग्रन्थियों के अतिरिक्त स्त्री शरीर उन्हीं ग्रन्थियों और हॉर्मोनों से उत्प्रेरित होता है जिनसे पुरुष शरीर। फिर भी स्त्री शरीर हॉर्मोनों के मामले में पुरुषों से अधिक जटिल होता है। ऋतुस्राव के कारण केवल अन्त:स्रावी सन्तुलन परिवर्तनशील नहीं रहता, बल्कि सभी अन्त:स्रावी ग्रन्थियाँ घनिष्ठ रूप से एक-दूसरे से जुड़ी रहती हैं, जिससे निरन्तर होते रहने वाले इस परिवर्तन का प्रभाव स्त्री के शरीर और उसकी भावनाओं पर देखा जा सकता है। अत: स्त्रियों को ग्रन्थि तन्त्र एवं उसकी कार्यप्रणालियों की जानकारी होना अत्यन्त आवश्यक एवं महत्त्वपूर्ण है।

प्रजनन तन्त्र

मानव जाति के स्त्री और पुरुष शरीरों में लिंग सूचक मूल लक्षणों के साथ अन्य लक्षणों में भी अन्तर होता है, जैसे–स्त्रियों में वर्धित स्तन तथा पुरुषों के पूरे शरीर पर अधिक बाल और उनकी भारी आवाज, दोनों की अस्थियों के अनुपात का अन्तर एवं शरीर के विभिन्न अंगों पर चर्बी के वितरण का अन्तर। सर्वाधिक स्पष्ट अन्तर जननेन्द्रियों और जननांगों में होता है। स्त्रियों में भग शिश्निका, योनि, गर्भाशय, डिम्ब वाहिनी नली और डिम्बाशय होते हैं। पुरुष प्रजनन तन्त्र के विभिन्न अंग, शिश्न, वृषण, पुरस्थ, ग्रन्थि, शुक्र वाहक और शुक्राशय हैं। स्त्री प्रजनन तन्त्र में ऐसे अवयवों का समूह होता है जिनका सम्बन्ध गर्भधारण एवं शिशु की उत्पत्ति से होता है। इसके मुख्य अवयव डिम्बाशय, डिम्बवाहिनी, गर्भाशय, योनि और भग शिश्निका हैं।

भग–जननेन्द्रिय का बाहरी हिस्सा भग के नाम से जाना जाता है। यह दो जोड़े मांसल ओष्ठों से बना होता है, बाहर का वृहत् भगोष्ठ और अन्दर का

लघु भगोष्ठ। ये दोनों योनि मुख को घेरे रहते हैं। भग शिश्निका भग के ठीक ऊपर स्थित एक उद्घर्षी अंग है। यह पुरुषों के शिश्न से इस अर्थ में समान होता है कि उत्तेजित होने पर इसका आकार बढ़ जाता है। यह शिश्नाग्रछद जैसे छद से ढँका रहता है। स्त्रियों में शिश्निका का सम्बन्ध कामोत्तेजना और उससे प्राप्त होने वाले आनन्द से होता है, किन्तु प्रजनन में इसकी कोई क्रियात्मक भूमिका नहीं होती है।

योनि–लघु भगोष्ठों को अलग करने पर दो छिद्र दिखाई देते हैं, ऊपर का छोटा छिद्र मूत्र द्वार और नीचे का बड़ा छिद्र योनि द्वार है। योनि एक नली के समान होती है जो गर्भाशय से जुड़ी होती है। वह स्थान जहाँ योनि और गर्भाशय मिलते हैं, उसे गर्भाशय ग्रीवा कहते हैं। यूँ तो सामान्य रूप से योनि की लम्बाई तीन इंच होती है, किन्तु उसमें अत्यधिक प्रसार की क्षमता होती है। योनि का कार्य है पुरुष-शिश्न को धारण करना और शुक्र प्रवाह को मार्ग देना। संभोग के समय गर्भाशय ग्रीवा पीछे की तरफ खिंच जाती है और योनि की लम्बाई भी पीछे की तरफ बढ़ जाती है जिससे वहाँ एक गर्त बन जाता है और उसी में शुक्र जमा होता है। संभोग के बाद गर्भाशय ग्रीवा उस गर्त में संचित शुक्र में डूब जाती है जिससे शुक्र को गर्भाशय तथा डिम्बवाहिनी नली में जाने का मार्ग मिल जाता है।

अधिकतर ऐसी बालिकाएँ जिन्होंने संभोग नहीं किया है, उनके योनि द्वार पर एक पतली पारदर्शक झिल्ली होती है जिसे योनिच्छद कहते हैं। पूर्ण संभोग के पूर्व इस योनिच्छद का टूटना आवश्यक है। प्राय: प्रथम संभोग के समय ही यह झिल्ली टूटती है, किन्तु उसके पहले भी ऐसा हो सकता है। योनिच्छद का न होना यह कदापि सिद्ध नहीं करता कि बालिका कुँआरी नहीं, फिर भी झिल्ली की उपस्थिति निश्चित रूप से कुँवारेपन का संकेत देती है।

गर्भाशय–गर्भाशय नाशपाती के आकार का होता है और इसकी लम्बाई लगभग तीन इंच की होती है। योनि इसे शरीर के बाहरी भाग से जोड़ती है। इसकी दीवारें स्त्री शरीर की सबसे मजबूत मांसपेशियों की बनी होती हैं। इसका बाहरी स्तर झिल्लीदार और भीतरी स्तर श्लेष्मायुक्त होता है। गर्भाशय प्राय: आगे की ओर झुका रहता है और गर्भाशय ग्रीवा पीछे की ओर। जब भ्रूण बन जाता है, तब वह गर्भाशय में अपने लिए स्थान बना लेता है। गर्भाशय में शिशु की वृद्धि और विकास के अनुसार अपने आकार से कई गुना बढ़ जाने की क्षमता होती है।

डिम्बवाहिनी नलियाँ–उदर के भीतर गर्भाशय के दोनों ओर एक-एक पतली नली होती है जिसे डिम्बवाहिनी नली कहते हैं। बाहर की ओर मुड़ कर इसका अन्तिम सिरा झब्बेदार तुरही के समान हो जाता है जो डिम्बाशय से सटा रहता है। डिम्बाशय से निकला हुआ डिम्ब इन्हीं नलियों के द्वारा नीचे उतरता है। इन डिम्बवाहिनी नलियों की लम्बाई लगभग चार इंच होती है और जहाँ पर ये गर्भाशय में प्रवेश करती हैं वहाँ इनकी मोटाई एक केश से अधिक नहीं होती है। डिम्ब को इस नली से होकर गर्भाशय तक जाने में तीन-चार दिन लग जाते हैं जब कि डिम्ब एक या डेढ़ दिन तक ही जीवित रह पाता है। यदि उसका निषेचन नहीं हो पाता है तो वह गर्भाशय में पहुँचने के पूर्व ही विखण्डित हो जाता है। यदि निषेचित हुआ तो वह गर्भाशय में रोपित हो जाता है।

डिम्बाशय–एक डिम्बाशय लगभग गोलाकार होता है। इसकी लम्बाई प्राय: एक इंच होती है और इसका वजन लगभग तीन ग्राम होता है। स्त्री के शरीर में गर्भाशय के दोनों ओर एक-एक डिम्बाशय होता है। इनमें सूक्ष्म डिम्ब उत्पन्न होते हैं। प्रत्येक चार सप्ताह के अन्तराल पर किसी भी एक डिम्बाशय से एक डिम्ब परिपक्व होकर निकलता है। ऐसा माना जाता है कि दोनों डिम्बाशय बारी-बारी से डिम्ब उत्पन्न करते हैं, किन्तु यह निश्चित भी नहीं है, कभी ऐसा भी होता है कि दो डिम्ब निकल पड़ें और दोनों ही निषेचित हो जायें। ऐसी स्थिति में जुड़वाँ बच्चे उत्पन्न होते हैं। डिम्ब के निकलने की प्रक्रिया को डिम्बक्षरण कहते हैं। पीयूषिका हॉर्मोनों से उद्दीपित होकर डिम्बाशय ओएस्ट्रोजेन और प्रोजेस्टेरोन हॉर्मोन उत्पन्न करते हैं, जो ऋतुस्राव का नियन्त्रण करते हैं।

विस्तीर्ण तन्तु–दोनों ओर डिम्बवाहिनी नली, डिम्बाशय, गर्भाशय की रक्तवाहिनियाँ और शिराएँ एक साथ ऊतक की चौड़ी पट्टी पर स्थित होती हैं। यह पट्टी गर्भाशय से होती हुई श्रोणि प्रदेश के बगल की दीवाल तक जाती है, इसे विस्तीर्ण तन्तु कहते हैं। उदर का अस्तर बनाने वाली झिल्ली से ही इसका भी निर्माण होता है।

स्तन–स्तनों का सीधा सम्बन्ध प्रजनन से नहीं होता है, किन्तु ये नवजात शिशु के परिपोषण के स्रोत हैं। ये शरीर की लयात्मकता के सूचक भी हैं। ग्रन्थियों के एक जोड़े के रूप में स्तन वक्ष के दोनों ओर स्थित होते हैं। इनमें ग्रन्थियुक्त ऊतक होते हैं जिनमें दूध उत्पन्न होकर निस्सरित होता है। यह दूध वाहिनियों द्वारा चूचुक तक आता है जो उद्घर्षी ऊतकों का बना होता है। इसमें

अनेक छिद्र होते हैं जिनके द्वारा शिशु दूध चूसता है। चूसने की क्रिया दूध के स्रवण को उद्दीपित करती है। माँ का दूध बच्चे को प्रतिरक्षित तो करता ही है, यह उसकी आवश्यकता और पाचन शक्ति के अनुकूल भी होता है।

स्तन अत्यन्त संवेदनशील होते हैं। चूचुक उत्तेजित होने पर उर्ध्व और कड़े हो जाते हैं। स्तनों का ऋतुस्राव से प्रभावित होना भी असामान्य नहीं है। अनेक स्त्रियाँ यह अनुभव करती हैं कि ऋतुस्राव के तुरन्त पहले उनके स्तनों का आकार बढ़ जाता है और उनमें भारीपन आ जाता है। किन्तु एक दो दिनों में ये सामान्य स्थिति में आ जाते हैं।

ऋतुस्राव

किसी भी संस्थान की पूर्णता उसमें सम्मिलित अंगों की समष्टि से अधिक होती है, और यह बात विशेषकर स्त्रियों के प्रजनन तन्त्र के लिए सर्वथा सत्य है। पीयूषिका ग्रन्थि के निर्देश पर यह तन्त्र हारमोनीय छन्द के अनुसार कार्य करता है जिसके परिणामस्वरूप डिम्बक्षरण एवं ऋतुस्राव होता है। यही सूक्ष्म रूप से स्त्री के स्वास्थ्य और उसकी भावनाओं को भी प्रभावित करता है। बाद के अध्याय में आप ऋतुस्राव और उसकी सार्थकता पर विस्तृत चर्चा पाएँगे।

भय का प्रतिकार

एक स्त्री को अपने सम्पूर्ण शरीर की क्रियाओं की जानकारी होनी चाहिए, विशेषकर प्रजनन तन्त्र की, जो जैविक रूप से उसके स्त्रीत्व की प्रमुख विशेषता है। योग की दृष्टि से यह क्षेत्र मूलाधार चक्र से प्रभावित रहता है जो आद्या शक्ति का स्थान है तथा आध्यात्मिक तत्त्वों का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण केन्द्र भी है। अनेक यौगिक साधनाओं के लिए मूलाधार के स्थान का संवेदनशील होना पूर्वापेक्षित होता है।

प्रजनन अंगों की आन्तरिक स्थिति को जान लेना इतना सरल नहीं होता है। अनेक स्त्रियाँ सर्वाधिक होने वाले शारीरिक परिवर्तनों का अनुभव तो करती हैं, किन्तु उनके कारणों से अनभिज्ञ रहती हैं। स्त्रियों में यौन सम्बन्धी बातों से जुड़ी रहस्यात्मकता, लज्जा एवं अन्धविश्वास ने उनके अज्ञान को और भी बढ़ा दिया है। हम लोगों ने स्त्रियों को अपने शरीर के प्रति अधिक संवेदनशील तथा जागरूक होने में सहायता करने के लिए इसे भी अपनी चर्चा में सम्मिलित किया है। यद्यपि स्त्री की व्यक्तिगत अनुभूतियाँ ही उसके अपने शरीर के ज्ञान

का वास्तविक आधार हैं, फिर भी प्रमाणिक शरीर क्रिया विज्ञान, जो मात्र एक रूपरेखा है, उन अनुभूतियों के स्पष्टीकरण में सहायक होता है।

अपने शरीर की क्रियाओं को समझते हुए उनके प्रति संवेदनशील होकर ही स्त्री भय का प्रतिकार कर सकती है। इससे उसमें आत्मविश्वास भी उत्पन्न होता है। इसके अतिरिक्त शरीर की लयात्मकता और स्वास्थ्य सम्बन्धी ज्ञान के आधार पर शरीर में उत्पन्न होने वाले किसी रोग या विकार का जल्दी पता चल जाता है। इस प्रकार की सजगता प्रत्येक स्त्री में होती है, किन्तु उनमें से कुछ ने स्वयं को इतना संवेदनशील बना लिया है कि उन्हें मात्र शारीरिक परिवर्तन का नहीं, बल्कि अन्दर होने वाले सूक्ष्म शक्ति के प्रवाह का भान भी हो जाता है। अपने शरीर की शक्ति का ज्ञान तथा शक्ति का संवेद्य नियन्त्रण प्रत्येक स्त्री का जन्मसिद्ध अधिकार है।

योग शरीर

यौगिक शरीर क्रिया विज्ञान भौतिक शरीर का क्रिया विज्ञान नहीं, बल्कि आत्मिक या सूक्ष्म शरीर का क्रिया विज्ञान है; यह हमारे शरीर का वह आयाम है जो भौतिक आँखों से नहीं दिखता है। यह अतीन्द्रिय जैविकी को चित्रित कर 'भौतिक शरीर संरचना ही नियति है' जैसी उक्ति में एक नया आयाम जोड़ता है, जिसके द्वारा हम बोधातीत सजगता प्राप्त कर पाते हैं। यही उस सूक्ष्म शक्ति की रूपरेखा का ज्ञान है जो प्रत्येक स्त्री की चेतना के सजग विकास में उसके भौतिक शरीर की भूमिका समझने के योग्य बनाता है।

पंच कोश

योगियों द्वारा गुह्य शरीर क्रिया विज्ञान के ज्ञान की प्राप्ति से यह ज्ञात होता है कि मानव शरीर के अन्दर पाँच आयाम विद्यमान हैं। इन्हें पंचकोश कहते हैं। ये आत्मा के ऊपर के आवरण हैं। कोश संस्कृत का एक शब्द है जिसका अर्थ होता है 'आवरण'।

यदि आप हाथ में दस्ताने पहन लें तो वह एक आवरण होगा। योग की दृष्टि में ऐसे पाँच आवरण आत्मा को ढँके रहते हैं। यह आत्मा अनन्त चेतना का स्फुलिंग और हमारे अस्तित्व का कारण और सार तत्त्व भी है। आत्मा से बाहर की ओर, अदृश्य से दृश्य की ओर, सूक्ष्म से स्थूल की ओर जाने में ये आवरण आनन्दमय, विज्ञानमय, मनोमय, प्राणमय और अन्नमय हैं। इस सन्दर्भ में 'मय' का अर्थ है 'से बने' और आवरण या अस्तित्व के ये आयाम क्रमशः आनन्द, अन्तर्ज्ञान, प्रतिभा ऊर्जा एवं आहार से बने हुए हैं।

आनन्दमय कोश विशुद्ध आनन्द का आयाम है, विज्ञानमय कोश महत्तर ज्ञान का आवरण है जो अन्तर्दृष्टि के रूप में स्फुरित होता है और जो विलक्षणता का स्फुलिंग है। मनोमय कोश मन का आयाम है जिसमें है बुद्धि, स्मृति, धारणा एवं विवेक। प्राणमय कोश प्राण से बना हुआ है, वह प्राणिक ऊर्जा जो शरीर को सक्रिय रखती और मन को प्रेरित करती है। अन्नमय कोश भौतिक शरीर है, इसे यह नाम दिया गया है, क्योंकि यह 'अन्न' पर निर्भर रहता है, अनाज या मोटे आहार पर।

अस्तित्व के ये सभी आवरण या आयाम एक-दूसरे में अन्तर्व्याप्त होते हैं तथा पारस्परिक प्रभाव डालते हैं। ये सब एक ही प्रदीप्त चेतना की विभिन्न अभिव्यक्तियाँ हैं। ये तब तक एक-दूसरे से वियुक्त नहीं होते जब तक कि हमारी सजगता अत्यन्त स्थूल आयामों की सीमा में न जकड़ जाय, और हमारी प्राकृतिक तथा अतिप्राकृतिक अवधारणाओं एवं क्षमताओं के बीच एक कृत्रिम विभाजन न उत्पन्न कर दे। हमारी सभी साधनाओं का लक्ष्य इन पाँचों आवरणों और इनके अन्दर छिपी परमानन्दमय आत्मा के प्रति स्वयं को सजग बनाना होता है।

इन आयामों का अन्तर वस्तुत: एक ही पदार्थ के परिष्करण एवं विस्तार का विभिन्न स्तर है। प्रत्येक आवरण ऊर्जा निर्मित है जो भिन्न-भिन्न गतियों पर स्पन्दित होती है। भौतिक आवरण में न्यूनतम स्पन्दन होता है। ज्यों-ज्यों हम इन कोशों के माध्यम से अन्दर की ओर बढ़ते हैं, यह स्पन्दन तब तक त्वरित और सूक्ष्म होता जाता है जब तक कि वह विशुद्ध चेतना में विलीन न हो जाये। ऊर्जा ही चेतना का गत्यात्मक रूप है और चेतना ऊर्जा का स्थितिज रूप। यही कारण है कि हमारे अस्तित्व का प्रत्येक स्तर प्रत्यक्ष-ज्ञान, अनुभूति, चिन्तन और सजगता के अपने विशेष गुण से सम्पन्न होता है। प्राणों का स्पन्दन, चेतना की प्राञ्जलता, परिष्करण एवं उसकी व्यापकता का प्रतिबिम्ब है। इसे समझने के लिए जल से इसकी तुलना की जा सकती है। प्राणों के विभिन्न स्पन्दनों के लिए हम जल की विभिन्न अवस्थाओं को ले सकते हैं। सामान्यत: जल एक द्रव के रूप में होता है। घनीभूत कर देने पर यह ठोस हो जाता है। उसी प्रकार हम भौतिक शरीर को स्थूल ऊर्जा, 'घनीभूत' ऊर्जा कह सकते हैं जिसमें ऊर्जा की गति इतनी नगण्य होती है कि हम उस ऊर्जा के स्वरूप को ही नहीं समझ पाते हैं।

जब हम बर्फ को गर्म करते हैं तो उसके अन्दर की ऊर्जा गतिशील होती है और बर्फ जल बन जाता है। जल की प्रवाहमानता उसकी प्रमुख विशेषता

है। प्राणमय कोश के साथ भी यही बात है। ऊर्जा की नदियों में प्राण प्रवाहित होता है। यदि जल को गर्म किया जाय तो हमें वाष्प प्राप्त होती है। जैसे जल बर्फ से अधिक गतिशील है वैसे ही वाष्प जल से अधिक गतिशील है। हमारे विचार आश्चर्यजनक गति के साथ गतिमान रहते हैं और हमारे अस्तित्व का यह आयाम मनोमय कोश के अनुरूप है। वाष्प जल की अपेक्षा द्रुतगामी ही नहीं, बल्कि अधिक समर्थ भी होती है। वाष्प की एक छोटी-सी मात्रा जल की उतनी ही मात्रा से कहीं अधिक प्रभावशाली होती है। उदाहरण के लिए प्रेशर कुकर एवं वाष्प इंजन को ले सकते हैं। उसी प्रकार मनोमय कोश निम्नतर आयामों की अपेक्षा अधिक शीघ्रता एवं प्रबलता से कार्य करता है और इसकी पहुँच भी अधिक दूर तक है।

वाष्प के बाद आकाश है। यह अत्यन्त सूक्ष्म गैस है, अत्यन्त विरलीभूत वायुमण्डल। किसी सुगन्ध की विशेषता से हम आकाश की विशेषता को जान सकते हैं। जब कोई व्यक्ति इत्र लगाकर एक कमरे में प्रवेश करता है तो हमें तुरन्त उसकी सुगन्धि मिल जाती है, क्योंकि आकाश सभी दिशाओं में व्याप जाता है। उसी प्रकार विज्ञानमय कोश सर्वव्यापी है।

आनन्दमय कोश अस्तित्व की ऐसी अवस्था है जिसके अनुरूप भौतिक स्तर पर हमारे पास कोई शब्द नहीं है। अस्तित्व का यह अवर्णनीय बोधातीत आयाम हमारी परम्परा का एक अंग है जो हममें से प्रत्येक द्वारा प्राप्त किये जाने की प्रतीक्षा कर रहा है।

योग के मार्ग पर एक अभिव्यक्ति का उल्लेख प्राय: किया जाता है, 'चेतना का विस्तार करना'। यहाँ इस अभिव्यक्ति से तात्पर्य यह है कि चेतना का इतना विस्तार हो जिसमें पाँचों कोशों का समावेश हो जाये। जब हम साधना करते हैं तो उस प्राण के स्पन्दन को बढ़ाते तथा परिष्कृत करते हैं जिससे हमारा अस्तित्व निर्मित हुआ है। इसके द्वारा हमारी प्रत्येक अनुभूतियाँ और भावनाएँ हमारे विचार और हमारी पूर्वाभिधारणाएँ भी अधिक परिष्कृत एवं विस्तृत हो जाती हैं।

जब हमारा ऊर्जा स्तर निम्न होता है और स्पन्दन स्थूल होते हैं तो हम केवल अपने भौतिक शरीर के प्रति ही सजग रह पाते हैं। हमारी सारी भावनाएँ एवं चिन्तन हमारी शारीरिक इच्छाओं तथा कष्टों में ही बँध कर रह जाते हैं। ज्यों-ज्यों हम अपनी ऊर्जा को सघन करते जाते हैं, हमारी चेतना का आयाम महत् से महत्तर होता जाता है। हम अपने प्राण और मन के आध्यात्मिक क्षेत्र

के प्रति सजग हो जाते हैं, हम अपने विचारों को नियन्त्रित कर पाते हैं और अपनी सृजनात्मकता को जागृत कर सकते हैं। चेतना के आयाम में अधिक विस्तार होने पर हमें अन्तर्ज्ञान प्राप्त होने लगते हैं और हम 'मन से परे' के अनुभवों को प्राप्त करने लगते हैं, यानी हमारे अन्तर में आध्यात्मिकता का प्रस्फुटन होने लगता है।

ऊर्जा सरिताएँ

कोशों के बहुआयामी स्वरूप का एक साथ परिपोषण प्राण की प्रमुख धाराओं के द्वारा होता है। शरीर और मन के अन्दर प्राण के प्रवाह मार्ग को 'नाड़ी' कहते हैं। जब से शास्त्रों का संस्कृत से अंग्रेजी में अनुवाद हो रहा है नाड़ी को स्नायु के रूप में अनूदित किया जा रहा है, किन्तु यह उपयुक्त नहीं है। नाड़ियाँ स्नायु तन्त्र का अंग नहीं हैं। नाड़ी का अर्थ है 'प्रवाह'। संस्कृत में प्रवाह के अर्थ में नाड़ी शब्द का प्रयोग किया जाता है, जिसमें प्रवाह हो वह नाड़ी है। इसमें क्या प्रवाहित होता है, यह अन्य बात है, किन्तु धारा के प्रवाह को नाड़ी कहते हैं। नदी में जल प्रवाहित होता है, शरीर की नाड़ियों में प्राण प्रवाहित होता है, ऊर्जा प्रवाहित होती है।

स्नायु तन्त्र के अतिरिक्त शरीर में ऊर्जा के प्रवाह मार्ग का जाल बिछा हुआ है जिन्हें नाड़ी कहते हैं। इनकी कल्पना हम ऊर्जा सरिताओं के रूप में कर सकते हैं जो शरीर और मन में प्रवाहित हो रही हैं।

योग के मनस्तात्विक शरीर क्रिया विज्ञान के अनुसार शरीर में 72,000 नाड़ियाँ होती हैं। इनमें से चौदह प्रमुख हैं तथा इन चौदह में से तीन अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं–इड़ा, पिंगला एवं सुषुम्ना।

अब इन नाड़ियों को कैसे समझा और ढूँढा जाय? अब तक किसी भी चिकित्सक को शल्य क्रिया के क्रम में कोई नाड़ी नहीं मिली है। हम एक नाड़ी को किसी बोतल में नहीं रख सकते। यदि हम नाड़ियों को रक्त नलिका या स्नायु के समान मानें तो वे हमें कभी नहीं मिलेंगी। फिर भी, चूँकि हम विच्छेदन के क्रम में नाड़ी को देख नहीं पाते हैं, तो इसका अर्थ यह नहीं कि नाड़ी होती ही नहीं।

बातें करते समय यदि आप मेरा गला काटें तो वहाँ शब्दों को नहीं पायेंगे। आप एक शब्द का विच्छेदन नहीं कर सकते, आप एक शब्द को प्रतिदर्श की बोतल में नहीं रख सकते, आप अपने व्याकरण को सुधारने के लिए

किसी प्रकार की शल्य क्रिया नहीं करवा सकते। फिर भी आपको शब्दों के अस्तित्व में कोई शंका नहीं और आपको पूरा विश्वास है कि आपमें उनका उपयोग करने की क्षमता है। इसी प्रकार विचारों को दिखाया नहीं जा सकता। विशेषज्ञों ने मस्तिष्क पर अनेक जटिल शल्यक्रियाएँ की हैं, किन्तु कोई भी विचारों को अपने हाथों में लेकर नहीं दिखा पाया। फिर भी आपको इसमें सन्देह नहीं कि आप सोच रहे हैं। आपको इसमें भी सन्देह नहीं कि आपकी सभी क्रियाओं पर आपके विचारों का प्रभाव पड़ता है।

इस प्रकार वाचन और चिन्तन, दोनों ही धारायें हैं जो प्रवाहित होती हैं। श्वास का प्रवाह वाक्तन्तु को स्पन्दित करता है जिससे शब्द उच्चरित होते हैं, यह प्रवाह और स्पन्दन है, एक प्रकार की 'नाड़ी'। विचार भी प्रवाह है। अत्यन्त स्थूल स्तर पर माना जाता है कि मस्तिष्क की कोशिकाओं में होने वाले रासायनिक तथा विद्युतीय स्पन्दनों के प्रवाह से विचार उत्पन्न होते हैं। यद्यपि हम इस प्रवाह के आदि या अन्त को चिह्नित नहीं कर सकते, फिर भी हम चिन्तन के तथ्य से आश्वस्त हैं।

जैसे-जैसे हमारी संवेदनशीलता और अन्तर्दृष्टि का विकास होगा और योग के हमारे अनुभवों में वृद्धि होगी, हम शक्ति के उस प्रवाह के प्रति भी सजग होंगे, जो हमारी नाड़ियों को संस्थापित करती है, बनाती है। जब कमरे की खिड़कियाँ खुली रहेंगी तो बाहर की बयार उस सम्पूर्ण कमरे में व्याप्त होगी। हम उन वायु तरंगों को प्रत्यक्षत: देख तो नहीं पाते, किन्तु उनका स्पर्श कर सकते हैं। उसी प्रकार हम शरीर के अन्दर प्राण के प्रवाह को, जो शक्ति-सरितायें हैं, उनका अनुभव कर सकने योग्य पर्याप्त संवेदनशील बन सकते हैं।

जब विद्युत के तारों में विद्युत-तरंगें प्रवाहित होती हैं तो हम उन्हें देख नहीं पाते। विद्युत के तारों में तो कोई परिवर्तन नहीं होता, किन्तु जब आप खुले तारों को छुयेंगे तो निश्चित रूप से आपको उन तरंगों का स्पर्श होगा। नाड़ियों के साथ, चक्रों एवं सूक्ष्म शरीर के अन्य अवयवों के साथ भी ऐसा ही है। जैसे-जैसे हम साधना के माध्यम से अपनी संवेदनशीलता को उन्नत बनाते हैं, जैसे-जैसे हमें ज्ञान होता है कि किस प्रकार 'सॉकेट' में 'प्लग' लगाना है, तभी हम अपनी शारीरिक संरचना में स्थित प्राण-शक्ति की सरिता के स्वरूप और उसकी क्रियाओं को भी समझ पायेंगे। तभी हम समझ पायेंगे कि नाड़ियाँ सूक्ष्म ऊर्जा तरंगों की वाहिनियाँ हैं जो कमरे में प्रवाहित वायु तरंगों से भी सूक्ष्म हैं, जो तारों में प्रवाहित विद्युत तरंगों से भी शक्तिशाली हैं।

इड़ा एवं पिंगला

हमारी मानसिक संरचना में तीन प्रमुख नाड़ियाँ हैं–इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना। कभी-कभी शक्ति की इन धाराओं को पवित्र गंगा, यमुना एवं सरस्वती भी कहा जाता है। मेरुदण्ड के आधार से थोड़ा नीचे एक बिन्दु से प्रारम्भ होकर इड़ा नाड़ी मेरुदण्ड के ढाँचें के बाईं ओर ऊपर सीधे मस्तक के मध्य से प्रवाहित होती है और उत्पत्ति के उसी बिन्दु से पिंगला नाड़ी दाहिनी ओर प्रवाहित होते हुए मस्तक के मध्य में इड़ा से जा मिलती है। सुषुम्ना नाड़ी मेरुदण्ड के अति सूक्ष्म सार भाग में प्रवाहित होती है।

हठयोग के ग्रन्थों में इड़ा नाड़ी को चन्द्र नाड़ी और पिंगला को सूर्य नाड़ी कहा गया है और उनके एक-दूसरे का पूरक होने का संकेत दिया गया है। इन दो नाड़ियों का प्रभाव क्षेत्र एक साथ ही भौतिक, मनोवैज्ञानिक तथा आध्यात्मिक है, क्योंकि ये भौतिक शरीर से सभी कोशों में, मानस के द्वारा सूक्ष्म अन्तरात्मा में प्रवेश कर विकसित होती हैं।

शारीरिक स्तर पर इड़ा एवं पिंगला नाड़ियों में प्राण के प्रवाह को स्वचालित स्नायु-तन्त्र की क्रिया से जोड़ा जा सकता है। इड़ा नाड़ी की प्रबलता परानुकम्पी (शिथिलीकरण) स्नायविक तन्त्र की प्रबलता के समरूप है और पिंगला नाड़ी की प्रबलता अनुकम्पी स्नायविक तन्त्र की प्रबलता के समरूप है। जब इड़ा का प्रवाह होता है तब श्वास बायीं नासिका में अधिक होगी। जब पिंगला प्रवाहित होती है तब दाहिनी नासिका में श्वास अधिक होगी।

मनोवैज्ञानिक स्तर पर इड़ा नाड़ी के प्रवाह का सम्बन्ध उस क्रिया से जोड़ा जा सकता है जिसे आजकल हम दाहिने मस्तिष्क की क्रिया कह सकते हैं, शब्द नहीं बल्कि चित्रों में समग्र विचार-धारा, अन्तर्ज्ञान, ग्राह्यता, अपने अन्तरतम के प्रति पूर्वान्मुख होना। पिंगला नाड़ी का सम्बन्ध बायें गोलार्द्ध से है–तर्क, विश्लेषण, मौखिक चिन्तन, पहल, बाह्य जगत् के प्रति पूर्वोन्मुखता। यह भी कहा जा सकता है कि इड़ा किसी क्रिया के लिये हमें प्रेरणा प्रदान करती है और पिंगला उसे इस जगत् में क्रिया के द्वारा वास्तविकता में परिणत करने की क्षमता प्रदान करती है। इड़ा नाड़ी को प्राय: मनोवाहिनी कहा जाता है, मानस शक्ति वाहिनी, मानसिक शक्ति या सजगता। पिंगला गत्यात्मक शक्ति से सम्बन्धित है तो इड़ा मानसिक एवं पराभौतिक सजगता से।

इन दो मुख्य तरंगों में प्रवाहित प्राण का वितरण भौतिक शरीर सहित सभी कोशों से वाहिनियों के बहुसर्जक जालक द्वारा, जिन्हें भी हम नाड़ियाँ कहते

हैं, होता है। उपनिषद् में कहा गया है कि मानव जीव में बहत्तर हजार नाड़ियाँ हैं जो शरीर की ओजस्विता, जीवनी-शक्ति, मस्तिष्क की स्वच्छता और चेतना की सूक्ष्मता को बनाए रखती हैं।

रोगों का उद्‌गम

योगी पुरुष रोग और अस्वस्थता को नाड़ियों से प्राण के सहज प्रवाह या अवरुद्ध प्रवाह के परिप्रेक्ष्य में ही देखते हैं। यदि किसी बिन्दु पर प्राण का प्रवाह बाधित होता है तब वहाँ बीमारी होगी। जब किसी बिन्दु पर शक्ति की अधिकता या कमी होगी तो उसके परिणामस्वरूप भी अस्वस्थता होगी। जब हमारे अन्दर प्राण का सन्तुलित एवं सुनियोजित वितरण होगा तब स्वास्थ्य एवं सुखमयता का प्रादुर्भाव होगा। उच्चतम स्वास्थ्य को बनाये रखने में और उसे पुनर्स्थापित करने में योग अत्यन्त प्रभावशाली होता है, मुख्यत: इसलिये कि योग के अभ्यास प्राणशक्ति के पुनर्वितरण एवं उसे सुमेलित करने के उद्‌देश्य से ही निर्दिष्ट होते हैं।

शक्ति-प्रवाह के अवरोधन एवं असन्तुलन का प्रादुर्भाव, जिसका प्रत्यक्षीकरण विभिन्न प्रकार की शारीरिक बीमारियों में होता है, किसी एक कोशिका में हो सकता है। अतएव इसका कारण भौतिक, भावनात्मक, मानसिक, पराभौतिक या आध्यात्मिक हो सकता है। बीमारियों के सही लक्षण इस बात पर निर्भर होंगे कि कौन-सी नाड़ी अवरुद्ध है। इसकी पहचान हो जाने से यह स्पष्ट हो जायेगा कि किस प्रकार हमारी विभिन्न व्याधियों एवं शारीरिक कष्टों की जड़ में मानसिक या भावनात्मक उथल-पुथल है या अवहेलना है या आन्तरिक जीवन की कोई कुण्ठा है।

सुषुम्ना नाड़ी

जब इड़ा, पिंगला एवं अन्य सभी लघु नाड़ियाँ पूरी तरह से परिष्कृत हैं, अर्थात् जब सभी अवरोध और प्रतिरोध हटा दिए गए हैं, जब प्राण-शक्ति का प्रवाह अबाध और समन्वित है उस समय एक तीसरी नाड़ी क्रियाशील होती है। यह है सुषुम्ना नाड़ी, आध्यात्मिक शक्ति वाहिनी।

योग-साधना का उद्‌देश्य इड़ा एवं पिंगला को सन्तुलित करना है। मानसिक एवं जीवनी-शक्तियों को सन्तुलित करना, ग्राह्यात्मक एवं सृजनात्मक ऊर्जाओं का सन्तुलन करना और पूरे व्यक्तित्व का अक्षरश: सन्तुलित विकास

करना होता है। जब इस उद्देश्य की प्राप्ति हो जाती है तब सुषुम्ना नाड़ी क्रियाशील हो जाती है और तब हमें एक सूक्ष्म एवं अति प्रबल शक्ति प्राप्त होती है जो यथार्थत: सृजनात्मक आध्यात्मिकता होती है। जब अनुभवातीत सजगता कुण्डलिनी शक्ति के रूप में सुषुम्ना में प्रवाहित होती है तब हम चेतना की व्यापक अवस्था का अनुभव करते हैं और वह हमें आध्यात्मिक अन्तर्ज्ञान और ज्योति प्रदान करती है।

शक्ति – चक्र

जैसे-जैसे सुषुम्ना में शक्ति के प्रवाह की वृद्धि होती है हमारी अतिभौतिक ऊर्जा केन्द्रों की, जिन्हें हम चक्र कहते हैं, अधिकाधिक क्रियाशीलता से हमारे व्यक्तित्व के विभिन्न आयाम प्रस्फुटित होने लगते हैं।

हमारा पराभौतिक शरीर-तन्त्र यह प्रकट करता है कि जब सुषुम्ना नाड़ी सीधी और सही उच्चतम शिखर तक प्रवाहित होती है तब इड़ा और पिंगला प्रवाहित नहीं होतीं। हम मान सकते हैं कि इड़ा और पिंगला, दोनों सुषुम्ना की मुख्य धारा की सहायक धाराएँ हैं और ये दोनों सहायक धाराएँ घुमावदार, टेढ़ी-मेढ़ी राह, मेरुदण्ड के पूरब से पश्चिम और पश्चिम से पूरब पकड़ती हैं।

पिंगला नाड़ी प्राय: बायीं ओर मुड़ती है और इसके ठीक विपरीत इड़ा दाहिनी ओर मुड़ती है जिससे कि इड़ा और पिंगला दोनों रास्ते में कई महत्त्वपूर्ण बिन्दुओं पर एक-दूसरे से आकर मिल जाती हैं। उनके मिलन के ये बिन्दु ठीक वहाँ होते हैं, जहाँ ये दोनों नाड़ियाँ मेरुदण्ड को पार करती हैं, और इस प्रकार एक क्षण के लिये ये सुषुम्ना में विलीन हो जाती हैं। नाड़ियों के एक-दूसरे के साथ मिलन की क्रिया का ज्ञान हो जाने पर, जो प्राण-शक्ति सरिता का संगम है, हम इन चक्रों की प्रकृति के सम्बन्ध में भी कुछ अन्तर्दृष्टि प्राप्त कर सकते हैं।

जहाँ भी दो नदियों का संगम होता है, जिस स्थान पर एक छोटा जल स्रोत बड़े जल स्रोत से मिलता है, जहाँ सहायिका धाराएँ मुख्य नदी से मिलती हैं वहाँ आप एक भँवर देखेंगे। उसी प्रकार शरीर के अन्दर जहाँ पर शक्ति की धाराएँ मिलती हैं वहाँ भँवर बनता है। इड़ा, पिंगला एवं सुषुम्ना के प्रत्येक संगम पर शक्ति में चक्राकार गति उत्पन्न हो जाती है और भँवर बनता है। शक्ति के इन गोलाकार प्रवाहों में अबाध गति और विलक्षण सामर्थ्य होता है। शक्ति के इस गोलाकार प्रवाह को ही चक्र कहते हैं। यदि

हम नाड़ियों की धारणा नदियों के रूप में कर सकें तो कुण्डलिनी योग के रहस्यपूर्ण चक्रों की अवधारणा भी सम्भव है। ये चक्र ऐसे भँवर हैं जिनमें शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक शक्तियाँ समाहित होती हैं।

चक्र

ऐसे चार स्थान हैं जहाँ इड़ा, पिंगला तथा सुषुम्ना की नदियों का संगम होता है। पुच्छ अस्थि के नीचे, नाभि के पीछे, हृदय के पीछे तथा कण्ठ के पीछे। मूलाधार में स्थित इनके उत्पत्ति केन्द्र तथा मध्य-मस्तिष्क में स्थित इनके अन्तिम छोर को इनमें सम्मिलित कर दें तो इस प्रकार छः संगम हुए जहाँ नाड़ियाँ एक-दूसरे में प्रवाहित होती हैं। इन सभी संगम बिन्दुओं पर शक्ति का एक-एक भँवर होता है जिसे चक्र कहते हैं। शरीर में छोटे-छोटे हजारों चक्र होते हैं, किन्तु ये छः सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण हैं। पुरुषों के मूल आधार और स्त्रियों के गर्भाशय द्वार पर मूलाधार चक्र, जननेन्द्रिय के ठीक पीछे स्वाधिष्ठान, नाभि के पीछे मणिपुर, वक्षस्थल के पीछे अनाहत, कण्ठ के पीछे विशुद्धि तथा मध्य मस्तिष्क में आज्ञा चक्र होता है।

शरीर के सामने प्रत्येक चक्र का एक 'प्रवर्त्तन बिन्दु' होता है। जब हम इस बिन्दु पर ध्यान करते हैं तो यह हमें चक्र के प्रति जागरूक होने में सहायता करता है। प्रत्येक चक्र एक सुनिश्चित स्नायु गुच्छों और एक विशेष ग्रन्थि के माध्यम से शरीर के स्नायु तन्त्र और अन्तःस्रावी तन्त्र को प्रभावित करता है। इन शारीरिक पूरकों के माध्यम से ये चक्र शरीर के सभी अवयवों को ऊर्जान्वित करते हैं। ये चक्र कुछ मानसिक अभिवृत्तियों से भी सम्बद्ध होते हैं और इस प्रकार शरीर तथा मन के बीच एक सेतु का काम करते हैं। मूलतः सघन शक्ति के पिण्ड ये चक्र प्राणों के भण्डारण, संवर्द्धन एवं वितरण का केन्द्र होते हैं। इनकी पूर्ण कार्यशीलता हमारे शारीरिक आरोग्य तथा आध्यात्मिक रहस्यों के अनावरण के लिए महत्त्वपूर्ण है।

मूलाधार चक्र आद्याशक्ति का केन्द्र है जो हमारी कामुकता एवं आध्यात्मिकता, दोनों का स्रोत है। मूलाधार ही इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना नाड़ियों का उद्‌गम बिन्दु है। स्त्रियों में जहाँ योनि और गर्भाशय मिलते हैं, अर्थात् गर्भाशय ग्रीवा पर ही इसका प्रवर्त्तन बिन्दु होता है। यह वृत्तिक मन का प्रतिनिधित्व करता है तथा स्वाधिष्ठान के साथ प्रजनन तन्त्र का संचालन करता है।

स्वाधिष्ठान का प्रवर्त्तन बिन्दु जघनास्थि के पास होता है। यह स्त्रियों में सैक्रल प्लेक्सस और डिम्बग्रन्थियों के द्वारा प्रजनन तन्त्र एवं मूत्र तन्त्र को संचालित करता है। यह अचेतन मन का सीमान्त है जो आकांक्षाओं और निषेधों, प्रतिभा और अन्तर्दृष्टि, दानव और देवों का भण्डार है।

मणिपुर चक्र जीवन्तता का केन्द्र है और इसमें जागरूकता का प्रवर्त्तन नाभि पर होता है। इससे सम्बद्ध स्नायु सन्धियाँ सोलर प्लेक्सस हैं तथा इनका सम्बन्ध गुर्दों के ऊपर एड्रिनल ग्रन्थियों से होता है। मणिपुर चक्र पाचन संस्थान को संचालित करता है। यह शारीरिक ऊर्जा का प्रमुख वितरक है। स्वत: प्रेरणा, आकर्षण तथा नायकत्व एवं शौर्य इस चक्र के गुण हैं।

अनाहत चक्र का प्रवर्त्तन बिन्दु वक्ष के केन्द्र में होता है। यह हृदय तथा श्वसन संस्थान का नियमन करता है। यह हृत् जालिकाओं के द्वारा थाइमस ग्रन्थियों से सम्बद्ध होता है जिनकी संक्रामक रोगों से लड़ने में महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। अपने आप को या दूसरों को भावात्मक आवेगों की अभिव्यक्ति द्वारा स्वीकारने की क्रिया से सम्बद्ध यह हमारा संवेगात्मक हृदय है।

विशुद्धि चक्र कण्ठ में शुद्धिकरण केन्द्र के रूप में स्थित होता है। यह ग्रीवा प्लेक्सस तथा अवटु ग्रन्थियों से सम्बद्ध रहता है एवं अन्तर्दृष्टि तथा विवेक प्रदान करता है।

आज्ञा चक्र ही शिव का तीसरा नेत्र है। इसका प्रवर्त्तन बिन्दु भ्रूमध्य में स्थित होता है। पीनियल ग्रन्थि इसका शारीरिक माध्यम है जो जागृति से सुषुप्ति, सुषुप्ति से स्वप्न, अवसाद से आशावाद की अवस्थाओं में होने वाले परिवर्तनों का नियमन करती है। आज्ञा चक्र के सक्रिय होने पर मन की उच्चतर शक्तियाँ एवं आत्मिक ग्राह्यता अनावृत होती जाती हैं। इन्हीं के माध्यम से गुरु एवं परमात्मा का अतीन्द्रिय बोध प्राप्त होता है।

शरीर एवं मन का सम्बन्ध

ये चक्र एक ही प्रकार की प्राणिक ऊर्जा की कड़ी के द्वारा शरीर और मन को संयुक्त कर देते हैं। यदि अनिश्चित दिनचर्या, त्रुटिपूर्ण भोजन या अव्यवस्थित जीवनशैली के कारण शरीर में कोई कष्ट होता है तो इसका प्रभाव मन पर भी पड़ता है। यही कारण है कि मासिक चक्र की अनियमितता स्त्रियों में भावनात्मक उथल-पुथल, चिन्ता या तनाव के रूप में प्रकट होती है। दूसरी ओर भय, कुण्ठा या अपराध बोध के कारण भावनाओं में हलचल उत्पन्न हो

जाती है जो मन के प्राणों को आन्दोलित कर देती है। इस प्रकार की बाधाएँ स्वाधिष्ठान चक्र एवं उससे सम्बन्धित स्नायुओं तथा हॉर्मोनों को प्रभावित करती हैं, जो क्रमश: शरीर की अनियमित प्रक्रियाओं के रूप में परिलक्षित होती हैं।

कभी-कभी चक्रों को पद्म या कमल भी कहते हैं। प्रत्येक पद्म में पंखुड़ियों की संख्या भिन्न होती है। ये पंखुड़ियाँ वस्तुत: इड़ा और पिंगला नाड़ियों से शाखाओं के रूप में निकलने वाली उनकी सहायिका नाड़ियाँ हैं जो उस चक्र विशेष से निकलती हैं। यदि इन नाड़ियों में कोई अवरोध होता है तो वह शरीर के सम्बद्ध अंग या अवयव में किसी प्रकार के कष्ट या रोग के रूप में प्रकट होता है।

उदाहरणार्थ, स्वाधिष्ठान चक्र में छ: पंखुड़ियाँ होती हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि स्वाधिष्ठान से छ: नाड़ियाँ निर्गत होकर इससे सम्बद्ध अंगों तक जाती हैं। यदि इन नाड़ियों में प्राणिक ऊर्जा की अधिकता या न्यूनता हो तो एक स्त्री को मूत्र प्रणाली या प्रजनन तन्त्र में किसी प्रकार के कष्ट का अनुभव होगा। जानकारी के लिए यह उपयुक्त होगा कि प्रजनन या मूत्र प्रणाली सम्बन्धी किसी भी समस्या को ऐसे आसन, प्राणायाम या दूसरे अभ्यासों के द्वारा नाड़ियों के शुद्धिकरण से दूर किया जा सकता है जो स्वाधिष्ठान चक्र की क्रियाओं को प्रभावित करते हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि कोई भी योगाभ्यास न तो केवल शारीरिक होता है और न केवल मानसिक। सभी योगाभ्यास बहुआयामी होते हैं और हमारी सम्पूर्णता एवं सामंजस्य सम्बन्धी जटिलताओं को दूर करने में हमारा मार्गदर्शन करते हैं।

आध्यात्मिकता का प्रस्फुटन

हम सब में चक्रों की क्षमता का अंशमात्र ही कार्यरत रहता है। जब नाड़ियों के अवरोध दूर हो जाते हैं और सुषुम्ना से अधिक शक्ति प्रवाहित होने लगती है तब चक्र अधिक क्रियाशील हो जाते हैं। ये सूक्ष्म पद्म प्रस्फुटित हो उठते हैं और हमें शारीरिक आरोग्य तथा पर्याप्त शक्ति का अनुभव होने लगता है।

इससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण यह है कि चक्रों में छिपे रहस्यों के अनावृत्त होने पर उनसे सम्बद्ध गुण हमारे व्यक्तित्व में प्रस्फुटित होने लगते हैं। अभिवृत्ति, परिप्रेक्ष्य एवं प्रतिभाएँ जो हमारे अन्दर सम्भावनाओं के रूप में सुषुप्त थीं, अब हमारी क्रियाओं तथा प्रतिक्रियाओं में परिलक्षित होने लगती हैं। व्यक्तित्व

धीरे-धीरे मन के अन्धकारपूर्ण क्षेत्र से बाहर आने लगता है और आत्मा ऊर्जा एवं प्रकाश से ओत-प्रोत हो जाती है।

अतीन्द्रिय रूप से पूर्ण विकसित व्यक्तित्व को सहस्त्रार चक्र से प्रतीकित किया जाता है जिसकी स्थिति मस्तिष्क के ऊपरी भाग में होती है। सहस्त्र दलों वाले पद्म का प्रस्फुटन प्रबुद्ध आत्मा का एवं जीवन को नाना प्रकारेण हमारी सृजनशील आध्यात्मिकता द्वारा प्रकाशवान् करने का प्रतिनिधित्व करता है।

चक्रों के उत्तरोत्तर जागरण के द्वारा हमारी क्षमताओं का प्रस्फुटन करना योग का अन्तिम लक्ष्य है ताकि प्रत्येक स्त्री को स्वास्थ्य, प्रसन्नता एवं आत्मज्ञान प्राप्त हो। अतिचेतन अवस्था की इस अनुभूति को ही समाधि कहते हैं, जो कुण्डलिनी के मूलाधार से प्रारम्भ होकर सुषुम्ना से होते हुए सहस्त्रार तक पहुँचने पर होती है। शिव और शक्ति का संयोग, एक ही शरीर में पुरुष और स्त्री का मिलन, योगियों के अनुसार हमारे अस्तित्व की सर्वोच्च अवस्था है, जो सच्ची मानवता की भावप्रवण अवस्था में तुच्छ भिन्नताओं के तिरोहण का द्योतक है।

मासिक चक्र

यह सृष्टि विविध लयात्मक गतियों पर नर्तन-गायन करती रहती है। या यूँ कहें कि प्रकृति से सम्बन्धित प्रत्येक घटना किसी नियम से बँधी होती है–पर्वतों का दीर्घ और मन्द क्षरण, ऋतुओं का नियमित परिवर्तन, दिवा-रात्रि प्रत्यावर्तन, सूर्य का घूर्णन, चन्द्रमा का प्रवर्तन-निवर्तन। स्त्री शरीर धारण करना विशेष रूप से ब्रह्माण्ड के प्रवाह का सहभागी होना है। स्त्री की जागरूकता सतत् उसकी प्राकृतिक प्रजनन शक्ति की ओर निर्दिष्ट होती है जो उसके ऋतुस्राव के चक्र के रूप में परिलक्षित होती है।

जागरूकता की यह उत्थित अवस्था अनन्त के साथ हमारे सम्बन्धों का मौन समादर है जिसे शरीर के प्रति हमारे विकृत पूर्वाग्रहों द्वारा विनष्ट नहीं होने दिया जाना चाहिए। ऐसी अनेक स्त्रियाँ हैं जो अपनी चेतना को शरीर से बाँध देती हैं। वे चेतन या अचेतन रूप से स्वयं को सदा रूग्ण समझती हैं; अपने चक्र में होने वाले नगण्य परिवर्तन से भी व्यग्र हो उठती हैं, किंचित् पीड़ा से ही, भले ही वह वास्तविक हो या काल्पनिक, चिन्तित और क्षुब्ध हो जाती हैं।

अपने शरीर के प्रति एक चौकसी की मनोवृत्ति स्वास्थ्य की कुंजी है, किन्तु यह समुचित ज्ञान एवं आत्म-विश्वास पर आधारित होनी चाहिये। हमारा भौतिक शरीर प्रकृति की उत्कृष्ट रचना है जो आश्चर्यजनक ढंग से सशक्त एवं कुशलतापूर्वक समेकित है। कठिन से कठिन परिस्थितियों में भी बिना हमारे हस्तक्षेप के यह सुव्यवस्थित रूप से क्रियाशील रहता है। मानव शरीर एक आत्म-नियन्त्रित यन्त्र के समान है जो अपनी आवश्यकताओं और क्षमताओं के अनुसार स्वयं को समंजित करता जाता है।

मासिक चक्र

लैंगिक रूप से परिपक्व स्त्री (बालिका) को प्रत्येक माह एक विशेष क्रम में ऋतुस्राव होता है। प्रथम रजोदर्शन से रजोनिवृत्ति तक यह निरन्तर मासिक आवर्त के रूप में चलता रहता है। प्रत्येक चक्र मस्तिष्क के तल में स्थित पीयूषिका ग्रन्थि से स्रावित होने वाले फॉलिकल स्टिम्यूलेटिंग हॉर्मोन (FSH) के द्वारा प्रेरित होता है। यह डिम्बाशय को उद्दीपित करता है जिसके फलस्वरूप मानव डिम्ब के साथ फॉलिकल उत्पन्न होता है। परिपक्व होने पर फॉलिकल से ओयेस्ट्रोजेन स्रावित होता है जो गर्भाशय द्वारा निषेचित डिम्ब को ग्रहण करने के लिए उसके अन्दर एक अस्तर का निर्माण करता है। ओयेस्ट्रोजेन पीयूषिका को भी प्रभावित करता है कि ल्यूटीनिकारी हॉर्मोन (LH) का स्रवण हो सके। लगभग चौदहवें दिन जब ये दोनों शरीर के अन्दर एक विशेष सन्तुलन पर होते हैं तो परिपक्व फॉलिकल से एक विकसित डिम्ब मुक्त होकर किसी एक फैलोपियन नली में आ जाता है।

डिम्ब के उत्क्षेपण के बाद फॉलिकल कॉर्पस ल्यूटियम कहलाता है जो ल्यूटीनीकारी हॉर्मोन द्वारा उद्दीपित होकर प्रोजेस्ट्रोन उत्पन्न करता है। प्रोजेस्ट्रोन अतिरिक्त डिम्बक्षरण को रोकता है और निषेचित डिम्ब को धारण करने के लिए गर्भाशय के अस्तर को बनाये रखता है। गर्भावस्था के लगभग बारहवें सप्ताह तक कॉर्पस ल्यूटियम प्रोजेस्ट्रोन का स्रवण करता है और उसके बाद यह कार्य अपरा (प्लैसेन्टा) द्वारा होने लगता है।

यदि डिम्ब का निषेचन नहीं होता है तो कॉर्पस ल्यूटियम चौबीसवें दिन लुप्त हो जाता है। चौबीसवें और अट्ठाइसवें दिनों के बीच ओएस्ट्रोजेन और प्रोजेस्ट्रोन का स्रवण अचानक कम हो जाता है जिसके कारण गर्भाशय का अस्तर छिन्न-भिन्न हो जाता है और तब ऋतुस्राव प्रारम्भ हो जाता है। पीयूषिका का फॉलिकल स्टिम्यूलेटिंग हॉर्मोन पुन: प्रभावशाली हो जाता है। इस प्रकार पुन: नये फॉलिकल एवं डिम्ब का विकास होने लगता है।

ऋतु स्राव (आर्त्तव)

ऋतुस्राव एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा गर्भाशय का अवांछित अस्तर शरीर के बाहर निकाल दिया जाता है। ऋतुस्राव द्रव में कुछ विदीर्ण ऊतक और कुछ रक्त होता है जो योनि मार्ग से बाहर निकलता है। यह वही रक्त होता है जो प्राय: शरीर के अन्दर प्रवाहित होता है, किन्तु इसमें स्कन्दनकारक तत्त्व नहीं

होता है। यह वही रक्त एवं ऊतक है जो डिम्ब का संपोषण करता यदि उसका निषेचन हुआ होता। यद्यपि शरीर से निकल जाने के बाद इस द्रव में दुर्गन्ध उत्पन्न हो जाती है, फिर भी इसे अस्वच्छ नहीं कहा जा सकता। प्रत्येक माह में ऋतुस्राव तीन से सात दिनों तक होता है, प्राय: चार या पाँच दिनों का। इस अवधि में शरीर से लगभग एक कप द्रव निकल जाता है।

पहला ऋतुस्राव प्राय: दस से चौदह वर्ष की आयु में होता है, यद्यपि सम्भव है कि यह सत्रह-अट्ठारह वर्ष की आयु तक भी नहीं हो। ऋतुस्राव स्तनों की वृद्धि के पूर्व भी प्रारम्भ हो सकता है या उसके साथ-साथ भी। इसके साथ ही गुह्यांग पर रोम भी परिलक्षित होने लगते हैं।

मासिक चक्र तीस से पैंतीस वर्षों तक चलता है। इस चक्र में गर्भावस्था या अस्वस्थता के कारण रुकावट आती है। वय वृद्धि की प्रक्रिया के फलस्वरूप इस चक्र में विराम लग जाता है। वृद्ध होते हुए शरीर में सामान्यत: उन हॉर्मोनों का उत्पादन कम हो जाता है जो इस चक्र का नियन्त्रण करते हैं। अन्तत: यह चक्र पूरी तरह बन्द हो जाता है। जीवन में आये इस परिवर्तन को रजोनिवृत्ति के नाम से जाना जाता है।

प्रथम रजोदर्शन के बाद उस वर्ष में डिम्बक्षरण नहीं भी हो सकता है। इसी प्रकार रजोनिवृत्ति के बाद यह आवश्यक नहीं कि डिम्बक्षरण भी बन्द हो जाये। कुछ स्त्रियाँ अन्तिम रजोदर्शन के एक-दो वर्ष बाद तक भी गर्भाधान में सक्षम रहती हैं।

चूँकि नियमों में पूरी दृढ़ता नहीं होती, इसलिए हम इस बिन्दु पर पुन: बल दे रहे हैं कि शरीर क्रिया विज्ञान मात्र एक रूपरेखा है, व्यक्तिगत स्तर पर अपने शरीर के प्रति जागरूक रहकर उसे अनुपूरित करना चाहिए।

कष्टपूर्ण ऋतुस्राव

स्त्री के रूप में उत्पन्न होना एक अभिशाप है, कम-से-कम वे ऐसा समझती हैं जिन्हें हर माह ऋतुस्राव की पीड़ा सहन करनी पड़ती है। पिछली कुछ पीढ़ियों में यह समस्या इतनी व्यापक हो गयी है कि ऋतुस्राव के साथ विभिन्न प्रकार की शारीरिक रुग्णता एवं भावनात्मक क्लेश को सामान्य माना जाने लगा है। हम ऐसी कुछ स्त्रियों की कहानियाँ अवश्य सुनते हैं जिनके लिए ऋतुस्राव बोझ के समान नहीं होता है, शायद हम उन्हें जानते भी हों। उन स्त्रियों को भाग्यशाली माना जाता है जो स्त्रीत्व के इस कष्ट से मुक्त रहती हैं। किन्तु यह

आवश्यक नहीं कि जिसे 'सामान्य' मान लिया गया वह आदर्श भी हो। यह तो मात्र सूचित करता है कि अधिकतर लोगों के साथ ऐसा होता है। इस समस्या के साथ चुपचाप समझौता कर हम यह भूल गये हैं कि स्थिति इसके विपरीत भी हो सकती है। ऋतुस्राव में होने वाला दर्द किसी भी अन्य दर्द के समान है जो संकेत देता है कि शरीर में किसी वस्तु की कमी है। बार-बार होने वाले इस कष्ट को मूक जानवर की तरह सहन नहीं कर लेना चाहिए। योग के द्वारा हम सकारात्मक रूप से आर्त्तव क्लेश को दूर कर स्त्रियों के स्वास्थ्य रूपी विरासत का पुन: अन्वेषण कर सकते हैं।

कृच्छार्त्तव (कष्टपूर्ण ऋतुस्राव) उतना ही कष्ट देता है जितना कि सामान्य सर्दी-खाँसी, किन्तु अफसोस की बात यह है कि दोनों ही समस्याओं में चिकित्सा शास्त्र की पहुँच समान रूप से सीमित है। इस क्षेत्र के कुछ शोधकर्ताओं में से एक हैं अमेरिका की डॉ. कैथेरिना डाल्टन, जिन्होंने यह प्रमाणित किया है कि स्त्रियों को होने वाला दर्द एक ही कारण से नहीं होता, बल्कि इसके विभिन्न कारण हो सकते हैं।

आकर्षी कृच्छार्त्तव विशेष रूप से पेडू में ऐंठन और तीव्र दर्द के साथ होता है। कभी-कभी स्राव के प्रारम्भ होने पर मिचली होती है या शरीर में कम्पन होता है। सामान्यत: पच्चीस वर्ष से कम आयु की स्त्रियों में ऐसा होता है जो पहले बच्चे के जन्म के बाद समाप्त हो जाता है।

रक्ताधिक्य कृच्छार्त्तव भीषण तनाव से सम्बद्ध होता है जिसे चिकित्सक 'पूर्वार्त्तव लक्षण' कहते हैं। स्राव प्रारम्भ होने के तीन-चार दिन पूर्व से ही पेट और कमर के निचले भाग में भारीपन के साथ हल्का दर्द होने लगता है। कुछ स्त्रियाँ स्तनों में सूजन और संवेदनशीलता का अनुभव करती हैं, पेट या पूरे शरीर में भी सूजन का अनुभव होता है। शरीर में अत्यधिक द्रव अवरोधन के कारण शरीर का वजन भी तीन किलो तक बढ़ जाता है और कभी-कभी इसके साथ मिचली भी होती है। सिर दर्द, शारीरिक तनाव तथा कब्जियत भी सामान्य रूप से परिलक्षित होते हैं। चिड़चिड़ापन, हताशा एवं आलस्य इसके अत्यन्त दु:खद परिणाम हैं। जो महीने की उस अवधि में भावनात्मक रूप से दुर्बल बना देते हैं। रक्त स्राव होने पर शारीरिक और मानसिक संकुलन की तीव्रता कम हो जाती है और अत्यधिक स्राव हो जाने पर ये कष्ट भी दूर हो जाते हैं। इस प्रकार के ऋतुस्राव की समस्या तरुणियों से लेकर रजोनिवृत्ति की आयु तक की स्त्रियों में सामान्य रूप से देखी जाती

है। ऐसा भी देखा गया है कि प्रत्येक गर्भ धारण के बाद यह समस्या और भी बढ़ जाती है।

यद्यपि चिकित्सा शास्त्र अब तक इस प्रकार के दर्द का मूल कारण नहीं ढूँढ़ पाया है, फिर भी डॉ. डाल्टन, डॉ. कैरे और डॉ. पिंकर्टन (ऑस्ट्रेलिया) के प्रमाणों से ऐसा प्रतीत होता है कि आकर्षी एवं रक्ताधिक्य कृच्छार्त्तव हॉर्मोनों के असन्तुलन के कारण होते हैं। शरीर में प्रोजेस्टेरोन की अधिकता होने पर ऐंठन के साथ दर्द होता है, जबकि शरीर में ओएस्ट्रोजेन के आधिक्य से रक्ताधिक्य कृच्छार्त्तव की समस्या उत्पन्न होती है। एक अन्य शोधकर्त्ता डॉ. एलिजाबेथ कॉनेल का मानना है कि गर्भाशय में ऐंठन का कारण प्रौस्टोग्लैन्डिनस की अधिकता भी हो सकती है। ये हॉर्मोन जैसे तत्त्व हैं जो गर्भाशय में अस्तर द्वारा क्षरण के तुरन्त पहले अत्यधिक मात्रा में उत्पन्न होते हैं। प्रोजेस्टेरोन की कमी, अर्थात् ओएस्ट्रोजेन की अधिकता के कारण भी शरीर की कोशिकाओं में सोडियम अवरुद्ध हो जाता है तथा पोटैशियम बाहर निकल जाता है। इसका गम्भीर परिणाम होता है; सम्पूर्ण स्नायु तन्त्र एवं मस्तिष्क के संवेगों का संचार सोडियम-पोटैशियम के सही अनुपात पर निर्भर करता है। ऐसा प्रतीत होता है कि ऋतुस्राव की अवधि में हमारी भावनात्मक दुर्बलता का मूल कारण हॉर्मोनों का असन्तुलन है जो शरीर क्रिया विज्ञान का एक अंग है।

यौगिक युक्ति

चिकित्सक ऋतुस्राव सम्बन्धी समस्याओं का समाधान प्राय: दर्द निवारक तथा हॉर्मोनयुक्त दवाओं (गर्भ निरोधक गोलियों) से करते हैं। कुछ प्रतिशत स्त्रियों ने पाया है कि गर्भ निरोधक गोलियों से उनका ऋतुस्राव कष्टमुक्त एवं हल्का भी होता है। किन्तु ये गोलियाँ लेना जोखिम उठाने जैसा है और आजकल अनेक स्त्रियाँ ऐसी गोलियाँ लेना पसन्द नहीं करतीं। दूसरी ओर योग ऐसे प्राकृतिक एवं प्रभावकारी उपाय बताता है जिसका कोई विषाक्त अन्त:प्रभाव तो नहीं ही होता है, साथ-ही यह शारीरिक लाभ के अतिरिक्त अन्य लाभ भी देता है।

अनेक स्त्रियाँ पूछती हैं कि क्या ऋतुस्राव की अवधि में आसन करना सुरक्षित है? किसी भी समय में शरीर को तनावमुक्त रखना आवश्यक है, किन्तु कुछ सावधानी के अतिरिक्त अपने अभ्यासों को छोड़ने का कोई कारण नहीं है। एक संवाददाता ने समीक्षा करते हुए बताया, "अब अधिकतर चिकित्सकों का विश्वास है कि स्त्रियाँ न केवल श्रमसाध्य कार्य कर सकती हैं, बल्कि

वे इससे लाभान्वित भी होती हैं। सन् 1965 में 65 तैराक स्त्रियों एवं 138 ऐसी स्त्रियों का, जिनका खेलकूद से कोई सम्बन्ध नहीं था, एक तुलनात्मक अध्ययन किया गया। इसके फलस्वरूप पाया गया कि तैराक स्त्रियों को ऋतुस्राव सम्बन्धी समस्यायें अपेक्षाकृत कम थीं।"

ऋतुस्राव की अवधि में सर्वांगासन एवं शीर्षासन नहीं किया जाना चाहिए। किन्तु वज्रासन, शशांकासन, मार्जारी आसन एवं शवासन में उदर श्वसन लाभप्रद हैं जो ऐंठन दूर करने में मदद करते हैं। सर्वाधिक रक्तस्राव के समय ही रक्ताधिक्य कृच्छार्त्तव में होने वाले दर्द से मुक्ति मिलती है। इस स्राव को गर्भाशय के संकुचन से बढ़ाया जा सकता है जैसा कि रति निष्पत्ति के समय होता है। इससे यह संकेत मिलता है कि मूलबन्ध इसमें विशेष रूप से लाभप्रद होगा। फिर भी मूर्च्छा या किसी अन्य कष्ट के अनुभव का संकेत मिलते ही इस अभ्यास को अविलम्ब बन्द कर देना चाहिए।

मासिक चक्र की शेष अवधि के लिए आसनों का एक सन्तुलित कार्यक्रम तैयार कर लेना चाहिए, जो ग्रन्थियों के सूक्ष्म नियन्त्रण के द्वारा हॉर्मोन उत्पादन को सुव्यवस्थित और सन्तुलित कर सकता है। आसन ग्रन्थियों एवं आन्तरिक अंगों की मालिश करते हैं और उन पर दबाव डालते हैं, जिससे जमा हुआ अशुद्ध रक्त बाहर चला जाता है तथा शुद्ध रक्त को संचरण का अवसर मिलता है एवं ग्रन्थियों एवं सम्पूर्ण प्रजनन तन्त्र में नयी शक्ति का संचार होता है। एक उत्तम कार्यक्रम के अन्तर्गत सूर्यनमस्कार, भुजंगासन, शलभासन, धनुरासन, पश्चिमोत्तानासन, मूलबन्ध एवं वज्रोली मुद्रा आते हैं। ध्यान के अभ्यास, विशेषकर योगनिद्रा एवं अन्तर्मौन शारीरिक एवं भावनात्मक सामंजस्य को भंग करने वाले तनाव से मुक्त करने के लिए उत्तम रहेंगे।

आहार

अनाज और सब्जियों के सरल एवं शुद्ध आहार का अनेक रोगों पर चमत्कारपूर्ण प्रभाव होता है, यहाँ तक कि कष्टप्रद ऋतुस्राव पर भी। आहार में प्रोटीन का आधिक्य, विशेषकर मांसयुक्त आहार निश्चय ही इस समस्या को बढ़ा देता है। समृद्ध देशों में यह देखा गया है कि कृच्छार्त्तव की समस्या आहार में मांस की बढ़ती हुई मात्रा के समानान्तर चलती है।

सरल और शाकाहारी भोजन पर पुन: वापस आने वाली अनेक स्त्रियों ने सूचित किया है कि कठिन स्राव में नाटकीय ढंग से सुधार हुआ है, उग्र रूप

से जो रक्तस्राव होता था वह हल्का हो गया। अभी भी मांस खाने वाली स्त्रियाँ, जिन्होंने कॉफी, प्रक्रमित भोजन, विशेषकर चीनी, चिकने चावल एवं मैदे से बनी सामग्रियों में कमी कर दी है, उन्हें भी विशेष लाभ हुआ है। ऋतुस्राव के समय हमें पके हुए केले और ताजी नारंगी या नींबू का रस लेना चाहिए, क्योंकि इनसे स्नायु तन्त्र को बाधित करने वाले पोटैशियम के अस्थायी क्षरण की क्षतिपूर्ति होती है।

नकारात्मक अभिवृत्ति

ऋतुस्राव के समय होने वाला दर्द काल्पनिक नहीं, बल्कि वास्तविक होता है और प्राय: इसके निश्चित कारण होते हैं। फिर भी अनेक स्त्रियों में अनिश्चित या नकारात्मक यौन भावों एवं गतिविधियों के कारण दर्द की अतिशयता का बोध होता है। प्राय: इसके पीछे अपराध बोध छिपा रहता है। स्त्रियाँ इसे अपने यौन सम्बन्धी जीवन में काल्पनिक या वास्तविक रूप से किये गये पापों का दण्ड समझती हैं। वय:सन्धि पर रजोदर्शन एवं कामेच्छाओं का उमड़ना साथ-साथ होता है जो उन भ्रान्तियों को जन्म देता है।

ऑस्ट्रेलिया में तरुणियों पर किये गये अध्ययन से यह ज्ञात हुआ है कि ऋतुस्राव की अवधि में प्रत्येक माह उन्हें तीव्र वेदना सहनी पड़ी जिसके फलस्वरूप उन्हें कई दिनों तक बिस्तर पर रहना पड़ा। उन स्त्रियों का अलग-अलग साक्षात्कार लिया गया तथा विभिन्न सत्रों में उन्हें योगनिद्रा के समान तकनीकों से शिथिलीकरण कराया गया। इस क्रम में चिकित्सक अपने निर्देशों के द्वारा शारीरिक सजगता के अभ्यास के कई चक्र करवाते थे और उन स्त्रियों के अन्दर विभिन्न प्रकार की छवियाँ उत्पन्न कर ऋतुस्राव से होने वाले दर्द की प्रतिक्रिया के प्रति उन्हें असंवेदी बना देते थे। इन प्रयोगों में सफलता प्राप्त हुई; उन सभी स्त्रियों ने तनाव, दर्द और बिस्तर पर बीतने वाले दिनों में कमी होने की सूचना दी। छ: महीनों के पश्चात् आधी से अधिक स्त्रियों ने सूचित किया कि उन्हें वेदनामुक्त ऋतुस्राव होने लगा है। धीरे-धीरे सामान्य रूप से ऋतुस्राव के प्रति उनकी मनोवृत्ति में भी परिवर्तन आ गया।

कुछ आदिम समाजों में बालिकाओं के रजोदर्शन को उनकी यौन सम्बन्धी परिपक्वता मानते हैं तथा स्त्रीत्व के आविर्भाव पर उत्सव मनाते हैं। यद्यपि अधिकतर संस्कृतियों में इसे वर्जनात्मक नहीं तो, लज्जाजनक एवं गोपनशील तो मानते ही हैं। हिन्दू, मुसलमान और यहूदियों में स्त्रियों को ऋतुस्राव की

अवधि में स्पष्टरूप से अशुद्ध समझा जाता है तथा इसके पश्चात् विधिपूर्वक उनका शुद्धिकरण अनिवार्य माना जाता है। यहाँ तक कि 'विमुक्त' हुए पाश्चात्य देशों में भी इस समय स्त्रियाँ अशुद्ध मानी जाती हैं। यह प्रवृत्ति मुख्यत: अज्ञान एवं अंधविश्वास पर आधारित है जिसके कारण स्त्रियों, विशेषकर तरुणियों के लिए अपने शरीर की सामान्य क्रियाओं को स्वीकार करना भी कठिन हो जाता है। शारीरिक तथ्यों की ज्ञानहीनता और इस विषय की चर्चा के प्रति निषेधात्मक प्रवृत्ति इसके रहस्य को और अधिक गहरा कर देती है। यह ऋतुस्राव के साथ अनावश्यक रूप से होने वाली व्यथा और तनाव उत्पन्न करने का मुख्य कारण है।

महान् सन्त रामकृष्ण परमहंस अपने भोजन के प्रति विशेष रूप से हठी थे। वे नियमानुसार ब्राह्मण के अतिरिक्त किसी अन्य के द्वारा परोसा गया भोजन नहीं खाते थे। वे या तो केवल मन्दिर का प्रसाद ग्रहण करते थे या अपनी पत्नी शारदा देवी के हाथों का पकाया गया भोजन। हिन्दू रीति के अनुसार रजस्वला स्त्री को भोजन नहीं पकाना चाहिए। स्वामी गम्भीरानन्द ने शारदा देवी की जीवनी में लिखा है कि रामकृष्ण ने कहा, "देखो प्रिय, इन दिनों तुमने भोजन नहीं पकाया, इसलिए मेरे यकृत का कष्ट बढ़ गया है। तुमने ऐसा क्यों किया?"

'माँ' ने समझाया–"अपने अशुद्ध दिनों में स्त्रियाँ किसी के लिए भी भोजन नहीं पका सकती हैं।"

स्वामी ने पूछा–"ऐसा किसने कहा? तुम मेरे लिए भोजन बनाओ, तुम किसी पाप की भागी नहीं होगी। क्या तुम बता सकती हो कि तुम्हारे शरीर का कौन-सा भाग अशुद्ध है–चर्म, मांस, अस्थि या मज्जा? यह समझ लो कि शुद्धता और अशुद्धता मन के अन्दर होती है, बाहर कुछ अशुद्ध नहीं।"

इसके पश्चात् 'माँ' ने सदा उनके लिए भोजन तैयार किया। स्वामी ने प्रसन्नता के साथ कहा–"देखो प्रिय, मैं तुम्हारे भोजन से कितना स्वस्थ हो गया हूँ।"

इस बात की महत्ता को हम पूरी तरह तभी समझ सकते हैं जब हमें इस तथ्य की जानकारी हो जाय कि श्रीरामकृष्ण सदा यह चाहते थे कि उनकी पत्नी ब्राह्मण स्त्री के लिये बनाये गये प्रतिबन्धों का पालन करते हुए अन्य स्त्रियों के लिये आदर्श प्रस्तुत करे। अपनी जाति के लिये मान्य खान-पान के नियमों को शिथिल करने के लिये वे मृत्युपर्यन्त तत्पर नहीं थे, यहाँ तक कि किसी गैर ब्राह्मण के हाथ से उसका उबला चावल भी ग्रहण नहीं करते।

ऋतुस्राव के सम्बन्ध में दो बिन्दुओं पर वाद-विवाद होते हैं– एक तो सामान्य रूप से स्त्रियों का स्वास्थ्य और दूसरा विशेष रूप से घर से बाहर काम करने वाली स्त्रियों का स्वास्थ्य। व्यापक स्तर पर यह विश्वास किया जाता है कि इस अवधि में स्त्रियों की क्षमता कम हो जाती है, उनमें दुर्घटना और विक्षिप्तता की सम्भावना बढ़ जाती है (शायद यही कारण है कि स्त्रियाँ ऋतुस्राव और इसकी वेदना को स्त्रीत्व पर अभिशाप समझती हैं)। ऐसा भी माना जाता है कि ऋतुस्राव के पूर्व स्त्रियों की मन:स्थिति में होने वाले परिवर्तन उनकी बौद्धिक क्षमता को गहराई से प्रभावित करते हैं। इस प्रश्न को परखने के लिए न्यू रॉशेल कॉलेज (अमेरिका) की शेरोन गॉलब ने ऐसी पचास अधेड़ माताओं पर परीक्षण किये जिन्हें लगभग सात दिनों बाद ऋतुस्राव होने वाला था। परिणामस्वरूप यह ज्ञात हुआ कि वे स्त्रियाँ सामान्य से अधिक तनाव और हताशा का अनुभव कर रही थीं, उन्हें एकाग्रता प्राप्त करने तथा दक्षतापूर्वक कार्य करने में कठिनाई हो रही थी। जबकि परीक्षण से ऐसा कोई संकेत प्राप्त नहीं हुआ कि ऋतुस्राव के पूर्व उनकी बौद्धिक क्षमता अवरुद्ध हुई हो।

इन परिणामों से यह परिलक्षित होता है कि स्त्रियाँ अपने शरीर में होने वाले अस्थाई परिवर्तनों का शिकार नहीं होतीं, बल्कि वे अपने और अपने शरीर के प्रति नकारात्मक प्रवृत्तियों का शिकार होती हैं।

अतीत का संकेत

भारत में यह प्रथा प्रचलित थी, बल्कि रूढ़िवादी ब्राह्मण परिवारों में अभी भी यह प्रथा है कि ऋतुस्राव की अवधि में स्त्रियों को गृहस्थी के कार्यों से अलग रखा जाता है। इस समय वे रसोई घर या पूजा घर में नहीं जाती हैं और परिवार के किसी सदस्य का स्पर्श भी नहीं करती हैं। परम्परा के अनुसार रजस्वला स्त्रियों के लिए अलग एक कमरा रखा जाता है जिसमें वे कम-से-कम तीन दिनों तक रहती हैं।

इस एकान्तवास की अवधि में रजस्वला स्त्री अपना कार्य स्वयं करती है और भूमि पर एक कम्बल बिछा कर सोती है। उसे अपने सभी वस्त्रों को त्याग कर केवल एक वस्त्र से शरीर ढँकना होता है। यदि बच्चों का उसके पास आना अनिवार्य होता है तो उन्हें निर्वस्त्र होकर आना पड़ता है। चौथे दिन गंगा जल या अन्य पवित्र नदी के जल से घर का शुद्धिकरण किया जाता है। स्त्री अपने केश धोती है, स्नान करती है और तब अपने एकान्तवास से बाहर आती है।

अगले दिन वह मन्दिर जाकर पूजा करती है, रसोई घर में उसे प्रवेश मिलता है और वह पुन: पति के पास जाती है।

दुर्भाग्यवश इस प्रथा के मूल उद्‌गम को भुला दिया गया है और उसका गलत अर्थ लगाया जाता है कि ऋतुस्राव के समय स्त्रियाँ दूषित, अपवित्र और अशुद्ध होती हैं। वस्तुत: परिवार को रजस्वला स्त्री से बचाने के लिए नहीं, बल्कि स्त्री को अपने परिवार से सुरक्षित रखने के लिए ऐसी व्यवस्था की गयी थी।

स्त्रियों का यह एकान्तवास उन्हें लगभग पचास सदस्यों वाले पारम्परिक परिवार के श्रमसाध्य कार्यों से अवकाश दिलाने का अवसर प्रदान करता था। (अनेक आधुनिक माताएँ भी प्रत्येक महीने के कुछ दिनों में अपनी गृहस्थी और बच्चों से अलग स्वयं अपने लिए कुछ समय चाहती हैं।) यह एकान्त भावनाओं की अतिसंवेदनशील स्थिति में मनोवैज्ञानिक संरक्षण देता था। ऐसी अवस्था में चिड़चिड़ापन या हताशा होने पर क्रोध के आवेग या कठोर शब्द सहज ही प्रकट होने लगते हैं, जबकि पृथक् कमरे का विश्रान्तिपूर्ण एकान्त स्त्री में मानसिक शान्ति तथा परिवार में सामंजस्य बनाये रखता है।

आज स्त्रियाँ इस प्रकार की व्यापक सावधानियाँ नहीं बरततीं और इन पुरानी प्रथाओं को अव्यावहारिक कह कर त्यागा जा रहा है। स्त्रियों ने यह दिखा दिया है कि वे इन असुविधाओं या तनावों के बावजूद अपनी रुचि के कार्यों या जीविका में मनोयोग से लगी रह सकती हैं। अनेक स्त्रियों का यह अनुभव है कि इससे उन्हें सन्तोष प्राप्त होता है और वे अपनी पीड़ा को भूल जाती हैं। शोधकर्त्ताओं का यह मत है कि इस अवधि में स्त्रियों को उन पुरुषों की अपेक्षा अधिक कठिनाई नहीं होती जिन्हें उच्च रक्तचाप या पेप्टिक अल्सर के कारण दर्द हुआ करता है।

पुरातन प्रथाओं के मर्म को समझ लेने पर स्त्रियों की अशुद्धि सम्बन्धी भ्रान्तियाँ स्वयं दूर हो जाती हैं और हमें लज्जा एवं भावनात्मक तनाव से स्वत: मुक्त करती हैं। यद्यपि आज के सन्दर्भ में एकान्तवास एक विलास के समान है जिसका उपभोग कम लोग ही कर पाते हैं; फिर भी हम चाहें तो इस अवधि में अपने कार्यक्रम को पुनर्व्यवस्थित कर अधिक विश्राम एवं एकान्त प्राप्त कर सकते हैं। लगभग एक घण्टे अन्तर्मौन का अभ्यास तनावमुक्त होने और जीवन के विविध पक्षों को नये सन्दर्भ में देखने का अवसर प्रदान करता है।

स्मरणीय है कि जो समस्यायें हमें ऋतुस्राव की अवधि में धराशायी कर देती हैं, वे वस्तुत: सदा हमारे साथ रहती हैं, किन्तु हम आगे बढ़ते रहने के

लिए उन्हें पीछे धकेलते रहते हैं। इस अवधि में हमारे संवेगों की तीव्रता हमें उन समस्याओं के प्रति अधिक जागरूक बना देती हैं। यदि हम कुछ देर उनका परीक्षण एवं विश्लेषण करें तो शायद हमें उनका सही समाधान प्राप्त हो जाये। अन्तर्मौन में बैठ कर बन्द आँखों के पीछे चेतना पटल पर हम अपने विचारों और भावनाओं का विचरण देखते हैं। यदि हम उन विचारों या भावनाओं का समीक्षक या समालोचक न बन कर केवल उन्हें साक्षी भाव से देखते जायें तो यह अभ्यास अत्यन्त स्फूर्तिदायक होगा। चिदाकाश पर न कुछ शुभ होता है और न कुछ अशुभ। हमारा अचेतन मन ही विभिन्न रंगों एवं रूपाकारों में स्वयं को प्रकट करता है जो किसी भी अतियर्थाथवादी चलचित्र से कम मनोरंजक नहीं होता, बल्कि जीवन के सही अर्थों को अधिक-से-अधिक उद्‌घाटित करता है। अन्तर्मौन हमें वह मनोवैज्ञानिक धरातल प्रदान करता है जहाँ हमें अपने अस्तित्व के उन पक्षों का अभिज्ञान होता है जिन्हें हम प्राय: उपेक्षित छोड़े रहते हैं। जिस प्रकार हमारा शरीर अनावश्यक पदार्थों का त्याग कर देता है, उसी प्रकार हम अपने घिसे-पिटे और खोखले विचारों एवं धारणाओं से मुक्त होकर अपने पुनर्नवीनीकरण के लिए इन अवसरों का अधिकाधिक सदुपयोग कर सकते हैं।

पृथ्वी की अपनी ऋतुएँ होती हैं; पतझड़ आने पर सभी लाल-भूरे पत्ते झड़ जाते हैं, वसन्त काल में पूर्ण ऊर्जस्विता के साथ पुनरुज्जीवित होने के पूर्व इसका मर्म रस खींच लिया जाता है। स्त्रियों में होने वाली इस अत्यन्त स्वाभाविक प्रक्रिया के प्रति सकारात्मक मनोवृत्ति अपना कर ऋतुस्राव के प्रति पूर्ण सजगता एवं इसके तात्पर्य का उपयोग हम धरती माँ के साथ अपने बंधन का अनुभव कर सकते हैं तथा ब्रह्माण्ड के लय-ताल में सम्मिलित हो सकते हैं।

रजोदर्शन एवं रजोनिवृत्ति

स्वामी मुक्तानन्द सरस्वती

जब कोई प्राकृतिक घटना हमारी सजगता के परिपक्व होने के साथ-साथ घटित होती है तो अनुभव के नये आयामों से हमारा साक्षात्कार होता है। यह प्रकृति द्वारा दिया जाने वाला सहज ज्ञान है, एक नई शुरुआत है, जो हमारी परिपक्वता एवं विवेक का आधार है।

सभी संस्कृतियाँ और समाज शारीरिक परिपक्वता एवं सजगता में होने वाले परिवर्तन के संक्रमण काल के महत्त्व को समझते हैं। अनेक समुदायों में यौवनारम्भ को एक उत्सव के रूप में मनाया जाता है जो शारीरिक वयस्कता को समर्पित होता है, साथ-ही आत्मिक जीवन का आह्वान किया जाता है। यही वह समय है जब बालिकाओं को अपने स्वास्थ्य और भावनात्मक स्थिरता के लिए योग की ओर प्रवृत्त करना चाहिए। उनके आध्यात्मिक अनुभवों की आधारशिला का समय यही है।

रजोदर्शन

एक बालिका में यौवनारम्भ के साथ ही यौन सम्बन्धी परिपक्वता आ जाती है और वह गर्भ धारण करने योग्य हो जाती है। विकास की इस प्रक्रिया में कभी महीनों लग जाते हैं और कभी एक वर्ष से भी अधिक समय लग जाता है, किन्तु व्यक्तिगत रूप से यह अचानक घटित हुआ प्रतीत होता है।

बालिकाओं में यौवनारम्भ होते-होते स्तनों में वृद्धि होने लगती है और इसके साथ गुह्यांग रोम भी दृष्टिगोचर होने लगते हैं। रजोदर्शन या प्रथम ऋतुस्राव इस प्रक्रिया की अन्तिम परिणति है जो बालिका की शारीरिक परिपक्वता की पराकाष्ठा है। यहीं पर उसका सामाजिक वयस्कता में पदार्पण होता है।

उत्सव

अनेक संस्कृतियों में बालक एवं बालिकाओं के यौवनारम्भ (वय: सन्धि) पर सांकेतिक अनुष्ठानों के आयोजन की परम्परा है। ऑस्ट्रेलिया की कुछ आदिम जातियों में रजोदर्शन होने पर बालिका को उष्ण बालू के अन्दर पैर से कमर तक गाड़ दिया जाता था ताकि उसके रज का प्रवाह आसान हो सके। उसकी माता उसे खाना खिलाती थी और उसकी देखभाल एक पवित्र स्थान पर करती थी। बाद में वह अपने कबीले में लौट जाती थी जहाँ स्त्रीत्व में प्रवेश पर समारोह का आयोजन होता था।

भारत के कुछ भागों में अभी भी प्रथम ऋतुस्राव होने पर 'कुमारी पूजन' के आयोजन का प्रचलन है। स्त्रीत्व प्राप्त करने के पहले दिन परिवार के सदस्य और मित्र उसे माँ 'शक्ति' का 'कुमारी' रूप, मानते हैं, पवित्रता और सम्भावनाओं का प्रतीक रूप मानते हैं, उसका पूजन करते हैं। यही कुमारी बड़ी होकर पार्वती के नाम से शिव की पत्नी होती है। कुमारी को फल-फूल एवं अन्य उपहारों से सजाया जाता है और पहली साड़ी पहनने को दी जाती है। कभी-कभी उत्सव के रूप में शोभा-यात्रा भी निकाली जाती है और भोज का आयोजन होता है। चौथे दिन आनुष्ठानिक स्नानोपरान्त वह मन्दिर जाकर पूजा करती है। उसके बाद वह भी श्रद्धालु हिन्दू स्त्रियों के समान उपवास तथा अन्य धार्मिक अनुष्ठानों में हिस्सा लेने लगती है।

अनावरण

इस प्रकार के अनुष्ठान संक्रमण काल की कठिनाइयों को दूर करते हैं तथा नव वयस्कता की स्थिति को मान्यता प्रदान करते हैं। अनेक समुदाय ऐसे हैं जो अब इस प्रकार के समारोहों का आयोजन नहीं करते हैं जिसके परिणामस्वरूप अनेक बालिकाएँ रजोदर्शन के प्रति पूर्णत: अनभिज्ञ रह जाती हैं। बालिकाओं के लिए यह श्रेयस्कर होगा कि वे इन दिनों अपने शरीर में होने वाले परिवर्तनों के विषय में अपनी माताओं से बातें करें ताकि उन्हें उन शारीरिक प्रक्रियाओं की जानकारी मिल सके और वे यह समझ पायें कि ये सामान्य प्रक्रियाएँ हैं जो किसी भी प्रकार उनके लिए हानिकारक नहीं हैं। यह माता और पुत्री, दोनों के लिए चुनौतीपूर्ण समय होता है और यही वह समय है जब दो स्त्रियों के बीच स्नेहपूर्ण सम्बन्धों की नींव पड़ती है।

विशेषकर भारत में एक माँ इन बातों की चर्चा करने में संकोच का अनुभव कर सकती है, किन्तु पुत्री अपनी माँ के संवेदनापूर्ण तथा मुक्त विचार-विमर्श से लाभान्वित हो सकती है। यदि माँ अपने ज्ञान को अपर्याप्त मानती है तो यही समय है जब उसे शारीरिक तथ्यों से अवगत हो जाना चाहिए। यही उसकी अपनी अभिवृत्तियों के पुनर्मूल्यांकन का भी समय है, क्योंकि उसकी नकारात्मकता न केवल उसके लिए, बल्कि पुत्री के लिए भी हानिकारक हो सकती है, क्योंकि वह इस नकारात्मकता को सहज ही ग्रहण कर लेती है जो उस तरुणी के लिए अनुभवों का एक दुर्भाग्यपूर्ण प्रारम्भ होगा।

रूपान्तरण

दबाव एवं तनाव एवं साथ ही द्रुत व्यक्तिगत विकास किशोरावस्था के लक्षण हैं। यौवनारम्भ के साथ प्रारम्भ होने वाले शारीरिक परिवर्तन क्रमशः चलते रहते हैं। हॉर्मोनों को एक सन्तुलित स्थिति में आने में कई वर्ष लग जाते हैं। प्रारम्भिक वर्षों में ऋतुस्राव प्रायः अनिश्चित एवं वेदनापूर्ण होता है। किशोरावस्था में बालिकाओं का वजन बढ़ जाता है, चेहरे पर धब्बे और मुँहासे उग आते हैं। कोमल और चपल बालिका अपने शारीरिक परिवर्तनों के साथ सामंजस्य स्थापित करने का प्रयास कर रही होती है, और उसमें अनाड़ीपन तथा अल्हड़पन आ जाता है।

एक किशोरी अपने शरीर से तो अपरिचित रहती ही है, उसे नयी भूमिकाओं एवं कर्तव्यों के कारण भावनात्मक द्वन्द्वों का सामना भी करना पड़ता है। ऐसे समय में उसे अपने यौन संवेगों को समझ कर उनसे निपटना चाहिए। उसे अपनी इन भावनाओं को व्यक्त करने की छूट तो नहीं ही होती है, कभी-कभी उसकी इन भावनाओं के होने पर भी विश्वास नहीं किया जाता है। इस अवस्था में बालिकाओं को एक और समस्या का सामना करना पड़ता है। वे देखती हैं कि पुरुषों में उनके प्रति कामुकता उत्पन्न हो गयी है। कुछ इसे स्वाभाविक मानती हैं और कुछ अहंवर्धक मानती हैं, किन्तु अनेक ऐसा अनुभव करती हैं कि वे एक व्यक्ति नहीं, बल्कि एक 'वस्तु' हैं और अपने व्यक्तित्व लोप के साथ समझौता करने में उन्हें थोड़ा समय लग जाता है। रूढ़िवादी समाजों में बालिकाओं को अति सुरक्षित रखा जाता है और बालकों से उनका मिलना-जुलना, यहाँ तक कि बातें करना भी निषिद्ध रहता है, जिसके फलस्वरूप उनके अन्दर अवांछित रूप से

अस्वाभाविक भय उत्पन्न हो जाता है जो उन्हें लोगों से अधिक-से-अधिक दूर करता जाता है।

किशोरावस्था (वय: सन्धि काल) में ही बालिका को पत्नी और मातृत्व की भूमिका के लिए तैयार होना पड़ता है, इससे उसमें मानसिक दबाव उत्पन्न हो जाता है। साथ-ही वह पाती है कि उसके बचपन की स्वतन्त्रता उससे छिनने वाली है। एक बालिका के रूप में उसके जिस व्यवहार को उचित माना जाता था, एक युवती के रूप में उसे अनुपयुक्त माना जाने लगा है। अब उससे अधिक मर्यादित आचरण की अपेक्षा रखी जाने लगी है। इस अवस्था में बालिकाएँ समाज में अपने स्त्रीत्व की छवि के विभिन्न पक्षों – माधुर्य, स्नेह, संकोच और सबसे अधिक सौन्दर्य के प्रति सजग हो जाती हैं। अधिकतर बालिकाएँ इस आदर्श को स्वीकार कर स्वयं को उसके अनुरूप ढालने का प्रयास करती हैं। किन्तु ऐसा नहीं होने पर वे व्यथित भी हो जाती हैं। किशोरावस्था में बालिकाओं का अपने रूप-रंग और साज-सज्जा पर विशेष रूप से समय व्यतीत होने लगता है, और वे अपनी भ्रमित भावनाओं में भी उलझी रहने लगती हैं।

यह ऐसी अवस्था है जब एक बालिका को अपनी उभयमुखी इच्छाओं में से एक का चुनाव कर लेना चाहिए और साथ-ही स्वयं को संयत कर अपने अन्दर ऐसी क्षमताओं का विकास करना चाहिए जिससे वह वयस्क समाज की एक उपयोगी सदस्या बन सके। किन्तु प्राय: ऐसा देखा गया है कि हँसमुख रहने वाली नन्ही बालिका विभिन्न स्तरों पर भ्रमित होकर चिड़चिड़ी, नाराज, अवज्ञाकारी या रुष्ट रहने लगती है। अन्तत: उसका व्यवहार या तो असामाजिक हो जाता है या आत्मघातक। उसके बचपन में यदि उसे कोई समस्या रही होती है तो अब वह अधिक जटिल होकर उसमें अवसाद एवं द्वन्द्व उत्पन्न कर देती है जो विभिन्न रूपों में प्रकट होने लगता है, जैसे – चिड़चिड़ापन, दु:स्वप्न, बिस्तर गीला करना, व्यर्थ खिलखिलाना, नाखून चबाना, झूठ बोलना, शर्माना, चिन्तामग्न रहना, संवेदनशील हो जाना या रोना।

कभी-कभी बालिका का व्यवहार इन कारणों से इतना अधिक प्रभावित हो जाता है कि उसके परिवार वाले उसे मानसिक रूप से असन्तुलित समझने लगते हैं। प्राय: बालिका के माता-पिता और परिवार के अन्य सदस्य उसकी इस स्थिति को समझ नहीं पाते, क्योंकि वे स्वयं उसके शरीर और मन में हो रहे परिवर्तनों के बीच के सम्बन्धों से अनभिज्ञ रहते हैं। ऐसी दशा में उस अवसन्न

युवती को या तो किसी मनोचिकित्सक के पास ले जाया जाता है या किसी चिकित्सालय (मानसिक अस्पताल) में भर्ती कर दिया जाता है जहाँ विभिन्न दवाओं से उसके उस असामान्य लक्षणों को दबा दिया जाता है, किन्तु इससे उसकी व्यथा अथवा अन्तर्द्वन्द्व में सुधार नहीं हो पाता है। भारत में ऐसी स्थिति में पूजा या झाँड़-फूँक करवाते हैं जो बेकार साबित होते हैं।

यद्यपि प्रत्येक बालिका की स्थिति न तो इतनी भयावह होती है और न असहाय, फिर भी अधिकतर बालिकाओं को कई वर्षों तक अनुभवों के उतार-चढ़ाव से गुजरना पड़ता है। इस अवस्था में किसी भी अनुभूति की तीव्रता बद-से-बदतर प्रतीत होती है।

माता का उपहार

किशोरी पुत्रियों की माताओं के लिए यह एक कठिन समय होता है। यद्यपि पिता भी ऐसे समय में उसके लिए बहुत कुछ कर सकते हैं, फिर भी एक बालिका प्राय: अपनी माता से ही सहायता की अपेक्षा रखती है। यह एक ऐसा कठिन समय होता है जब बालिका को अपने माता-पिता, दोनों की पूरी सहायता की आवश्यकता होती है। इसके लिए स्वयं को थोड़ा तटस्थ रखते हुए पुत्री को स्वानुभव से सीखने और करने देने की स्वतन्त्रता दी जानी चाहिए। साथ ही उसके क्रियाकलापों पर अपनी सतर्क दृष्टि भी रखनी चाहिए।

तुम्हारी सन्तान हमारी सन्तान नहीं है।
वे जीवन की अपनी चाह की
पुत्र एवं पुत्रियाँ हैं
वे आये तुम्हारे माध्यम से होंगे
पर तुमसे नहीं।
और यद्यपि वे तुम्हारे साथ हैं,
वे तुम्हारे हैं नहीं

– खलील जिब्रान

इस अवस्था में यदि पुत्री को योग की ओर उन्मुख किया जाए तो यह माता द्वारा दिया गया एक अनमोल उपहार होगा, क्योंकि इससे उत्पन्न साहस एवं आशावादिता के साथ वह अपने अनन्य गन्तव्य की ओर अग्रसर होगी।

दीक्षा

प्राचीन भारत में बालिकाओं को भी गुरुकुल शिक्षा के लिए आश्रमों में भेजे जाने की प्रथा थी, जो आज भी बालकों के लिए प्रचलित है। महाकवि कालिदास विरचित संस्कृत महाकाव्य अभिज्ञान शाकुन्तलम् से यह जानकारी मिलती है कि पूरे बारह वर्षों तक बालिकाओं की शिक्षा आश्रम में हुआ करती थी। उनका भी उपनयन संस्कार किया जाता था। उस युग में बालकों के साथ-साथ बालिकाओं को भी दीक्षा दी जाती थी। उन्हें सूर्यनमस्कार एवं प्राणायाम में प्रशिक्षित करने के साथ गायत्री मन्त्र का ज्ञान भी दिया जाता था। अन्य धर्मों–ईसाई, पारसी, एवं यहूदी में दीक्षा के समान एक संस्कार प्रचलित है जो बालकों की तरह बालिकाओं को भी दिया जाता है।

जबकि एक बालिका के जीवन में अन्य पक्ष उसके सम्मुख प्रस्फुटित हो रहे हों और नयी सम्भावनाएँ उसकी प्रतीक्षा में हों तो ऐसे में एक संवेदनशील माता का यह कर्तव्य है कि वह अपनी पुत्री के विवेक के सम्पोषण के लिए योग से उसका परिचय कराये। योग के अभ्यास आंगिक प्रक्रियाओं को सुव्यवस्थित एवं हॉर्मोनों को सन्तुलित करते हुए सम्पूर्ण शारीरिक संरचना को लाभान्वित करते हैं। आसनों में विशेषत: सूर्यनमस्कार ऋतुस्राव को नियमित, शरीर के वजन को नियन्त्रित, त्वचा के रंग को साफ रखता है और साथ-ही आन्तरिक आक्रामक ऊर्जा को मुक्त करता है। प्राणायाम और जप के द्वारा तनाव से मुक्ति मिलती है, भावनाएँ शान्त हो जाती हैं तथा विकृति की सीमा तक उत्पन्न हुए संकोच को दूर करने के लिए सकारात्मक आत्म-सजगता के विकास में सहायता मिलती है। योग के अभ्यास एक किशोरी की भावनाओं में स्थिरता लाने और आत्मविश्वास उत्पन्न करने में सहायक होते हैं जिससे उसका एक सधा सन्तुलित व्यक्तित्व निखर उठता है, जो अन्यथा सम्भव नहीं हो पाता।

और भी महत्त्वपूर्ण बिन्दु यह है कि योग के अभ्यास बच्चों के उन विशेष सम्पर्क-सूत्रों की रक्षा करते हैं जिनके द्वारा बच्चे अपने आन्तरिक जीवन के साथ सजग रूप से युक्त रहते हैं। वयस्क होने की प्रक्रिया में भी उनकी यह सजगता नष्ट नहीं होकर परिपक्व आध्यात्मिकता में रूपान्तरित हो जाती है।

जीवन में परिवर्तन

वेदों में जीवन के चार आश्रमों, अर्थात् जीवन की विभिन्न अवस्थाओं में विभक्त सामाजिक एवं आध्यात्मिक पक्षों का वर्णन किया गया है। इनमें से पहला है

ब्रह्मचर्य आश्रम, जो विवाह के पूर्व युवाओं के आचरण को अनुशासित करता है। माता-पिता और परिवार के साथ कुछ वर्ष रहने के पश्चात् बालक और बालिकाएँ अपने घरों को छोड़ अपने गुरु के आश्रम में रहने और उनकी सेवा करने चली जाती थीं। इस अवधि में वे आध्यात्मिक विकास पर बल देते हुए अपनी शिक्षा का विस्तार करते थे, जो उन्हें उनके भावी कर्तव्यों के लिये तैयार करता था।

विवाह से उनके गृहस्थ आश्रम का प्रारम्भ होता था, जिसमें वंश वृद्धि और सामाजिक दायित्वों के सक्रिय सम्पादन के साथ आध्यात्मिक प्रगति की प्रेरणा भी मिलती रहती थी। जब बच्चे बड़े हो जाते थे और माता-पिता अपने उत्तरदायित्वों से मुक्त हो जाते तब समाज से निकल कर वे वानप्रस्थ आश्रम में प्रवेश करते और औपचारिक रूप से आध्यात्मिक साधना का विकास करते थे। जीवन के दीर्घकालिक अनुभवों के उपरान्त वे संन्यास आश्रम के लिये सांसारिक जीवन का त्याग करते थे।

यौवनारम्भ में उपनयन संस्कार के द्वारा ब्रह्मचर्य आश्रम प्रारम्भ होता था। प्रौढ़ावस्था में वानप्रस्थ की दीक्षा एक पूर्ण गृहस्थ जीवन से गहन साधनायुक्त जीवन में परिगमन को ज्ञापित करती है। अनेक स्त्रियों में यह धारणा होती है कि रजोनिवृत्ति के पश्चात् जीवन में परिवर्तन लाने की आवश्यकता होती है, जबकि यह केवल एक शारीरिक परिवर्तन होता है। वानप्रस्थ आश्रम का सम्बन्ध अनिवार्यत: रजोनिवृत्ति से नहीं है, किन्तु यह स्वाभाविक शारीरिक परिपक्वता अवश्य ही स्त्रियों की सामाजिक भूमिका और उनके आध्यात्मिक जीवन को प्रभावित करती है तथा उनकी आत्मा के विकास के लिए नये युग की घोषणा करती है।

रजोनिवृत्ति

वय वृद्धि की स्वाभाविक प्रक्रिया के साथ शरीर के अन्दर प्रजनन सम्बन्धी हॉर्मोनों का उत्पादन घटता जाता है। धीरे-धीरे अण्डाशय और गर्भाशय सिकुड़ने लगते हैं तथा अन्तत: ऋतुस्राव पूर्णत: बन्द हो जाता है। इसे रजोनिवृत्ति काल कहा जाता है।

यौवनारम्भ की भाँति रजोनिवृत्ति भी एक क्रमिक प्रक्रिया है जिसके पूरा होने में कई वर्ष भी लग सकते हैं। सामान्यत: यह पैंतालीस से पचपन वर्षों के बीच घटित होती है, किन्तु कभी-कभी यह पहले भी प्रारम्भ हो जाती है। ठण्ढे देशों की स्त्रियों को, जिन्हें रजोदर्शन पहले होता है, उन्हें रजोनिवृत्ति की अनुभूति

भी बाद में होती है। गर्म देशों में दोनों के ही कुछ जल्दी होने की सम्भावना रहती है। रजोनिवृत्ति को प्रभावित करने वाले जो अन्य कारण प्रतीत होते हैं, वे हैं – पोषण का सामान्य स्तर, मोटापा और उन्हें बच्चों का होना या न होना।

किसी बीमारी के कारण या शल्य क्रिया द्वारा अण्डाशयों को निकाल देने पर भी रजोनिवृत्ति जल्दी हो जाती है। गर्भाशय निकाल देने पर भी सूक्ष्मतौर पर रजोनिवृत्ति प्रेरित नहीं होती है, जब तक कि दोनों अण्डाशयों को निकाल न दिया जाय। आजकल सामान्यत: स्वस्थ अण्डाशय को छोड़ दिया जाता है जो समुचित मात्रा में ओएस्ट्रोजेन का उत्पादन करता रहता है ताकि रजोनिवृत्ति अपने निश्चित समय पर ही हो।

ओएस्ट्रोजेन एवं प्रोजेस्टेरोन की मात्रा में कमी होने से हड्डियों, त्वचा एवं परिसंचरण तन्त्र में कुछ लघु परिवर्तन आने लगते हैं। किन्तु रजोनिवृत्ति का सबसे महत्त्वपूर्ण पक्ष यह है कि इसके बाद स्त्रियों की प्रजननशीलता समाप्त हो जाती है। शेष अन्य क्षमताएँ इससे अप्रभावित रहती हैं, विशेषत: व्यक्तिगत विकास में निश्चित रूप से कोई अवरोध नहीं आता।

शारीरिक लक्षण

रजोनिवृत्ति के कई वर्ष पूर्व से ही हॉर्मोनों के उत्पादन में क्रमश: कमी आने लगती है। इसके फलस्वरूप ऋतुस्राव हल्का और अल्पकालिक हो जाता है। किसी-किसी महीने में तो स्राव होता ही नहीं। कुछ स्त्रियों में लम्बे अन्तराल के बाद स्राव होने पर यह अधिक मात्रा में तीव्र प्रवाह के साथ होता है, किन्तु कुछ अन्य स्त्रियों में मासिक चक्र अचानक बन्द हो जाता है। लगभग पन्द्रह प्रतिशत स्त्रियों में मासिक चक्र एक वर्ष या उससे भी अधिक समय तक बन्द रहकर पुन: प्रारम्भ होता है, किन्तु शीघ्र ही पूरी तरह समाप्त हो जाता है।

यद्यपि रासायनिक सन्तुलन में होने वाले त्वरित परिवर्तनों के साथ शरीर स्वयं को समायोजित करता रहता है, फिर भी इसे कुछ कष्ट का अनुभव अवश्य होता है। यह केवल आन्तरिक क्रियाओं से ही सम्बद्ध नहीं होता, बल्कि इसका एक निश्चित शारीरिक कारण होता है तथा इसका अनुभव पूर्णत: स्वस्थ, सक्रिय एवं सकारात्मक स्त्रियों को भी होता है।

'**उष्ण सम्प्रवाह**' जो नाम से ही स्पष्ट है, अचानक आने वाले ताप के ऐसे आवेग जो छाती, ऊपरी पीठ, गले और सिर को प्रभावित करते हैं। कभी-

कभी इसके साथ ही त्वचा पर लाल चकत्ते उभर आते हैं। ताप का ऐसा आवेग आने पर शरीर पसीने से भींग जाता है। उसके बाद ठण्ड लगने लगती है और कमजोरी का अनुभव होता है।

सामान्यत: उष्ण प्रवाह एक-दो मिनट तक रहता है, किन्तु गम्भीर परिस्थितियों में यह पन्द्रह मिनट तक भी रह सकता है। यह दिन में कभी भी और कई बार भी हो सकता है। कुछ स्त्रियों ने यह अनुभव किया है कि उष्ण सम्प्रवाह उसी दिन आता है जिस दिन उनका ऋतुस्राव प्रारम्भ होना चाहिए था। उष्ण सम्प्रवाह अधिकतर रातों में होते हैं और इनका प्रभाव इतना तीव्र होता है कि शरीर पसीने से भींग जाता है और बिस्तर की चादर भी गीली हो जाती है। चूँकि इससे रात की नींद बाधित हो जाती है, अत: दिन के समय थकान और चिड़चिड़ापन अनुभव हो सकता है।

उष्ण सम्प्रवाह का कारण अब तक समझ में नहीं आ सका है, फिर भी ऐसा प्रतीत होता है कि इसका कारण हाइपोथैलेमस का हॉर्मोनों में होने वाले अप्रत्याशित परिवर्तनों के साथ ताल-मेल बैठाने का प्रयास है। एक बार शरीर जब ओएस्ट्रोजेन के निम्न स्तर के साथ स्वयं को समायोजित कर लेता है तो इस प्रकार के उष्ण सम्प्रवाह आने बन्द हो जाते हैं।

योनि शोष के अन्तर्गत योनि में शुष्कता आ जाती है और उसका लचीलापन चला जाता है। योनि की दीवारों से नि:स्रवित होने वाले द्रव के उत्पादन में कमी आने पर ऐसा होता है। योनि शोष के कारण सहवास कष्टकर हो सकता है और परिणामस्वरूप रोगों के संक्रमित होने की सम्भावना बढ़ जाती है। प्राय: रजोनिवृत्ति के उत्तरार्द्ध में ऐसा होता है। ऋतुस्राव बन्द होने के पाँच-दस वर्षों के अन्दर स्थिति इतनी गम्भीर नहीं होती है।

रजोनिवृत्ति के कारण शरीर का भार बढ़ना अनिवार्य नहीं है, किन्तु ऐसे समय में क्षुधा क्रम विच्छिन्न हो जाता है। इससे भार बढ़ने की सम्भावना रहती है। आयु वृद्धि के साथ शरीर को भोजन की आवश्यकता कम होती जाती है। एक नियमित यौगिक आहार के साथ शरीर की आन्तरिक सजगता पर ध्यान रखा जाय तो मोटापे को रोका जा सकता है।

रजोनिवृत्ति संलक्षण के अन्तर्गत केवल वे समस्याएँ नहीं आती हैं जिनका ऊपर वर्णन किया गया है, बल्कि सिरदर्द, अपच, सिर चकराना, हृदय की धड़कन बढ़ना, अनियमित रक्तचाप, अनिद्रा, आलस्य, चिड़चिड़ापन और उदासी भी इसका संकेत देते हैं। इन समस्याओं का सीधा सम्बन्ध ओएस्ट्रोजेन के

स्तर में आने वाली गिरावट से नहीं है। फिर भी हॉर्मोनों में होने वाली कमी-बेशी स्त्रियों की मनोदशा को निश्चित रूप से प्रभावित करती है। अतिसंवेदनशील एवं मानसिक रूप से असुरक्षित स्त्रियों में ये समस्याएँ अधिक जटिल हो जाती हैं।

एक अल्पांश

ऊपर उल्लिखित किसी शारीरिक या भावनात्मक समस्या की विद्यमानता में दिन-प्रतिदिन अन्तर होता रहता है। कुछ स्त्रियाँ तो इन समस्याओं से बिल्कुल मुक्त रहती हैं। इंग्लैण्ड और अमेरिका में हुए अध्ययनों से यह ज्ञात हुआ है कि उष्ण सम्प्रवाह रात में आने वाले पसीने एवं योनि शोष का सीधा सम्बन्ध रजोनिवृत्ति काल से है। सामान्यत: अधिकतर स्त्रियाँ (दस में से नौ) किसी-न-किसी प्रकार के कष्ट का अनुभव तो करेंगी, किन्तु इस सीमा तक भी नहीं कि उनके जीवन क्रम में बाधा उत्पन्न हो या उन्हें चिकित्सा कराने की आवश्यकता पड़े। ऐसी स्त्रियाँ अल्पसंख्या में ही हैं जिन्हें तरह-तरह की समस्याओं का सामना करना पड़ता है या जिनका सामान्य जीवन-क्रम बाधित हो जाता है।

कुछ उपचार

- *समस्यात्मक रजोनिवृत्ति* की गम्भीर स्थिति में चिकित्सक हॉर्मोन प्रतिस्थापन उपचार का प्रयोग करते हैं, जिसके अन्तर्गत संश्लेषित ओएस्ट्रोजेन की खुराक बार-बार लेनी होती है। यद्यपि प्राय: यह उपचार प्रभावकारी होता है, फिर भी इसे विवादास्पद माना जाता है, क्योंकि इसके साथ एन्डोमेट्रियल कैंसर, उच्च रक्तचाप, रक्त का थक्का बनने और हृदय रोगों की सम्भावनाएँ जुड़ी रहती हैं।
- ऐसे में *होमियोपैथिक* चिकित्सा का विलक्षण प्रभाव होता है। विशेषकर जब इसे योग साधना के साथ संयुक्त किया जाय। उदासी में 'सीपिया' तथा उष्ण सम्प्रवाह में 'पल्सेटिला' सामान्य रूप से प्रभावकारी होती है।
- *उपयुक्त आहार* रजोनिवृत्ति काल में तथा उसके बाद उत्पन्न होने वाली समस्याओं को कम करने में सहायक हो सकता है। डिम्बाशय में उत्पन्न होते हॉर्मोनों का उत्पादन बन्द हो जाने से कैल्शियम का अभाव हो जाता है। इस अभाव की भरपाई दूध और हरी सब्जियों के माध्यम से अतिरिक्त कैल्शियम और विटामिन 'डी' (सूर्य का प्रकाश) लेकर की जा सकती

है। इनके द्वारा हड्डियाँ ऑस्टियोपोरोसिस से बची रहेंगी और मजबूत रहेंगी। कुछ प्रोटीन (विशेषकर ट्रिप्टोफैन) की कमी भी उदासी का कारण हो सकती है। और ओएस्ट्रोजन की कमी इसे अतिरंजित कर सकती है। प्रोटीन की मात्रा में थोड़ी वृद्धि के द्वारा उदासी के इस कारण को दूर किया जा सकता है। अत: आहार में दाल, सोयाबीन, मूँगफली, गेहूँ, चावल तथा अन्य अनाज अवश्य होने चाहिए।

- बीस-तीस वर्ष की आयु से ही *नियमित योग अभ्यास* करने पर सम्पूर्ण शरीर तन्त्र निश्चित रूप से स्वस्थ रहेगा, साथ ही रजोनिवृत्ति काल में गुर्दों, आँतों, फेफड़ों को पर्याप्त रूप से तैयार करेगा।

नकारात्मक अभिवृत्ति

पुराने जमाने में जीवन में होने वाला परिवर्तन अंधविश्वास और भ्रम के कारण अधिक दु:खदायी हुआ करता था। ऐसा माना जाता था कि रजोनिवृत्ति के बाद स्त्रियाँ स्त्रीत्व विहीन हो जाती हैं, उनके अन्दर का सार तत्त्व समाप्त हो जाता है और शेष रह जाती है एक वृद्धा। यद्यपि आज विकसित हुई जानकारियों से इस अभिवृत्ति में बहुत परिवर्तन आ चुका है, फिर भी स्त्रियाँ अपने स्त्रीत्व के खो जाने की चिन्ता और भय से मुक्त नहीं हो पायी हैं। ये अतिरिक्त कष्ट वास्तविक होते हैं, किन्तु इनका सम्बन्ध शरीर से नहीं होता। ऐसी स्त्रियाँ जो पारिवारिक उत्तरदायित्वों के साथ आत्मसंयम एवं आत्म अनुशासन में रहती हैं, उन्हें ऐसे समय में पश्चाताप, संदेह या भय अधिक नहीं सताता। इस परिवर्तन के प्रति जिन स्त्रियों का दृष्टिकोण तर्कसंगत और सकारात्मक होता है उनमें मनोवैज्ञानिक स्तर पर होने वाली परेशानियों की सम्भावना कम होती है।

प्राउलिन बार्ट बनिस न्यूगार्टेन एवं बोस्टन महिला सामूहिक स्वास्थ्य प्रदर्शन द्वारा किये गए अनेक शोध एवं अध्ययनों से यह ज्ञात हुआ है कि अनेक स्त्रियाँ जीवन की उस अवस्था में रजोनिवृत्ति के कारण होने वाले कष्टों से पूर्णतया मुक्त रहती हैं। इन शोधों के आधार पर यह भी पाया गया है कि जो स्त्रियाँ आशावादी एवं सक्रिय हैं उन्हें भी रजोनिवृत्ति के स्पष्ट लक्षणों (उष्ण सम्प्रवाह, योनि अपक्षय) का सामना करना पड़ा। हालाँकि उदासी, अनिद्रा, सिर दर्द एवं अन्य रजोनिवृत्ति के लक्षण प्राय: पच्चीस से चालीस वर्ष के आयु वर्ग की स्त्रियों में दृष्टिगत होते हैं। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि

ये समस्याएँ केवल रजोनिवृत्ति से सम्बद्ध नहीं हैं, बल्कि इन स्त्रियों के वयस्क जीवन में छाये हुए गहरे असन्तोष के प्रतिबिम्ब हैं। ये समस्याएँ और असन्तोष रजोनिवृत्ति के कारण ही उत्पन्न नहीं होते, बल्कि ये उस अवधि में स्पष्ट रूप से प्रकट हो जाते हैं।

व्यर्थ का भय

सामान्यतया कम उम्र की स्त्रियों की मनोवृत्ति जीवन में आने वाले परिवर्तन के प्रति नकारात्मक होती है। बिना व्यक्तिगत अनुभव के रजोनिवृत्ति के विषय में उनके अन्दर ऊटपटांग विचार होते हैं, जिसके कारण वे आशंकित रहती हैं कि रजोनिवृत्ति की स्थिति और भी बुरी होगी। जिन स्त्रियों को रजोनिवृत्ति का अनुभव हो चुका है उनकी मनोवृत्ति इस विषय में उतनी नकारात्मक नहीं होती है। उनका दृष्टिकोण अपेक्षाकृत बेहतर प्रतीत होता है। उनके व्यक्तिगत विकास और परितोष के सन्दर्भ में रजोनिवृत्ति का महत्त्व अपेक्षाकृत कम होता है। इससे यह संकेत मिलता है कि कम उम्र की स्त्रियों को वृद्धाओं के साथ बैठकर इन विषयों पर नि:संकोच विचार-विमर्श करना चाहिए।

यहाँ एक मुख्य भय और आशंका होती है कि रजोनिवृत्ति के कारण स्त्रियों की यौनेच्छा समाप्त हो जायेगी, जबकि वृद्धाओं की बातों से पता चलता है कि रजोनिवृत्ति के बाद भी उनके वैवाहिक जीवन का सक्रिय एवं सन्तोषपूर्ण बना रहना असामान्य नहीं है। यहाँ तक कि पुरानी भ्रान्तियों के विपरीत सामान्यत: ऐसी अग्रवर्त्ती स्त्रियाँ अपने पतियों से अधिक निकटता के पुनर्प्रस्फुटन का अनुभव करने लगती हैं और उनके अन्दर अन्य प्रकार की रुचियाँ एवं क्षमताएँ उत्पन्न होने लगती हैं।

रजोनिवृत्ति को लेकर लोगों को एक भय यह भी होता है कि इसके द्वारा अन्त की शुरुआत हो जाती है, अर्थात् सठियाने की ओर अग्रसर होना। लगभग सन् 1900 ई. तक, जो हमारी दादियों-परदादियों का समय था, आयु सीमा कम हुआ करती थी। यदि अमेरिका का उदाहरण लें तो उस काल में स्त्रियों की आयु औसतन पचास वर्ष होती थी और उनकी रजोनिवृत्ति चालीस वर्ष की आयु में हो जाती थी। वर्तमान समय में रजोनिवृत्ति तो प्राय: उसी उम्र में होती है या कुछ बाद में, जबकि औसतन स्त्रियाँ सत्तर वर्ष की आयु तक भी जीवित रह सकती हैं। पूरे विश्व में इसी प्रकार आयु सीमा में वृद्धि हुई है।

इस प्रकार रजोनिवृत्ति से हमारी जीवन की सक्रियता समाप्त नहीं हो जाती है। जीवन का एक तिहाई हिस्सा अब भी हमारे सामने शेष रह जाता है। इसे जीवन का उत्कृष्ट समय मानना चाहिए, क्योंकि इस समय हमारे पास अपने अतीत के अनुभव होते हैं, हम अपने अधिकांश कर्तव्यों से मुक्त हो चुके होते हैं तथा हमारी चिन्ताएँ भी दूर हो चुकी होती हैं।

यौगिक दृष्टिकोण

वे स्त्रियाँ जो कम उम्र से ही योग का अभ्यास करती रही हैं उन्हें रजोनिवृत्ति की अवधि में अधिक शारीरिक कष्ट नहीं होते और भावनात्मक उद्वेलन तो बिल्कुल नहीं होता। असन्तुलित हुए हॉर्मोनों पर योगासनों का विलक्षण सन्तुलनकारी प्रभाव होता है। डिम्बाशय से ओएस्ट्रोजेन का स्रवण बन्द हो जाने के बाद भी यकृत और गुर्दों में इसका उत्पादन जारी रहता है। यथोचित योग के अभ्यासों के द्वारा हॉर्मोनों के इन अतिरिक्त स्रोतों को सक्रिय रखकर डिम्बाशय के हॉर्मोन विहीन होने पर भी इस कमी को आंशिक रूप से पूरा किया जा सकता है। यदि आप पहले से योग के अभ्यास नहीं कर रही हैं, तो अब भी समय है आप इसे प्रारम्भ कर सकती हैं। जिन स्त्रियों ने अपना गर्भाशय निकलवा लिया है या उनके शरीर में कोई गम्भीर शल्य क्रिया की गई है तो भी वे योग का अभ्यास आरम्भ करने के लिये पूर्णतया सक्षम हैं।

विपरीतकरणी मुद्रा, सर्वांगासन, शीर्षासन को यदि पीछे मुड़कर किये जाने वाले आसनों के साथ मिलाकर किया जाये तो उनसे विशेष लाभ होता है। अनेक स्त्रियों ने ऐसे समय में प्राणायाम को अत्यन्त महत्त्वपूर्ण माना है जो चिड़चिड़ापन और अनिद्रा को दूर करता है। मुद्रा एवं बन्ध (मूल, जालन्धर एवं उड्डियान) सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण होते हैं यदि उन्हें ध्यान के अभ्यासों के साथ किया जाये।

एक ओर ध्यान के अभ्यासों के द्वारा भय और तनाव को दूर किया जा सकता है जो शारीरिक कष्ट का कारण होते हैं। साथ ही ध्यान विचारों की स्पष्टता और अपने भविष्य को अधिक उपयोगी बनाने की प्रेरणा भी देता है। दूसरी ओर अनेक प्रौढ़ स्त्रियाँ जीवन के इस मोड़ पर स्वयं को ध्यान के अभ्यासों में अधिक सक्षम तथा इनके प्रति संवेदनशील अनुभव करने लगती हैं। अब तक उनकी अनेक आकांक्षाएँ पूरी हो चुकी होती हैं और उन्हें अनुभव होने लगता है कि उनकी आसक्तियाँ स्वाभाविक रूप से समाप्त होने लगी हैं; उनके ध्यान को बाधित करने वाले विचारों में भी कमी आ गई है।

कर्म संन्यास

वैदिक काल में पति-पत्नी सम्मानपूर्वक एक साथ वानप्रस्थ आश्रम में प्रवेश करते थे, वास्तविक रूप में वनों में जाकर। वर्तमान काल में अधिकतर लोगों के लिए ऐसा कर पाना न तो व्यावहारिक है और न ही सम्भव। फिर भी अनेक स्त्रियों में जीवन की प्राथमिकताओं तथा उनके जीवन मूल्यों के सन्दर्भ में जो दृष्टिकोण परिवर्तन होता है उसके केन्द्र में उनका आन्तरिक जीवन होता है।

जो दीक्षा उनकी इस नयी जागरूकता को सशक्त और संपोषित करती है, उसे वानप्रस्थ दीक्षा या कर्म संन्यास कहते हैं। यह दीक्षा और योग साधना हमें सांसारिक जीवन से विमुख होने के लिए प्रोत्साहित नहीं करती, बल्कि एक भिन्न दर्शन तथा व्यापक एवं गहन जागरूकता के साथ उसी संसार में रहने की प्रेरणा देती है।

अपने जीवन को पूर्णता प्रदान करने के लिए और अपने आवश्यक उद्देश्य की पूर्ति के लिए हमें जागरूकता के क्षेत्र में प्रस्फुटन का अनुभव होना चाहिए जो विचार, ध्यान एवं साधनाओं के माध्यम से प्राप्त किया जा सकता है। बिना इस आत्म अनुभूति के हम अपने जीवन का अर्थ ढूँढते रह जाते हैं और हमारे अपूर्ण जीवन का अन्त आ जाता है। कर्म संन्यास हमें ऐसी मनोवृत्ति प्रदान करता है जिसके सहारे हम अपने पूर्व अनुभवों के प्रकाश में उनसे कुछ ग्रहण कर सकते हैं। साथ ही कर्म संन्यास साधना का ऐसा स्वरूप प्रदान करता है जिसके माध्यम से विवेकपूर्ण धरातल पर हमारे आध्यात्मिक जीवन में परिपक्वता आती है।

नारीत्व की विकास प्रक्रिया

प्रत्येक समाज अपने पुरुषों एवं स्त्रियों के लिये भिन्न-भिन्न वैयक्तिक विशिष्टता निर्धारित करता है। माना जाता है कि पुरुषों को पुरुषोचित एवं स्त्रियों को स्त्रियोचित होना चाहिए और दोनों को एक-दूसरे के विपरीत होना चाहिए। यह मान लिया जाता है कि पुरुष शरीर वाले मानव का पुरुषोचित व्यक्तित्व तथा स्त्री शरीर वाले का स्त्रियोचित व्यक्तित्व होना चाहिए। मान्यता है कि अचेतन स्तर पर पुरुषोचित एवं स्त्रियोचित व्यवहार जन्मजात होते हैं। व्यक्तित्व का निर्धारण उसमें प्रजनन भूमिका द्वारा होता है।

परम्परागत रूप से स्त्रियों को स्नेहमयी, कोमल, उदार तथा दूसरों की आवश्यकताओं के प्रति संवेदनशील समझा जाता है। वे सहजता से प्रभावित हो जाती और अनाक्रमक होती हैं। दूसरों पर अपनी प्रभुता स्थापित करने के स्थान पर वे स्वयं को समंजित कर दूसरों के अनुकूल बना लेती हैं, उनमें प्रतियोगिता की भावना नहीं होती और वे स्वयं को मिटा देने वाली होती हैं। ऐसी मान्यता है कि स्त्रियाँ विचारशील नहीं, भावनात्मक जीव हैं; वे बहिर्मुखी नहीं, अन्तर्मुखी होती हैं। पुरुषोचित गुणों जैसे सबलता, स्वच्छन्दता, महत्त्वाकांक्षा या दबंगपन का स्त्रियों में अभाव माना जाता है। इन सारी मान्यताओं के प्रतिकूल प्रमाण होने के बावजूद स्त्रियों के इस आदर्श रूप को इतनी दृढ़ता के साथ स्थापित कर दिया गया है कि सभी स्त्रियों को इसी घिसे-पिटे मानदण्ड के अनुसार मापा जाता है।

कितनी समानता

व्यक्तित्व पर हॉर्मोनों के प्रभाव का अन्त:स्राव शास्त्रियों द्वारा अध्ययन करने पर यह ज्ञात हुआ है कि पुरुष एवं स्त्री के हॉर्मोनों का उनके व्यक्तित्व पर

हल्का एवं सूक्ष्म प्रभाव पड़ता है। पुरुषों के हॉर्मोन टेस्टोस्टेरॉन की उच्च सीमा का सम्बन्ध अधिक आक्रामक व्यक्तित्व से हो सकता है और इस जैविक आधार पर यह कहा जा सकता है कि सामान्यत: स्त्रियों की अपेक्षा पुरुष अधिक आक्रामक होते हैं जबकि स्त्रियों के हॉर्मोन ओएस्ट्रोजेन का स्त्रैण प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। फिर भी इन शोधों ने इन तथ्यों पर बल दिया है कि व्यक्तित्व की विशिष्ट रूपरेखा के विकास में ये हॉर्मोन मात्र एक प्रेरक की भूमिका में रहते हैं। इनके द्वारा व्यक्ति के रुझान या प्रवृत्तियों का हल्का प्रदर्शन होता है, किन्तु व्यक्तित्व के गठन में व्यक्ति के वातावरण का, जहाँ उसका पालन-पोषण हो रहा है और अपनी संस्कृति में निहित अभिव्यक्ति के उन अवसरों का प्रमुख स्थान होता है।

शोधों के परिणामों में सबसे दिलचस्प तथ्य यह है कि किन्हीं भी दो स्त्रियों या दो पुरुषों में जो भिन्नताएँ पायी जाती हैं वे किसी एक स्त्री और पुरुष के बीच की भिन्नताओं से कहीं अधिक होती हैं। स्त्री और पुरुष के बीच की कुछ असमानताओं को अस्वीकार नहीं किया जा सकता, किन्तु उन वृहत् सम्भावनाओं के सम्मुख वे वास्तव में नगण्य हैं, जो स्त्रियों और पुरुषों, दोनों के लिये उपलब्ध हैं।

एक पुरुष पुरुषोचित (बलशाली, स्वच्छन्द, स्वाग्रही) व्यवहार करता है एवं एक स्त्री स्त्रियोचित (कोमल, परिपोषक, संकोची) व्यवहार करती है। यह एक ऐसा जैविक तथ्य प्रतीत होता है जो सत्य, स्वाभाविक और अपरिवर्तनीय हो, गहरे मानवीय स्वभाव की स्थायी अभिव्यक्ति हो। यह एक जैविक तथ्य नहीं, बल्कि समाज की कारीगरी है। पुरुषोचित पुरुष तथा स्त्रियोचित स्त्री की उत्पत्ति समाजीकरण की लम्बी प्रक्रिया का परिणाम है।

एक नवजात शिशु की सूक्ष्म शैक्षिक प्रक्रिया उसे एक मानव के रूप में, एक सामाजिक जीव के रूप में ढाल देती है। यह कठिन कार्य बच्चे के परिवार, मित्र, समकक्षियों, समुदाय और वृहद् समाज (सम्पूर्ण विश्व ही आज के युग में एक विशाल समाज है) के द्वारा सम्पन्न किया जाता है। एक बच्चे का विकास न केवल एक व्यक्ति के रूप में होता है, बल्कि उसे समाज के एक उपयोगी सदस्य के साँचे में ढाला जाता है। यह गहन प्रशिक्षण अनवरत, अहर्निश, दिन-रात लाखों छोटे-छोटे रूपों में वर्षों तक चलता रहता है। यह व्यक्ति के रोम-रोम में रस-बसकर उसके जीवन का ताना-बाना बन जाता है।

सामाजिक प्रक्रिया

एक स्त्री के रूप में विकसित होने वाले व्यक्ति के प्रति सभी का व्यवहार एक स्त्री के रूप में होता है, किन्तु एक पुरुष के रूप में बढ़ने वाले व्यक्ति के प्रति अन्य पुरुषों या स्त्रियों का व्यवहार वैसा नहीं होता। अत्यन्त सूक्ष्म रूप से एक व्यक्ति को इस बात का ज्ञान हो जाता है कि स्त्रियों के बीच एक स्त्री और पुरुषों के बीच एक स्त्री के होने का क्या अर्थ होता है।

स्त्री तथा पुरुषों के प्रति व्यवहारों में भिन्नता उनके शैशव से ही प्रारम्भ हो जाती है। बालिकाओं के प्रति माताओं या परिचारिकाओं की अन्यमनस्कता स्पष्ट परिलक्षित होती है। वे उन्हें उतनी दूर तक या उतनी गति से नहीं उठाती जितना वे बालकों के लिए करती हैं और बालकों की अपेक्षा उनसे अधिक ऊँची आवाज में बोलती हैं। बालिकाओं को वे कोमलता से स्पर्श करती हैं, जबकि बालकों को जोर से और झटके से उठाती हैं और उनका स्पर्श थोड़ी कठोरता से करती हैं। लोग उनसे जोर-जोर से बातें करते हैं। इस व्यवहार वैभिन्य का आधार यह धारणा है कि बालक अधिक बलशाली होते हैं और बालिकाओं को अधिक सुरक्षा की आवश्यकता होती है। और यह धारणा इसी प्रकार की अनेक नगण्य लगने वाली अनुभूतियों के माध्यम से बच्चों के मस्तिष्क में आरोपित कर दी जाती हैं।

लोग यह भूल जाते हैं कि उनका यह व्यवहार एक गुड्डे या गुड़िया के प्रति नहीं, बल्कि अनेक सम्भावनाओं से परिपूर्ण एक स्त्री या पुरुष के प्रति होता है, और अप्रत्यक्ष रूप से बच्चे के भावी व्यक्तित्व निर्माण में वे योग दे रहे हैं।

ज्यों-ज्यों बच्चे बड़े होते जाते हैं, उन्हें प्रथाओं के अनुरूप पुरस्कृत एवं प्रोत्साहित किया जाता है। पूरे विश्व में दौड़ना, कूदना, चढ़ना और ऐसे ही कठिन खेल बालकों के मनोरंजन का साधन माने जाते हैं जबकि बालिकाओं को ऐसे खेलों से रोका जाता है, क्योंकि इनसे उनके आहत होने का भय रहता है तथा इनके द्वारा उनका शरीर अवांछित रूप से कठोर हो सकता है। बालिकाओं को गृहस्थी के कार्यों में ही बाँध कर रखा जाता है और उन्हें शान्तिपूर्वक खेले जाने वाले खेलों के लिए प्रोत्साहित किया जाता है। उन्हें आमतौर पर मौखिक या हस्तकौशल वाले खेल की ओर झुकाया जाता है। गुड़ियों या छोटे बच्चों के साथ खेलना तो बालिकाओं के लिए विश्वव्यापी खेल है। जब वे कुछ बड़ी होती हैं तो उनका मनोरंजन करने के लिए उनके

हाथों में सुई-धागा थमा दिया जाता है। स्त्रियों के परवर्ती जीवन में उनके हस्त-कौशल को, छोटी-छोटी बातों में सावधानीपूर्वक ध्यान रखने को तथा ऐसे ही दक्षतापूर्ण गुणों को जन्मजात माना जाता है। और बाल्यकाल में उनके प्रशिक्षण की उपेक्षा की जाती है या इसे मात्र खेल कह कर टाल दिया जाता है।

ऐसा माना जाता है कि बालिकाओं का पालन-पोषण अधिक सावधानी और सुरक्षा के साथ होना चाहिए, फलत: उनका अधिकांश समय वयस्कों के साथ व्यतीत होता है। सम्भवत: यही कारण है कि बालिकाओं में अपने समान आयु के बालकों की अपेक्षा अधिक परिपक्वता आ जाती है। एक बालिका की परिपक्वता के लिए की गयी उसकी प्रशंसा वस्तुत: उसकी सहनशीलता की सूचक होती है। जहाँ एक सीमा तक बालकों की हठधर्मिता एवं अवज्ञाकारिता को उनकी स्वच्छन्दता का संकेत मानकर सहन कर लिया जाता है वहीं बालिकाओं के ऐसे व्यवहार पर भौंहे तिरछी होने लगती हैं, क्योंकि समाज उनसे अधिक समझदारी और सहनशीलता की अपेक्षा रखता है।

इस तरह के प्रशिक्षणों के आलोक में मनोवैज्ञानिक विश्लेषणों को समझना आसान होगा। इनके अनुसार बालिकाएँ बाल्यकाल से ही किसी बात पर बालकों की अपेक्षा अधिक समय तक ध्यान लगा सकती हैं और वे बालकों की अपेक्षा अधिक देर तक निश्चल होकर बैठ सकती हैं। यौवनारम्भ होने तक बालिकाएँ स्वयं को बालकों की अपेक्षा अधिक सुगमतापूर्वक व्यक्त कर सकती हैं। (यद्यपि बालक भी उनके समकक्ष हो जाते हैं) बालिकायें भाषा का प्रयोग अधिक करती हैं। जिन स्थितियों में बालक अपने क्रोध और विद्वेष को शारीरिक रूप से व्यक्त करते हैं, उन्हीं स्थितियों में बालिकायें अपनी अभिव्यक्ति को शब्दों तक ही सीमित रखती हैं। इस प्रकार स्त्रियों की अनाक्रामक छवि मान्य है (किन्तु मूलत: यह सत्य नहीं)। यद्यपि उन्होंने स्वयं को इस प्रकार अभिव्यक्त करना सीखा है, फिर भी सामाजिक मान्यताओं और अपेक्षाओं के विपरीत स्त्रियाँ भी पुरुषों के समान आक्रामक, हठधर्मी, स्वाग्रही, स्वच्छन्द, निष्ठुर या ताकतवर हो सकती हैं, परन्तु उनके द्वारा इन लक्षणों की अभिव्यक्ति पुरुषों से भिन्न रूप में होगी।

अमेरिका में स्कूल के बच्चों के माध्यम से किये गये अध्ययनों से पता चलता है कि बाल्यकाल में अवचेतन स्तर पर दिए गये प्रशिक्षण प्रभावपूर्ण होते हैं और वे शीघ्रता से दृढ़ हो जाते हैं। शोधकर्त्ताओं ने तीन आयु वर्ग–

पाँच, नौ एवं चौदह वर्ष के बच्चों के माध्यम से यह जानने का प्रयास किया कि परिवार, समाज तथा भावनात्मक विशिष्टताओं के संदर्भ में स्त्री और पुरुष की भूमिकाओं के प्रति उनकी मनोवृत्ति क्या है। नौकरी करने वाली माताओं के, विभिन्न सामाजिक वर्गों के तथा विभिन्न पृष्ठभूमि वाली जातियों के बच्चों के अपने आयुवर्ग में दृष्टिकोणों की समानता पायी गयी।

शोधकर्त्ताओं ने पाया कि विभिन्न पृष्ठभूमियों के बावजूद पाँच वर्ष की आयु वाले बच्चों के विचार अत्यन्त रूढ़िगत थे। यद्यपि नौ वर्ष की आयु वर्ग में खुलापन अधिक था, फिर भी उन्होंने पुरुष एवं स्त्री की उसी सामाजिक छवि को समर्थन दिया जो अब तक प्रचलित थी। चौदह वर्ष की आयु वाले बच्चों में यह रूढ़िगत विश्वास गहन रूप में पाया गया कि स्त्रियों में व्यक्तिपरक एवं भावनात्मक गुणों का होना आवश्यक है, जबकि पुरुषों में नहीं। छोटी उम्र के बच्चों ने स्त्रियों के घर से बाहर निकल कर काम करने के पक्ष में अपने विचार प्रकट किये जिनका समर्थन चौदह वर्ष के वर्ग की बालिकाओं ने किया। इस वर्ग के बालकों के विचारों में न्यूनतम नमनीयता थी और उन्होंने लगभग एक मत होकर स्त्रियों के नौकरी करने के विचार को अस्वीकार कर दिया।

यह अध्ययन इंगित करता है कि बच्चों ने स्त्री-पुरुषों के उचित व्यवहार एवं क्रियाकलापों के विषय में सामाजिक मनोवृत्ति को किस सीमा तक आत्मसात् किया है। इस प्रकार के अविवेकपूर्ण रूढ़िगत प्रतिबन्ध स्वयं बच्चों की अपनी भावी छवि का अवमूल्यन कर देते हैं तथा जीवन की सम्भावनाओं को संकुचित करते हैं। इस तरह ज्ञान प्रदान करने का तरीका प्रत्यक्षत: इतना तुच्छ और सामान्य होता है कि उसे या तो स्वाभाविक मानकर स्वीकार कर लिया जाता है या उस पर ध्यान नहीं दिया जाता है। क्या इस बात पर लोगों का ध्यान नहीं जाता कि 'स्त्री' या 'पुरुष' के रूप में जो व्यक्तित्व उभरता है वह समाज के इस खेल का परिणाम है, जो सामाजिक प्रथाएँ या प्रतिबन्ध हैं वे स्वाभाविक नहीं हैं, बल्कि समाज ने अपनी सुविधा के लिए इन्हें यह रूप दिया है, इसलिए सामाजिक आवश्यकता एवं उन व्यक्तियों की आवश्यकताओं के अनुरूप परिवर्तनीय हैं जिनसे समाज का निर्माण हुआ है।

संस्कृतियों का मिश्रण

पश्चिमी देशों की बालिकाओं को दक्षिणी यूरोप या पूर्वी देशों की बालिकाओं की अपेक्षा कहीं अधिक स्वतन्त्रता प्राप्त है। उदाहरणार्थ, सत्रह से पच्चीस

वर्ष की युवतियाँ नौकरी करती हुई अपने माता-पिता से पृथक् रह सकती हैं, जबकि ग्रीस या भारत में बालिकाएँ या युवतियाँ किसी संरक्षिका के साथ ही घर के बाहर जा सकती हैं। इस प्रकार पश्चिमी बालिकाएँ अपेक्षाकृत अधिक स्वतन्त्र, स्वाग्रही एवं आत्मविश्वासपूर्ण होती हैं और प्रतिबन्धपूर्ण समाज में अधिक निर्भीक एवं अस्त्रैण प्रतीत होती हैं। दूसरी ओर, परम्परावादी समाज की बालिकाएँ उनकी तुलना में अधिक भयभीत एवं संकोचयुक्त प्रतीत होती हैं। किसी जैविक अनूठेपन के कारण स्त्रियों में ऐसे गुण नहीं होते, बल्कि पृथक् सामाजिक मूल्यों से युक्त संस्कृति में पालन-पोषण का परिणाम होती हैं ये स्त्रियाँ।

मानवशास्त्रियों ने विभिन्न आदिम समाजों के अध्ययन के फलस्वरूप पाया है कि कोई जन्मजात गुण मादा या नर नहीं होते हैं। उन समाजों को आदिम कहे जाने का कारण यह है कि उनकी जीवनशैली अधिक प्राकृतिक होती थी। वे ही गुण उनमें अधिक वर्तमान होते हैं जो मनुष्य जीवन की सहज अवस्था में जन्मजात कहलाये जा सकते हैं। जब एक जाति 'सभ्यता' की ओर बढ़ती है तो उसकी प्राकृतिक जीवनशैली में परिवर्तन आने लगते हैं। उनके आधारभूत तत्त्वों पर शिक्षा एवं संस्कृति की परतें अपना प्रभाव डालती जाती हैं। इसलिए जिन आदिम जातियों की जीवनशैली हजारों वर्षों से अपरिवर्तित रही है वे मानव स्वभाव के जन्मजात गुणों पर अनुसंधान के लिए एक उपयुक्त विषय हैं।

मार्ग्रेट मीड के अन्वेषण के अनुसार जो उनकी पुस्तक 'सेक्स एवं टेम्परामेन्ट' में लिपिबद्ध है, कोई ऐसा जन्मजात स्वभाव नहीं है जो पुरुषवाचक या स्त्रैण कहलाया जा सके। न्यू गिनी के तीन समुदायों का परिशीलन करके उन्होंने पाया कि एक समुदाय, जिसका नाम ऐरापेश है, की स्त्रियों ने अवश्य ही संकोच, कोमलता और अनाक्रामकता जैसे स्त्रैण माने जाने वाले अन्तर्जात गुणों का प्रदर्शन किया। किन्तु पुरुषों में भी ये ही लक्षण पाये गये। मुन्डुगु मोर नामक उनके पड़ोसी समुदाय के पुरुषों में अहमन्यता, निर्भीकता एवं आक्रामकता के गुण पाये गये जिन्हें पुरुषों में अन्तर्जात माना जाता है, किन्तु यही गुण तो स्त्रियों में भी पाये गये। चाम्बुको नामक तीसरे समुदाय में 'पुरुषत्व' के लक्षण स्त्रियों में और 'स्त्रीत्व' के लक्षण पुरुषों में पाये गये। इनसे डॉ. मीड ने स्पष्ट निष्कर्ष निकाला है कि स्त्री और पुरुष के बीच व्यक्तित्व परक भिन्नता संस्कृति की उपज है जिसके अनुरूप पीढ़ी दर पीढ़ी के स्त्री-पुरुष चलने के लिये प्रशिक्षित होते हैं।

समन्वय

रूढ़िवादिता से किसी को लाभ नहीं, फिर भी उसका अस्तित्व बना हुआ है। वह एक प्रभाव डालती रहती है, क्योंकि ज्यादातर बड़ी संख्या में लोग इस पर विश्वास करते हैं। प्रत्येक स्त्री एवं पुरुष स्वयं को स्त्रीत्व एवं पुरुषत्व की आदर्श सामाजिक छवि की कसौटी पर परखते हैं, उन्हें उनके अनुरूप बनने के लिये प्रोत्साहित किया जाता है। इन रूढ़िवादिताओं का विश्लेषण करने का तात्पर्य यह नहीं कि दो लिंगों के वर्चस्व के विवाद में उलझा जा रहा है कि इनमें कौन अधिक शक्तिशाली है। इस विश्लेषण के द्वारा केवल यह देखना है कि हम क्या हैं और क्या नहीं हैं ताकि हम यह जान सकें कि हमें क्या होना चाहिए।

किसी व्यक्ति के व्यक्तित्व में 'स्त्रीत्व' या 'पुरुषत्व' की सीमा निर्धारित करने के लिए मनोवैज्ञानिक परीक्षण के विभिन्न साधन तैयार किये गये हैं। इनके माध्यम से यह ज्ञात होता है कि जाँचे गये व्यक्ति का व्यक्तित्व रूढ़िगत लैंगिक छवि से कितना मेल खाता है। परीक्षण के इन साधनों के द्वारा बहुतेरे प्रमाण मिले हैं जिनसे यह पता चलता है कि परम्परागत लैंगिक गुणों का उचित मात्रा में होना एवं मानसिक स्वास्थ्य उत्तम होने के बीच अनुकूल सुसंगति नहीं है। उदाहरणार्थ– परीक्षण के फलस्वरूप जिन स्त्रियों में स्त्रीत्व के अधिक लक्षण पाये गये (यानी जिन्हें रूढ़िवादी भाषा में आदर्श नारी माना जायेगा) उनमें भी उद्विग्नता का आधिक्य तथा आत्म-सम्मान और आत्म-स्वीकृति की कमी पायी गयी, जिसे कहा जाए कि उनमें घबराहट है, आत्मविश्वास की कमी है और वे स्वयं से असन्तुष्ट हैं। पुरुषों के परीक्षण ने भी पुरुषत्व के लक्षणों को सम्पुष्ट करते हुए यह इंगित किया कि यौवनारम्भ में इन्हें समायोजन की समस्या कम थी, किन्तु बाद में उनमें भी न्यूरोसिस, चिन्ता, घबराहट एवं अपने प्रति असन्तोष के संकेत मिलने लगे।

परीक्षणों से यह भी ज्ञात हुआ कि 'स्त्रीत्व' के अधिक लक्षणों वाले बालक तथा 'पुरुषत्व' के अधिक लक्षण वाली बालिकाओं का बौद्धिक विकास अपने अन्य साथियों से अपेक्षाकृत अधिक था। जिन बालिकाओं में स्त्रीत्व के लक्षण तथा बालकों में पुरुषत्व के लक्षण अधिक तीव्र हैं उनमें बुद्धि परीक्षण में कम अंक प्राप्त करने की सम्भावना रहती है, उनकी समन्वयन की क्षमता और रचनात्मकता भी न्यून होती है।

चूँकि मनुष्य अपने विकासात्मक काल में ही ऐसे व्यवहारों को दबाना सीख जाता है जो आदर्श छवि के अनुरूप नहीं हैं, इसलिए उसके व्यक्तित्व

के अनेक सम्भावित पक्ष अवरुद्ध होकर उसे उनसे वंचित कर देते हैं। विभिन्न मनोवैज्ञानिक अध्ययनों ने इस तथ्य की सम्पुष्टि की है।

एक अध्ययन से यह पता चला कि पुरुषत्व के मापदण्ड पर खरे उतरने वाले पुरुष रूढ़िगत पुरुषोचित कार्यों में दक्ष थे, परन्तु नारी सुलभ काम नहीं करते थे। वे स्वतन्त्र थे और आवश्यक होने पर स्वाग्रही भी थे। किन्तु उनमें तथाकथित स्त्रियोचित लक्षण, जैसे स्नेह की अभिव्यक्ति, विनोदशीलता, सम्बद्धता आदि का अभाव था। इसी प्रकार स्त्रियों में भी तथाकथित पुरुषोचित लक्षणों का अभाव पाया गया, जैसे – स्वतन्त्र रूप से निर्णय ले पाना या अपनी प्राथमिकताओं को दृढ़ता से व्यक्त कर पाना।

शोधकर्त्ताओं ने उन लोगों के लिए जो स्त्रीत्व एवं पुरुषत्व की रूढ़िगत छवि को स्पष्टत: संपुष्ट नहीं करते, बल्कि दोनों के मिश्रित लक्षणों से परिपूर्ण व्यक्ति हैं, '*उभयलिंगी*' शब्द का प्रयोग किया है। उन्होंने पाया कि ये '*उभयलिंगी*' अपनी भावनाओं या व्यवहारों में किसी विशेष वर्ग की सीमा में आबद्ध नहीं होते। पूर्णत: रूढ़िगत व्यक्तित्व के व्यक्तियों के विपरीत '*उभयलिंगी*' स्त्री-पुरुषों के स्त्रियोचित एवं पुरुषोचित, दोनों ही प्रकार के कार्यों के बेहतर परिणाम हुए। आवश्यकता पड़ने पर उन्होंने अपनी स्वतन्त्रता और दृढ़ता का प्रयोग किया तथा परिस्थितियों के अनुरूप उन्होंने अपना स्नेह एवं अपनी संवेदना भी व्यक्त की।

यदि लोगों को रूढ़िगत छवियों के बन्धन से मुक्त किया जाय तो वे स्त्री एवं पुरुष, दोनों ही लक्षणों को व्यक्त कर पायेंगे। यदि उनमें दोनों प्रकार के गुणों को विकसित होने के अवसर दिये जाएँ तो स्वयं को अभिव्यक्त करने और नयी परिस्थितियों का सामना करने की उनकी मनोवृत्ति में अधिक लचीलापन आ जायेगा। आधुनिक समाज में एक वयस्क को कभी-कभी स्वाग्रही (दृढ़ निश्चयी) स्वतन्त्र, आत्मविश्वासी एवं स्वावलम्बी होना पड़ता है, किन्तु परम्परागत स्त्रैणता एक स्त्री को इस रूप में उभरने से रोकती है। दूसरी ओर हमें दूसरों के प्रति, उनकी आवश्यकताओं के प्रति एवं उनके हितों के प्रति संवेदनशील होना चाहिए। साथ-ही हमें एक-दूसरे को भावनात्मक संबल भी प्रदान करना चाहिए। पारम्परिक पुरुषत्व से चिपके हुए पुरुष अपने अन्दर होने वाली तथाकथित स्त्रियोचित (कोमल) प्रतिक्रियाओं को कुण्ठित कर देते हैं।

उभयलिंगता प्रत्येक व्यक्ति को परिस्थिति के अनुरूप स्वतन्त्र और मृदुल, स्वाग्रही और नमनीय, स्त्रियोचित और पुरुषोचित व्यवहार करने के लिए

प्रोत्साहित करती है। रूढ़िगत छवि से मुक्त होने पर व्यक्ति के व्यवहारों में व्यापकता आ जाती है तथा वह विपरीत परिस्थितियों में भी कुशलतापूर्वक आगे बढ़ना सीख जाता है। वे लोग सर्वाधिक प्रभावशाली तथा प्रसन्न व्यक्ति होते हैं जो अपने अन्दर दोनों प्रकार के गुणों को विकसित होने देते हैं, क्योंकि किसी भावना या किसी गुण को विकसित होने से रोकने पर उसमें विकृति आ जाती है।

योग इस बात पर बल देता है कि हमें अपने अहं की प्रभुता को समाप्त कर उसका उचित उपयोग करना चाहिए। रूढ़िगत लिंग-भेद के रूप में अहं स्पष्टत: प्रकट होता है। रूढ़िवादिता के इस तथ्य को समझने के बाद हम यह जान सकते हैं कि हमारे व्यवहार किस सीमा तक समाज द्वारा निर्धारित हैं और हमारा मूल स्वभाव क्या है। हमें अपनी सीमाओं को पहचानने के बाद उसमें और वृद्धि नहीं करनी चाहिए। एक बार जब हम समाज द्वारा निर्धारित सीमाओं की पहचान कर लेते हैं तब उनका विश्लेषण कर शायद हम उन व्यक्तिगत प्रकार की सीमाओं से ऊपर उठ सकते हैं। यहाँ स्त्रीत्व एवं पुरुषत्व की आदर्श छवियों को ध्यान में रखना लाभप्रद होगा, क्योंकि तभी हम अपने अन्दर की त्रुटियों का पता लगा कर अपने पूर्ण व्यक्तित्व के विकास में सक्षम हो पायेंगे।

उत्कर्ष (अनुभवातीतत्व)

ध्यान के क्रम में हम उन अचेतन प्रतीकों का अनुभव कर उनका अर्थ ढूँढने का प्रयास करते हैं जो हमारे अपने और दूसरों के विषय में उठने वाले विचारों को प्रभावित करते हैं। स्त्रियों में ये प्रतीक एक आदर्श पुरुष की प्रबल छवि के रूप में उभरते हैं। एक स्तर पर तो इसे कामुकता का साकार रूप कहेंगे, किन्तु वास्तव में यह छवि चेतन और अचेतन के बीच की एक कड़ी होती है। पुरुषत्व की यह छवि एक स्त्री के व्यक्तित्व की पूरक होती है जो उसके अन्दर विद्यमान पुरुष तत्त्व को अभिव्यक्त करती है। इस प्रतीक को पहचान कर और इसे स्वीकार कर वह भावनाओं के ऐसे क्षेत्र में प्रवेश कर सकती है जहाँ से विश्व के अनुभवों की ओर द्वार खुलते हैं। इसके द्वारा स्त्री का अपने आन्तरिक जगत् से सीधा सम्बन्ध स्थापित हो जाता है जो अब उससे छिपा हुआ नहीं है, बल्कि उसकी चेतना के साथ सार्थक रूप से जुड़ा हुआ है और जो उसे पूर्णता प्राप्त करने के उसके लक्ष्य के निकट ले जाता है।

भारत में व्यक्तित्व के स्त्री एवं पुरुष तत्त्वों के एकीकरण का प्रतीक उभयलिंगी देव अर्द्धनारीश्वर है। इनकी मूर्तियों में आधा शरीर पुरुष और आधा स्त्री का है – दाहिनी ओर शिव और बायीं ओर शक्ति हैं। अर्द्धनारीश्वर उस सनातन सत्य के प्रमाण हैं जिसके अनुसार दैवत्व न तो पुरुष है और न स्त्री, बल्कि इन दोनों का एक लोकोत्तर विलयन है।

हममें से प्रत्येक के अन्दर अर्द्धनारीश्वर दो नाड़ियों, इड़ा एवं पिंगला के रूप में विद्यमान हैं। ये दोनों प्राण की वे प्रमुख धारायें हैं जो मेरुदण्ड के दोनों ओर प्रवाहित होती हैं, बाईं ओर इड़ा तथा दाहिनी ओर पिंगला। ये दोनों नाड़ियाँ शरीर की संरचना तथा मन एवं भावनाओं के रूपों का निर्धारण करती हैं। परम्परा के अनुसार इड़ा को स्त्री शक्ति तथा पिंगला को पुरुष शक्ति माना जाता है, किन्तु ये दोनों शक्तियाँ प्रत्येक मनुष्य में स्त्री एवं पुरुष, दोनों में समान रूप से विद्यमान हैं।

प्राचीन काल में 'स्त्री' एवं 'पुरुष' वर्णन का प्रयोग व्यापक और सकारात्मक अर्थ में एक मूल शब्द के रूप में या अन्य कई गुणों के सम्बन्धों के संक्षिप्त रूप में किया जाता था। जब हमारी ऊर्जा इन नाड़ियों में से किसी एक से होकर अधिक परिसंचरित होती है तो यह हमारे प्रत्यक्ष ज्ञान और क्रियाशीलता को और इस जगत् में हमारे पूर्ण अस्तित्व को एक विशेष प्रकार से सक्रिय करता है।

सभी प्राचीन संस्कृतियों ने आत्मा के इन दो आधारों को स्वीकार किया है। कीमिया (ऐल्केमी) में इड़ा और पिंगला को चन्द्रमा और सूर्य, या हिरण या सिंह के रूप में चित्रित किया गया है। टारोड के कई कार्डों में ये दाएँ और बाएँ हाशिये पर दो स्तम्भों के रूप में उभरते हैं। चीनी दर्शन में इड़ा और पिंगला को क्रमशः यिन एवं यांग कहा गया है। आज विज्ञान इन दो शक्तियों पर मस्तिष्क के दायें और बायें गोलार्द्धों के रूप में शोध कर रहा है।

इन दोनों शक्तियों को पुरुष और स्त्री न कहकर हम इन्हें ग्राह्यता तथा उपक्रमण के साधन कहेंगे। इड़ा ग्राह्यता की परिचायक है जो हमें अन्दर और बाहर की नयी सम्भावनाओं के प्रति सजग रखती है। पिंगला हमारे अन्दर की उपक्रमिता, रचनात्मकता, हमारी अभिव्यक्ति की शक्ति और जगत् की सम्भावनाओं को अपने अनुरूप बनाने की शक्ति की परिचायक है। हम कह सकते हैं कि इड़ा नाड़ी का प्रभाव हमें किसी कार्य को करने की प्रेरणा देता है और पिंगला नाड़ी का प्रभाव हमारी क्षमताओं को रचनात्मक अभिव्यक्ति देता है।

ये दोनों शक्तियाँ किस प्रकार घटती-बढ़ती और किस प्रकार ये दोनों एक-दूसरे की पूरक हैं, यह समझना एक योग साधक का उत्तरदायित्व है। जब इड़ा और पिंगला पूर्णत: सन्तुलित होती हैं और हम इनके प्रभावों को समझ कर इन्हें स्वीकार कर लेते हैं तब सुषुम्ना नाड़ी जाग्रत होती है जो उत्कर्ष की शक्ति है और जो उत्कर्ष का मार्ग भी है। हठयोग हमें सूर्य (पिंगला) तथा चन्द्रमा (इड़ा) की सीमाओं से परे ले जाता है। यह उच्चतर व्यक्तित्व का क्षेत्र है जहाँ सच्ची मानवता प्रस्फुटित होती है जहाँ उत्कृष्ट एवं अनुभवातीत व्यक्तित्व सच्चे मानव के रूप में प्रस्फुटित होता है।

इड़ा के पक्ष	पिंगला के पक्ष
चन्द्रमा	सूर्य
रात्रि	दिवस
नीला	लाल
शीतल	ऊष्म
नकारात्मक	सकारात्मक
मन	ओजस्विता
मनस्	प्राण
आत्मनिष्ठ	वस्तुनिष्ठ
समष्टिपरक	क्रमिक
कलात्मक	व्यावहारिक
रंग, स्थान, ध्वनि	शब्द
अन्तर्मुखी	बहिर्मुखी
अन्त:प्रज्ञा	तर्क

आद्या शक्ति

योग की अनुभूति में शक्ति सर्वोच्च है, क्योंकि शक्ति की अन्त:क्रीड़ा से ही ब्रह्माण्डीय नियम परिचालित है। यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड शक्ति एवं चेतना, अर्थात् शिव और शक्ति की लीलाओं का परिणाम है। एक योगी के लिए महत्त्व भौतिक शरीर का नहीं, बल्कि शक्ति के उस स्वरूप और परिमाण का है जो शरीर को गतिशील बनाता है, मन को उत्प्रेरित करता तथा चेतना को उन्नत बनाता है।

आदि शक्ति

कुण्डलिनी सार्वभौमिक जीवनी-शक्ति 'प्राण' का वह पक्ष है जो मानव को विशेष रूप से अनुप्राणित करती है। मनुष्य की आदि शक्ति कुण्डलिनी ही है जिसकी उच्चतम अभिव्यक्ति आध्यात्मिक प्रबुद्धता के रूप में होती है, किन्तु यह काम शक्ति के रूप में तत्काल स्वयं को स्थूल रूप में प्रकट कर देती है। मनुष्य में यह आदि शक्ति विस्फोटक होती है। इसे हम मनमोहक, आकर्षक और चुम्बकीय शक्ति के रूप में जानते हैं। अधिकतर लोग इस तथ्य को अभी भी नहीं समझते जिसको पाश्चात्य मनोविज्ञान ने पुन: खोज निकाला है तथा जो तन्त्र के अन्दर आदि काल से छिपा हुआ था कि यही वह आदि शक्ति है जो सभी मानवीय भावनाओं तथा क्रियाओं का प्रेरणा स्रोत है।

शक्ति का ध्रुवीकरण होता है, यह या तो आकृष्ट करती है या विकर्षित करती है; यह या तो सकारात्मक होती है या नकारात्मक। चुम्बकों के उत्तर एवं दक्षिण ध्रुवों या बिजली के धनात्मक तथा ऋणात्मक छोरों पर यह प्रत्यक्ष रूप से देखा जा सकता है। यह अस्तित्व शिव एवं शक्ति, अर्थात् चेतना एवं शक्ति

की सहज लीला का प्रतिरूप है। जीवन, ऊर्जा तथा पदार्थ की सृष्टि तब तक सम्भव नहीं, जब तक धनात्मक-ऋणात्मक अथवा सकारात्मक-नकारात्मक शक्तियों का आपस में मिलन न हो। स्त्री-पुरुष के विभिन्न सामाजिक और व्यक्तिगत सम्बन्ध शिव-शक्ति की विकासात्मक लीला के प्रतिरूप हैं।

पाश्चात्य मनोविज्ञान पर व्यापक प्रभाव डालने वाले फ्रॉयड के अनुसार यह शक्ति अचेतन मन में संचित रहती है और प्रवृत्तिमूलक इच्छाओं के माध्यम से इसे चेतन अभिव्यक्ति मिलती है। फ्रॉयड ने इस सहज प्रवृत्ति को 'प्रेरक शक्ति' (गत्यात्मक और उत्प्रेरक, दोनों ही पक्ष) कहा। योगी इसे 'वासना' कहते हैं। इन प्रेरक शक्तियों से जुड़ी हमारी भावनाएँ सन्तोष या कुण्ठा पर निर्भर होती हैं।

सामाजिक सह अस्तित्व एवं जीवन्तता की माँग का अर्थ है कि (यहाँ आध्यात्मिक विकास उल्लेखनीय नहीं) हम अपनी इच्छाओं को खुली छूट नहीं दे सकते। फिर भी यह आदि शक्ति उद्धत (दुर्दमनीय) होती है और आसानी से कुण्ठित नहीं होती। यदि किसी कारणवश कोई इच्छा अनभिव्यक्त रह जाती है तो उसे प्रेरित करने वाली शक्ति अचेतन मन में वापस चली जाती है जहाँ इसे अपनी अभिव्यक्ति का अन्य मार्ग मिल जाता है। एक स्त्री अपनी इस शक्ति को रचनात्मक एवं आध्यात्मिक कार्यों के लिए पुन: उत्प्रेरित कर सकती है। अन्यथा वह आदि शक्ति आक्रामकता, चिन्ता या किसी अन्य हीन भावना या आन्तरिक तनाव जैसी नकारात्मक भावनात्मक अभिव्यक्ति का रूप ले सकती है।

यदि कोई इच्छा कुण्ठित हो किसी विशेष कष्टकर अनुभव से जुड़ती है तब इच्छा तथा अनुभव से जुड़े वे अनुभव अचेतन मन की गइराइयों में दब जाते हैं और उन्हें स्मृति सीमा से परे करने के प्रयास में शक्ति का बहुलांश नष्ट हो जाता है। मन पर पड़े हुए इन धब्बों को योग की भाषा में 'संस्कार' कहते हैं जो पूर्ण आध्यात्मिक उपलब्धि में प्रमुख बाधा बनती है। यद्यपि जाग्रत अवस्था में हमें अपने संस्कारों का भान नहीं होता, किन्तु भय और मनोग्रस्ति (सनक) के रूप में ये अपना आभास देते हैं। आदि शक्ति को यूँ ही अवरुद्ध नहीं किया जा सकता। यदि तत्काल इसे शारीरिक अभिव्यक्ति नहीं मिलती तो इसका एक उपयुक्त मार्ग से निर्गमन होना चाहिए, अन्यथा यह स्नायु रोग या किसी अन्य मानसिक रोग के रूप में प्रकट हो जायेगी।

इस शक्ति का अन्य उपयुक्त साधनों के द्वारा उपयोग करने पर हमारे जीवन के अनेक पक्ष इससे प्रभावित होते हैं। आदि शक्ति के दिशा परिवर्तन

से हमारे स्वभाव के वैकल्पिक तत्त्वों को प्रेरणा मिलती है। फ्रॉयड के अनुसार इस कामवासना (Libido) के दिशा परिवर्तन से एक सुन्दर, सुस्पष्ट मानसिक जीवन और रचनात्मकता का विकास होता है।

मूल शक्ति की सार्वभौमिक प्रकृति पर बल देने वाले फ्रॉयड ही एकमात्र मनोवैज्ञानिक नहीं थे। जुंग ने भी मनुष्यों की प्रेरक शक्ति के लिए 'लिबिडो' शब्द का प्रयोग किया, किन्तु उन्होंने कामवासना से परे भी इसको विस्तार दिया। आधुनिक समय में भी विल्हेम रीश, मार्क्यूस एवं नॉरमैन ओ. ब्राउन ने सभी मानव प्रयासों के पीछे वासना के स्वस्थ स्वरूप को महत्त्वपूर्ण माना है।

इस प्रकार मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त तान्त्रिक अन्तर्ज्ञान को सम्पुष्ट करते हैं कि आदि शक्ति भावनाओं के सम्पूर्ण स्वरूपों को प्रभावित करती है। जीवन की स्वाभाविक प्रक्रियाओं को बिना विकृत किए या जीवन शक्ति को बिना क्षीण किए इसे अस्वीकार नहीं किया जा सकता है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि हमारी भावनाएँ उस आदि शक्ति का व्यक्त रूप हैं जिसका एक पक्ष आध्यात्मिक तथा दूसरा पक्ष लैंगिक है। अनेक लोगों का यह मानना है कि अपनी लैंगिकता को नकारना, अपनी मौलिक मानवता – अपनी भावनात्मक संवेदनशीलता को विकृत करना है। किन्तु अपने आध्यात्मिक लक्ष्य की दृष्टि से केवल व्यक्तित्व के विकृत हो जाने के भय से इस शक्ति की अभिव्यक्ति को बेलगाम भी नहीं छोड़ा जा सकता। हमें ऐसे साधन की आवश्यकता है जो इस महान् शक्ति को हमारे उच्चतर शक्ति केन्द्रों की ओर मोड़ दे।

आधुनिक समाज अपराध और कुण्ठा से ग्रस्त है, अनेक प्रकार के मनोरोग उत्पन्न हो रहे हैं, क्योंकि पूर्ण आध्यात्मिक जागरूकता के सन्दर्भ में लैंगिक जीवन का महत्तर प्रयोजन क्या है, इसे किसी ने अच्छी तरह से समझा नहीं है। तन्त्र योग हमें आदि शक्ति के स्वरूप और उसके उद्देश्य से अवगत कराता है तथा उसके परिष्कार के लिए अभ्यास की एक सुनिश्चित प्रणाली प्रस्तुत करता है।

तन्त्र न तो तपस्वियों का संकीर्ण मार्ग है और न ही उच्छृंखलतापूर्ण आसक्ति का मार्ग। यह तो बढ़ते अनुभवों तथा तीव्रतर जागरूकता का मार्ग है, जिसका उद्गम उत्कृष्ट विवेक एवं मूल मानव स्वभाव में स्थित है। तन्त्र सन्तुलित, स्वस्थ एवं अध्यात्म प्रेरित साधनों के द्वारा मानवीय प्रवृत्तियों की अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता का मार्ग है। तन्त्र हमें अपने शरीर एवं इसकी क्रियाओं को

त्यागने के लिए नहीं कहता, बल्कि यह उससे जुड़े द्वन्द्वों और अपराधों को छोड़ने के लिए कहता है जो हमारे और व्यापक चेतना के बीच व्यवधान बनकर खड़े हैं। आवश्यकता इस बात की है कि हम अपनी ओजस्विता का उचित उपयोग करें और अपने आध्यात्मिक रूपान्तरण के लिये इस आदि शक्ति का दिक् संचालन करें।

ब्रह्मचर्य

आध्यात्मिक विकास के लिए आदि शक्ति को उपयुक्त दिशा देना ही ब्रह्मचर्य है। सहवास से स्वयं को अलग रखने को ही आमतौर पर ब्रह्मचर्य कहा जाता है। यद्यपि यह धारणा ब्रह्मचर्य के सही अर्थ से दूर है, फिर भी यह वासनात्मक प्रवृत्तियों के परिष्कार का एक अंग है। ब्रह्मचर्य का अर्थ है काम-प्रेरित संसर्ग या सहवास का पूर्ण निषेध। शास्त्रों में आठ नियमनिष्ठ श्रेणियों में इसकी व्याख्या है – क्रिया निवृत्ति (दाम्पत्य सम्बन्ध), अध्यवसाय (इच्छा), संकल्प (प्रेमी/प्रेमिका का विचार), गुह्य भाषण (छिपकर वार्तालाप), कीर्तन (प्रेमी/प्रेमिका के गुणों का अन्य के समक्ष बखान), केलि (क्रीड़ा) करना, स्पर्शन् (छूना), दर्शन (प्रेमी/प्रेमिका को देखना)। जब कोई आध्यात्मिक उपलब्धि के लिए ब्रह्मचर्य का पालन कर रहा हो तो उसे स्वात्यात्मकता एवं स्वप्न में होने वाली अचेतन अभिव्यक्तियों को भी प्रतिबन्धित करना होगा।

कई दशक पूर्व तक भारत में विधवा स्त्रियों को समाज से, विशेषकर पुरुषों से दूर रहना होता था। परम्परानुसार विधवा सफेद साड़ी पहनती है। कोई आभूषण धारण नहीं करती। वे अपने सिर के केश मुण्डित रखती हैं। दिन में एक ही बार भोजन करती हैं, जमीन पर एक चटाई बिछाकर सोती हैं। किसी से भी अधिक बातें नहीं करतीं। पूजा-पाठ के लिये वे सुबह चार बजे उठती और सारा दिन अपने परिवार तथा समुदाय की सेवा में व्यतीत करती हैं। यद्यपि अब इन प्रथाओं का पालन उतनी कठोरता से नहीं होता, किन्तु इससे ब्रह्मचर्य पालन में मिल रही मदद के संकेत मिलते हैं, चाहे वह स्थितिजन्य हो या स्वेच्छाजन्य।

कुछ स्त्रियाँ सहवास से पूरी तरह दूर रहकर अपने सम्पूर्ण समय और शक्ति का उपयोग किसी रचनात्मक लक्ष्य की प्राप्ति के लिए करती हैं। कुछ स्त्रियाँ स्वयं को कुछ समय के लिए यौन जीवन से अलग रखती हैं ताकि वे अपने भावनात्मक जीवन को सुलझा सकें; अपनी भावनाओं के आयामों और

उनकी आवश्यकताओं को समझ सकें; दाम्पत्य सम्बन्धों के हित में अपेक्षित अपनी प्रतिभाओं एवं क्षमताओं की खोज कर सकें; ऐसी युक्ति का विकास करें जिससे अनासक्त रूप से अधिक स्नेह बाँट सकें, अधिक अन्तर्ज्ञान और स्वतन्त्रता प्राप्त कर सकें।

एक निश्चित समय के लिए ब्रह्मचर्य पालन करने को 'नास्तिक ब्रह्मचर्य' कहा जाता है। इसके लिए गुरु के परामर्श के अनुसार अवधि निश्चित की जाती है–एक महीना, छः महीने, एक वर्ष या कई वर्ष। इस तरह के निषेध दो उद्देश्यों से किये जाते है–किसी विशेष साधना हेतु अपनी शक्ति का संरक्षण करने के लिए, या आदि शक्ति की उपयुक्त अभिव्यक्ति और उसके संरक्षण के लिए कामवासना सम्बन्धी अपनी अवधारणाओं को अन्तर्दृष्टि प्रदान करने के लिए।

नास्तिक ब्रह्मचर्यत्व की अवधि में शारीरिक इच्छा, समाज से पारस्परिक क्रिया, व्यक्तिगत भावनात्मक असन्तुलन एवं रचनात्मकता के स्तर पर आदिशक्ति सूक्ष्म रूप से व्यक्त होती है। व्यक्ति जीवन के हर क्षेत्र में कामुकता के प्रभाव के प्रति संवेदनशील हो जाता है तथा उसे इसके दमन और अभिव्यक्ति के परिणामों का बोध हो जाता है।

सबसे महत्त्वपूर्ण बात है कि साधिका को इसका ज्ञान हो जाता है कि इस दिशा में उसे कितनी वासना (अव्यक्त इच्छाएँ) हैं। कुछ स्त्रियों को यह ज्ञात हो जाता है कि उनकी अधिकांश आदिशक्ति बौद्धिक एवं रचनात्मक कार्यों की ओर मुड़ चुकी है और शारीरिक स्तर पर स्वयं को व्यक्त करने की इच्छाएँ न तो तीव्र हैं और न ही दृढ़। कुछ स्त्रियों में अपनी रचनात्मक प्रतिबद्धता के बावजूद वासना का ज्वार अत्यन्त प्रबल और स्थायी होता है। नास्तिक ब्रह्मचर्य के अभ्यास से यह पता चल जाता है कि दाम्पत्य सम्बन्ध मात्र एक आदत की तरह है अथवा नारी के व्यक्तित्व पर इसका शक्तिशाली प्रभाव है। यदि यह एक आदत मात्र है तो इस साधना के पश्चात् वह स्वतः समाप्त हो जाएगी।

जिन स्त्रियों में उत्कट आद्यशक्ति नहीं है, अथवा पूर्व में ही उसका उदात्तीकरण हो चुका है, वैसी स्त्रियों की यौन ऊर्जा को निष्क्रिय या प्रसुप्त ऊर्जा कह सकते हैं। जहाँ आद्यशक्ति न्यनूतर हो वहाँ उसका संरक्षण होना चाहिए और जहाँ काम-प्रवृत्ति निष्क्रिय हो वहाँ ब्रह्मचर्य-पालन द्वारा साधना को सहज और सुगम बनाया जा सकता है। यह स्त्री-पुरुष दोनों के लिए

समतुल्य है। आजीवन ब्रह्मचर्य-पालन को 'अखण्ड ब्रह्मचर्य' कहा जाता है। भारत के प्राचीनतम इतिहास में इसके दो उदाहरण हैं – हनुमान जी तथा भीष्म पितामह। पतंजलि के अनुसार ब्रह्मचर्य पालन के द्वारा अपरिमित वीर्य, साहस, आशावादिता, धैर्य, सहनशीलता का संचरण होता है जिसमें अध्यात्म के अपूर्व अनुभवों को प्राप्त करने के लिए अपार शक्ति एवं आशावादिता उत्पन्न होती है।

गृहस्थ ब्रह्मचर्य

हठयोग शरीर के अन्दर के हॉर्मोनों को इस प्रकार प्रभावित कर सकता है कि प्रजनन प्रणाली की जैविक प्रक्रियाएँ पूर्णत: बन्द हो जाएँ। साथ-ही शुक्र नाड़ी एवं वज्र नाड़ी के द्वारा जो उत्तेजना स्नायु तन्त्र के माध्यम से मन तक पहुँचाई जाती है, उसे भी पूर्णत: अवरुद्ध किया जा सकता है। किन्तु योग दमन का मार्ग नहीं, बल्कि उदात्तीकरण का, परिष्कार का मार्ग है। योग उदात्तीकरण पर बल देने के साथ दाम्पत्य सम्बन्ध की अनिवार्यता को भी स्वीकार करता है, क्योंकि यह विकास की प्रक्रिया के लिए संस्कारों के स्वस्थ विलोपन का एक साधन है।

जहाँ कुछ स्त्रियों की काम प्रवृत्ति निश्चेष्ट होती है, वहीं अन्य स्त्रियों में आदि शक्ति अत्यधिक सक्रिय होती है। जिन स्त्रियों में उग्र काम प्रवृत्ति होती है उन्हें असमय ब्रह्मचर्य के बन्धन में बँधकर आध्यात्मिक उपलब्धि नहीं हो सकती। उन्हें अनुभवों के द्वारा अपनी इस शक्ति को नियन्त्रित करना होगा। यदि इस प्रकार स्त्रियाँ (और पुरुष) बलपूर्वक या किसी आवेशवश अपनी अन्योन्य क्रिया बाधित करती हैं तो उन पर सदा अपनी दमित प्रवृत्ति का प्रभाव बना रहेगा।

यही कारण है कि संन्यास के त्यागपूर्ण मार्ग के साथ-साथ प्रगति का एक और मार्ग रहा है – गृहस्थ जीवन। वैदिक काल से ही व्यक्ति के विकास के लिए गृहस्थ आश्रम को एक अनिवार्य चरण माना गया है। परिवार के पालन-पोषण एवं समाज में सक्रिय योगदान के द्वारा आध्यात्मिक जीवन के लिए प्रेरणा मिलती है। शारीरिक सम्मिलन के द्वारा ही विवाह की निष्पत्ति होती है, उसे पूर्णता प्राप्त होती है। गृहस्थ जीवन में आने वाली इस अवस्था को शिव एवं शक्ति की संयुक्ति का निरूपक कह सकते हैं, जो सिद्धि की चरम अवस्था में सिर के शीर्ष पर स्थित सहस्रार चक्र में संश्रित होती है।

वैवाहिक सम्बन्ध उसी आदिशक्ति का व्यक्त रूप है जिसने ब्रह्माण्ड को प्रकट रूप दिया है और जो हमें आध्यात्मिक प्रबोध के लिए प्रेरित करती

है। उस शक्ति के मुक्त प्रवाह को बाधित करने वाले अवरोधक तत्त्वों को हम कितना दूर कर पाते हैं, इसी पर हमारा आध्यात्मिक विकास निर्भर है। कुछ विशेष अवस्थाओं में सन्तोषपूर्ण दाम्पत्य जीवन की सहायता से ही संकोच, कुण्ठा और नैराश्य को दूर किया जा सकता है। हम सुख और दु:ख दोनों के साथ विकास कर सकते हैं। सफल वैवाहिक जीवन व्यक्तित्व को अधिक संगठित बनाता है और व्यक्ति को एकात्मकता प्रदान करता है। इसलिए जब हम गृहस्थ आश्रम में प्रवेश करते हैं तो इसे केवल अपनी इन्द्रियों की सन्तुष्टि का नहीं, बल्कि आध्यात्मिक जीवन में विकास एवं पूर्णता का एक साधन मानना चाहिए।

सामान्यत: ब्रह्मचर्य शब्द से जिस निषेध का बोध होता है वह एक विशेष समय में कुछ लोगों के लिए ही लागू था, किन्तु वास्तविक परिभाषा के अनुसार इस विवादास्पद अवधारणा का तात्पर्य दाम्पत्य सम्बन्धों का अनिवार्यत: निषेध नहीं है। परम चेतना ही 'ब्रह्म' है तथा 'चर्य' का अर्थ होता है आचरण। ब्रह्मचर्य वह आचरण, वह प्रवृत्ति है जो हमें परम चेतना तक ले जाती है। इस प्रकार ब्रह्मचर्य व्यक्ति का वह आचरण है जो उसके विचारों, भावनाओं एवं सम्पूर्ण अस्तित्व को चेतना के विस्तार की दिशा में प्रेरित करता है।

गृहस्थ ब्रह्मचर्य में यौनाचरण के लिए मनुस्मृति, याज्ञवल्क्य स्मृति तथा इसी प्रकार के अन्य शास्त्रों में नियम प्रतिपादित हैं। गृहस्थ ब्रह्मचर्य में दाम्पत्य सम्बन्ध निषिद्ध नहीं होता, बल्कि हठयोग की कुछ विशेष क्रियाओं द्वारा सहवास के समय प्रबलतम उत्तेजना का अवरोधन करना होता है, उस पर नियन्त्रण रखना होता है। उत्तेजना की चरम अवस्था में शरीर से स्रवित हुए द्रव के माध्यम से जो प्रबल शक्ति युक्त होती है उसे 'बिन्दु' के रूप में संरक्षित रख लिया जाता है। तब इस शक्ति को वज्रोली मुद्रा, सहजोली मुद्रा, उड्डियान बन्ध एवं मूल बन्ध के द्वारा मूलाधार से उच्चतर केन्द्रों की ओर उत्प्रेरित कर दिया जाता है जहाँ संस्कारों का विस्फोट और चेतना का विस्तार होता है।

जैसा कि *हठयोग प्रदीपिका* में कहा गया है, बिन्दु के अवरोधन एवं चरमावस्था (रजस्) का प्रवर्द्धन ही ब्रह्मचर्य को सही रूप में समझने का मुख्य आधार है। "जो वज्रोली के द्वारा अपने बिन्दु को नियन्त्रित रखते हुए अपने रजस को पृथक् रखता है, वह योगी है। उसके रजस् का कभी नाश नहीं हो सकता और उसके शरीर में नाद बिन्दु में समाहित हो जाता है। यदि वज्रोली के द्वारा अपने शरीर के अन्दर बिन्दु और रजस् को एक-दूसरे से पृथक् रखा जा

सके तो योग के अभ्यासों के द्वारा सभी प्रकार की सिद्धियाँ प्राप्त की जा सकती हैं।" यह स्त्रियों के अनुभवों के सन्दर्भ में भी समान रूप से समीचीन है।

मैथुन

तन्त्र के अनुसार स्त्री-पुरुष के बीच समागम के तीन उद्देश्य हो सकते हैं – प्रजनन, विलास या समाधि। गृहस्थ साधक समाधि की साधना के एक अंग के रूप में बिना किसी संकोच, द्वन्द्व या अपराध बोध के दाम्पत्य सम्बन्ध के माध्यम से यह अनुभव प्राप्त करते हैं। सामान्यत: इस अनुभव की गहराई में जाने के पूर्व ही उसकी चरम अवस्था विलुप्त हो जाती है। किन्तु आध्यात्मिक उद्देश्य के लिए चरम अवस्था को प्रवर्द्धित दीर्घ करना आवश्यक है ताकि चेतना के प्रसुप्त एवं निष्क्रिय केन्द्र जाग्रत होकर दैनिक जीवन में निरन्तर काम करना प्रारम्भ कर दें।

ऐसी दशा में मैथुन मात्र शारीरिक सम्मिलन नहीं रह जाता, बल्कि समाधि की दृष्टि से सायुज्य हो जाता है, जिसका उद्देश्य स्पष्ट है – सुषुम्ना को जाग्रत करना, कुण्डलिनी को मूलाधार चक्र से ऊपर ले जाना और मस्तिष्क के अचेतन क्षेत्रों में विस्फोट करना। मैथुन के अभ्यास के लिए दोनों सहभागियों को विशेष रूप से तैयार रहने की आवश्यकता है। हठयोग के कुछ विशेष अभ्यासों में निपुणता प्राप्त करना भी आवश्यक होता है। प्रारम्भ में स्त्री पश्चिमोत्तानासन, शलभासन, वज्रासन, सुप्तवज्रासन एवं सिद्धयोनि आसनों द्वारा अपने निम्न केन्द्रों पर नियन्त्रण का विकास करती है। प्रजनक हॉर्मोनों को नियन्त्रित एवं मस्तिष्क में उनके अन्तर्वाह को सन्तुलित करने के लिए शीर्षासन भी महत्त्वपूर्ण है। मूलबन्ध, उड्डियान बन्ध, शाम्भवी मुद्रा, सहजोली मुद्रा, एवं कुम्भक भी इतनी सहजता से किये जा सकें कि मैथुन की चरम अवस्था में इन क्रियाओं को करने में कोई असुविधा नहीं हो।

भावनात्मक स्तर पर पति एवं पत्नी, दोनों को ही आश्रिता एवं सत्त्वबोध से मुक्त रहना चाहिए। उन्हें स्त्री और पुरुष की रूढ़िगत छवि से मुक्त होकर पूरी सच्चाई के साथ स्त्री को गुरु मानते हुए उस बिन्दु पर पहुँचना चाहिए जहाँ दोनों पूर्णत: परितुष्ट हो सकें।

स्त्री की प्रेरणा एवं निर्देशन से ही मैथुन होता है। आवश्यक रूप से प्रारम्भिक तैयारी करने के बाद पति को ललाट पर स्थान बताती है जहाँ उसे ध्यान करना है। सामान्य सम्बन्धों में पुरुष की भूमिका आक्रामक

होती रहती है और स्त्री स्वयं को समर्पित कर देती है। किन्तु मैथुन में स्त्री ही नेतृत्व करती है तथा पुरुष उसका माध्यम बनता है। स्त्री में अपने पति को उत्तेजित करने की क्षमता होनी चाहिए और साथ ही उसके 'बिन्दु' के अवरोधन करने में भी उसकी सहायता करनी चाहिए। यदि पति नियन्त्रण खो देता है तो इसका अर्थ यह हुआ कि स्त्री ने उस प्रक्रिया का उचित संचालन नहीं किया।

तन्त्र में कहा गया है कि 'शक्ति' के बिना 'शिव' मात्र एक 'शव' है। शक्ति याजिका (पुजारिन) है। ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति के समय शक्ति स्रष्टा है और शिव साक्षी है, इसलिए तन्त्र के अनुसार स्त्री को गुरु और पुरुष को शिष्य माना गया है। तान्त्रिक परम्परा स्त्री से पुरुष को हस्तगत होती है, स्त्री ही दीक्षा देती है।

हठ योग प्रदीपिका में कहा गया है– "जो स्त्री अपनी उत्तेजना की चरमावस्था में अपने रजस् को अवरोधित कर पाती है, वह वास्तविक योगिनी है। वज्रोली का अभ्यास शरीर को सिद्धि प्रदान करता है – यह सुन्दर, मसृण, सुदीप्त एवं आकर्षक बन जाता है। यह योग का ऐसा दिव्य अभ्यास है जो भोग के मार्ग से मोक्ष की ओर ले जाता है।"

विवाह

वैदिक काल में विवाह एवं आध्यात्मिकता एक ही सिक्के के दो पहलू थे। उस काल में ऋषि गृहस्थ होते थे, वशिष्ठ-अरुन्धति, अत्रि-अनुसूया, याज्ञवल्क्य-मैत्रेयी ने अधिकतम वैवाहिक आनन्द एवं निष्ठा के साथ-साथ उच्चतम आध्यात्मिक उपलब्धियों का प्रतिनिधित्व किया है। परन्तु आज अनेक स्त्रियों में वैवाहिक आनन्द वास्तविकता से अधिक एक आशा के रूप में, आन्तरिक प्रस्फुटन के स्थान पर निश्चलता और गतिरोध के रूप में ही रह जाता है।

एक मृग-मरीचिका

यह एक विश्व स्तर का परिदृश्य है कि किसी भी एक समूह की तुलना में विवाहित स्त्रियों में मनोरोग से ग्रस्त होने की सम्भावना अधिक होती है। स्वीडन की एक रिपोर्ट के अनुसार अविवाहित स्त्रियों की अपेक्षा विवाहित स्त्रियों में मानसिक रोगों की अधिक सम्भावना होती है। अमेरिकी आँकड़े यह बताते हैं कि यह एक अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति है कि अधिक बच्चों वाली स्त्री में अपने पति की तुलना में या कम बच्चों वाली स्त्री अथवा अविवाहिता स्त्री की अपेक्षा मनोरोगों से ग्रस्त होने की प्रवृत्ति अधिक रहती है।

मादक पदार्थों के उपयोग या दुरुपयोग की सर्वाधिक घटनाएँ गुमराह युवकों के साथ नहीं होतीं, बल्कि विवाहित स्त्रियों के साथ होती हैं। विशेषकर विकसित देशों की महिलाएँ अपने ऊबाऊ और निष्क्रिय जीवन से मुक्त होने के लिए उन स्फूर्तिदायक दवाओं का सहारा लेती हैं जो उत्साह और जीवन शक्ति देने का आश्वासन देती हैं। विषादयुक्त स्त्री अपने असहनीय कष्टों से मुक्त होने के लिए अनेक प्रकार की औषधियों का सेवन करती है, किन्तु

अत्यधिक मात्रा में ली गई ये औषधियाँ भी उसके असन्तोष की जड़ तक नहीं पहुँच पातीं। हर जगह चौंका देने वाली संख्या में स्त्रियों को प्रशान्तक एवं अवसादमुक्ति कारक औषधियों की लत पड़ चुकी है। वे एक दिन भी इनके बिना नहीं रह सकतीं। इस प्रकार के भयंकर तथ्यों और विवाह-विच्छेद की बढ़ती हुई संख्या (परम्परागत समाजों में भी) से तो यही प्रतीत होता है कि सुखी वैवाहिक जीवन एक मृग-मरीचिका है।

लक्ष्य नहीं साधन

ये दु:खद तथ्य स्पष्ट संकेत देते हैं कि आध्यात्मिक विकास के सन्दर्भ में हम विवाह के महत्त्व को भूल चुके हैं। स्त्री और पुरुष, विशेषकर स्त्री अपने विवाह को विकास के एक साधन के स्थान पर जीवन का लक्ष्य समझती है। शुरू से ही स्त्रियों में एक मानसिकता डाल दी जाती है जिससे उन्हें विश्वास होता है कि विवाह होने के साथ ही उन्हें सुरक्षा, जीवन का उद्देश्य और चिरस्थाई प्रेम स्वत: प्राप्त हो जायेगा। वे इस तथ्य को उपेक्षित छोड़ देती हैं कि विवाहित हों या अविवाहित, इन उपलब्धियों के लिए एक दृढ़ संकल्प और सतत् आत्म-समर्पण आवश्यक है। स्त्री-पुरुष के बीच का सम्बन्ध जीवन को ओजस्विता, स्फूर्ति और प्रेरणा से भर दे सकता है, बशर्ते हम इस सम्बन्ध को लक्ष्य न मान बैठें, बल्कि पूर्णता प्राप्ति के निमित्त एक सतत् प्रयास समझें।

सुरक्षा

अनेक सम्बन्ध सफल हो सकते हैं यदि हम उनसे असम्भव की अपेक्षा न रखें। उदाहरणार्थ, विवाह हमें सुरक्षा प्रदान नहीं कर सकता। इस प्रकार की आन्तरिक निश्चितता का आश्वासन हमें न तो किसी बाह्य व्यवस्था से प्राप्त हो सकता है, न कोई दूसरा हमें दे सकता है। सुरक्षा एक व्यक्तिगत उपलब्धि है। व्यक्ति के आत्मज्ञान पर आधारित उसके सत्त्व के अन्दर छिपा सामंजस्य और दृढ़ विश्वास होता है जो उसे सन्तुलन प्रदान करता है, और जीवन के उतार-चढ़ाव में भी अप्रभावित रखता है।

भौतिक सुरक्षा क्षणभंगुर होती है। घर जल कर राख हो सकते हैं, सम्पत्ति की चोरी हो सकती है, वित्त विशेषज्ञ की कलम पैसे को मूल्यहीन बना सकती है। युद्ध, बीमारी या प्राकृतिक आपदाओं से सुरक्षा का कोई उपाय नहीं। न ही हम दूसरों के साथ अपने सम्बन्धों में भावनात्मक सुरक्षा पा सकते हैं।

कोई भी हमें इतना प्यार नहीं दे सकता जो हमारे अन्दर की रिक्तता को भर सके। अधिकारपूर्ण प्रेम ऐसा भय उत्पन्न करता है जो इस रिक्तता को प्रबल कर देता है।

सुरक्षा नहीं, बल्कि असुरक्षा जीवन की आधारभूत वास्तविकता है जिसे हम लोगों को पहचान लेना चाहिए। किसी अस्तित्वहीन तथ्य का पीछा करने के बदले हमें अपने अस्तित्व के अनिश्चित स्वभाव से समझौता कर लेना चाहिए। योग हमें यह सिखाता है कि स्वयं को बाहरी तत्त्वों के समरूप नहीं समझना चाहिए, स्वयं को न तो अपनी चीजों के साथ बाँधना चाहिए और न ही दूसरों के बन्धन में पड़ना चाहिए। आन्तरिक रिक्तता को हम उस शाश्वत एवं अचल की अनुभूति से परिपूरित कर सकते हैं जो हमारे अन्दर है। योग हममें उस अनुभूति को विकसित एवं परिपोषित करने के व्यावहारिक साधन प्रदान करता है।

रोमान्स और परायापन

सार्वभौमिक रूप से विवाह को प्रेम से सम्बद्ध समझा जाता है, किन्तु अधिकतर स्त्री-पुरुष रोमान्स और प्रेम में भेद नहीं कर पाते। परिणामस्वरूप अनेक विवाह जो भ्रमजाल पर आधारित होते हैं, अन्त में मोह भंग होते ही ढेर हो जाते हैं।

प्रेम की दृष्टि स्पष्ट होती है। यह गलतियों को स्वीकार कर सकता है, किन्तु उनके प्रति अन्धा नहीं होता। दूसरी ओर रोमान्स एक प्रकार का सम्मोहन है जो सम्बद्ध व्यक्ति को दूसरे व्यक्ति के वास्तविक स्वभाव के प्रति अन्धा बना देता है। दो व्यक्तियों के बीच भावनाओं और विचारों का साम्य उन्हें समीप लाता है और एक-दूसरे के प्रति उनका शारीरिक आकर्षण उन्हें घनिष्ठ बना देता है। प्रारम्भ में हम केवल एक-दूसरे के व्यक्तित्व की अच्छाइयों को, उज्ज्वल पक्ष को ही देखते हैं। अपने होने वाले पति के वास्तविक व्यक्तित्व की परख करने के बजाय एक अनुरक्त स्त्री अपनी इच्छा और आवश्यकता के अनुरूप उसे गढ़ी हुई आदर्श मूर्ति के रूप में देखती है। उसकी आवश्यकताएँ ऐसी होती हैं जो पति के दोषों के प्रति उसे अन्धा बना देती हैं, समझने के बदले उसे अपने उस आदर्श रूप में देखती है। एक आदर्श रूप, जिसको उसकी इच्छाओं और आवश्यकताओं ने गढ़ा है। उसकी आवश्यकताएँ पति के दोषों के प्रति उसे अन्धा बना देती हैं, वह स्वयं को पति में ऐसे गुणों के विद्यमान होने का विश्वास दिलाती है जो वस्तुत: उसमें नहीं हैं।

बाद में गृहस्थी की नीरसता और थकान उस रूप को छिन्न-भिन्न कर देती है और जब वह पति की वास्तविकता को पहचानने लगती है तो उसे घोर निराशा होती है। जब व्यक्ति के उन पक्षों से हमारा परिचय होता है जिनमें साम्य नहीं है तो हम अपने पतियों के दोषों को अतिरंजित करने लगते हैं, यहाँ तक कि उनमें हमें ऐसे अवगुणों और त्रुटियों का आभास होने लगता है जिनका वस्तुत: कोई अस्तित्व नहीं होता। इस प्रकार रोमांस बहुत आसानी से त्यागने और परायेपन का रूप ले लेता है।

ऐसे देशों में जहाँ वैवाहिक सम्बन्ध परिवार द्वारा निश्चित किये जाते हैं, उनमें प्राय: प्रारम्भिक आकर्षण भी नहीं होता और एक स्त्री एक ऐसे पुरुष के साथ रहने लगती है जो उसके लिये पूर्णतया अपरिचित होता है। इसके अतिरिक्त स्त्री को अपने पति के परिवार को समझने और उनके साथ स्वयं को समन्वित करने की चिन्ता भी रहती है, क्योंकि उससे यह अपेक्षा की जाती है कि वह प्रेम और निष्ठा के साथ समान रूप से सब की सेवा करे।

हम किसी से भी प्रेम कर सकते हैं

दोनों ही परिस्थितियों में घृणा के सहारे न तो आशा बनती है और न आध्यात्मिक उपलब्धि ही हाथ लगती है। हमें यह स्मरण रखना चाहिए कि हम किसी से भी प्रेम कर सकते हैं। प्रत्येक व्यक्ति में कुछ ऐसी विशेषताएँ होती हैं जिसके लिए हम उसे सम्मान और प्रेम दे सकते हैं। किसी व्यक्ति के अवांछित तत्त्वों पर ध्यान देने के बदले हमें उसके गुणों को देखना सीखना चाहिए। किसी भी फुलवारी में हम सुन्दरता को अनेक रूपों में देखते हैं। कुछ फूल मनमोहक आकार और लुभावने रंगों के बावजूद सुगन्धहीन होते हैं। दूसरे, सामान्य दिखने वाले फूलों की मादक सुगन्ध हमें मदहोश कर देती है। कुछ फूल सूर्य के प्रकाश में ही खिलते हैं तो कुछ को छाया की आवश्यकता होती है। फिर भी हम इनमें से प्रत्येक की प्रशंसा करते हैं और यह नहीं कहते कि यह ऐसा क्यों है या वह वैसा क्यों नहीं। जब हम उन्हें निकट से देखते हैं तो सहज ही हमें कोई एक अपने विशेष गुणों के कारण अधिक आकर्षक प्रतीत होता है।

योग हमें अपनी इसी स्वीकृति और प्रशंसा के भाव को अपने सम्बन्धों के साथ जोड़ने तथा इस भाव को विस्तार देने के लिए प्रोत्साहित करता है; साथ ही एक धर्मनिष्ठ सामान्योक्ति प्रस्तुत करने के बदले यह हमें अपने इन भावों को जीवन्त वास्तविकता में परिणत करने का व्यावहारिक मार्ग बताता है।

ऐसे व्यक्ति से प्रेम करने का प्रयास करना जिसे हम नापसन्द करते हैं, अवश्य ही सरल नहीं है, फिर भी हम सभी को इसके लिए निरन्तर जागरूक रहने की, अपने अन्दर की क्षुद्रताओं एवं विसंगतियों के परित्याग की आवश्यकता होती है। हमें इसे एक आध्यात्मिक आवश्यकता के रूप में स्वीकार कर लेना चाहिए, अन्यथा आजीवन कुण्ठा और एकाकीपन से पीड़ित रहना पड़ेगा।

साधना के द्वारा जब हमारा तादात्म्य हमारे मर्म में छिपे दिव्यत्व से स्थापित हो जाता है तब हमारा अन्तर दूसरों के प्रति सम्मान के लिए मुक्त हो जाता है और दूसरों के स्वभाव का निरालापन हमारे जीवन को विशुद्ध आनन्द से भर देता है।

विवाह – एक साधना

अनेक विवाहित स्त्रियों में निराशा और असन्तोष उत्पन्न होने का कारण यह है कि वे विवाह को एक साधना के रूप में स्वीकार कर पाने में विफल रहती हैं। बाह्य व्यक्तित्व का रूपान्तरण और आन्तरिक स्वभाव का परिष्करण एक सरल प्रक्रिया नहीं है, और हमें सदा वैवाहिक जीवन में सन्तुलन की अपेक्षा भी नहीं रखनी चाहिए। किन्तु एक बार जब इस उद्देश्य के लिए हम वैवाहिक अनुभवों एवं पारिवारिक जीवन के उपयोग को समझने लगते हैं तब हमारे जीवन को एक नया लक्ष्य और अर्थ मिल जाता है, हममें नयी शक्ति एवं विशेष आनन्द का संचार होता है।

अपने शारीरिक अस्तित्वों और भौतिक स्वार्थों को एकीकृत करना, जीवन की कठिनाइयों और सफलताओं का, विजय और पराजय का एक साथ मिल कर सामना करने के लिए संयुक्त होना ही विवाह का मूल आधार है, किन्तु आप यह भी जानते हैं कि केवल इतना पर्याप्त नहीं है। "अपनी अभिलाषा और उत्थान में एकजुट रहना, आध्यात्मिक पथ पर कदम मिलाकर अग्रसर होना – यही है स्थायी विवाह का रहस्य।" (*श्री माँ, अरविन्द आश्रम*)

भारत में स्त्री अपने पति को पारम्परिक रूप से एक गुरु के समान स्नेह और सम्मान देती है। और वह एक देवी के रूप में उसका आदर करता है, उसे प्रेम देता है। इसका अर्थ यह नहीं कि उनमें से एक दूसरे से आध्यात्मिक रूप से श्रेष्ठ है, बल्कि प्रेम करना कायान्तरण का एक साधन है और विवाह का उद्देश्य एक-दूसरे को उस ऊँचाई तक ले जाने में सहायक होना है, जहाँ अकेले पहुँच पाना सरल नहीं था।

हमें पहले उन कठिन परिस्थितियों से तथा दूसरों में विद्यमान उन तत्त्वों से, जिन्हें हम नापसन्द करते हैं, परिचित होना होता है, क्योंकि ये हमारे लिए महान् गुरु सिद्ध हो सकते हैं। ये हमारे अन्दर के प्रतिरोधों, पूर्वाग्रहों एवं भावनात्मक अवरोधों का संकेत देते हैं। दूसरों के जिस तत्त्व को हम नापसन्द करते हैं, प्राय: वह हमारे अन्दर किसी विशेषता के रूप में छिपा रहता है या हमारी किसी दुर्बलता को स्पर्श कर जाता है। हमारे अन्दर का प्रतिरोध या हमारी आसक्ति ही कुछ विशेष परिस्थितियों को असुविधाजनक बना देती है। जब हमें बारम्बार ऐसी परिस्थितियों का सामना करना पड़े तो हमें स्वयं से पूछना चाहिए, "हमें इससे क्या सीख लेनी चाहिए?" यदि हम अपने अन्दर की आवाज के प्रति ईमानदार और सतर्क हैं तो वह परिस्थिति हमें अन्तर्दृष्टि से पुरस्कृत करेगी तथा हम एक और सीमा से मुक्त हो पायेंगे।

एक पति अपनी पत्नी के रहन-सहन तथा काम करने के ढंग से बहुत कुछ सीख सकता है, इसी प्रकार एक स्त्री अपने पति की उन क्षमताओं एवं गुणों को ग्रहण कर सकती है जिनका उसमें अभाव है। स्नेहपूर्ण सम्बन्ध से सम्बल और प्रेरणा प्राप्त कर हम रूपान्तरण करने वाली शक्तियों के प्रति समर्पण के लिए इच्छुक और तैयार रहते हैं। किसी अमूर्त एवं दूरस्थ आदर्श के प्रति स्वयं को समर्पित करने से अधिक सरल है स्वयं को ऐसे व्यक्ति के प्रति उन्मुख करना जिसका हम आदर करते हैं और जिससे हम प्रेम करते हैं। खलील जिब्रान ने लिखा है –

वह तुम्हें अनाज के गट्ठर के समान सीने से लगा लेता है।
वह तुम्हें नंगा करने हेतु दावन करता है
वह तुम्हें भू से अलग करने हेतु चालता है
वह तुम्हें पीस कर सफेद बनाता है
वह तुम्हें गूँथ कर नमनशील बनाता है
और तब वह तुम्हें पवित्र अग्नि को समर्पित करता है
जिससे तुम पवित्र रोटी बन सको
ईश्वर के पवित्र भोज के लिये
प्यार ही तुम्हारे लिये यह सब कुछ करेगा
जिससे कि तुम अपने हृदय के रहस्यों को जान सको
और इस तरह यह ज्ञान
तुम्हारे जीवन के हृदय का एक अंश बन सके।

कर्म संन्यास

(गुरुदेव स्वामी सत्यानन्द सरस्वती का प्रवचन)

गृहस्थाश्रम में आप कर्म में संलग्न रहते हैं और ये कर्म अनेक कर्मों को जन्म देते हैं। ये संस्कारों को जन्म देते हैं और आसक्ति के कारण आप इनसे बँध जाते हैं। अपने परिवार, अपने बच्चों, अपने उत्तरदायित्वों और कर्त्तव्यों से पूर्ण आसक्ति के साथ या अनासक्ति के साथ सम्बद्ध होना सम्भव है। फिर भी हमें केवल आसक्ति के साथ ही सम्बन्धित होना सिखाया जाता है। किसी ने हमें यह नहीं बताया कि हम किस प्रकार अनासक्ति के साथ अपने सम्बन्धियों के साथ रहें, अपने कर्त्तव्यों का निर्वाह करें, अपनी समस्याओं का समाधान करें, अपने परिजनों और मित्रों के साथ किस प्रकार का व्यवहार करें, धन-सम्पत्ति का किस तरह संचालन करें। अनासक्त जीवन जीने की कला को ही कर्म संन्यास कहते हैं।

न तो विचार कर लेने मात्र से अनासक्ति का विकास होता है और न ही किसी बौद्धिक प्रक्रिया के द्वारा। जब तक आप कुछ ऐसे अनुभवों से नहीं गुजरते हैं, जो आपके मन के स्वरूप को बदल डालते हैं, तब तक आप नहीं समझ सकते कि अनासक्ति है क्या? अनासक्ति, वैराग्य, संन्यास आदि को समझने के लिए बौद्धिक प्रक्रिया से कुछ अधिक की आवश्यकता होती है। आपके मन का एक भिन्न स्वरूप होना चाहिए। इस उद्देश्य के लिए तो मन को शिक्षित और प्रशिक्षित करना होगा। बौद्धिक स्तर पर आप जानते हैं कि कुछ भी आपका नहीं और सब कुछ अस्थाई है। आप इस बात को हर दिन दुहरा सकते हैं, किन्तु यदि दूसरों के साथ भी कुछ घटित होता है तो ममता और आसक्ति के कारण वह आपको भी प्रभावित करता है।

आप सम्पूर्ण योग वाशिष्ठ पढ़ सकते हैं, किन्तु यदि आपके घर में कोई दुर्घटना होती है तो निश्चित ही आप इससे आहत हो जाते हैं, क्योंकि 'योग वाशिष्ठ' आपकी चेतना के स्वरूप में मौलिक रूपान्तरण नहीं ला पाया है। इसने केवल आपकी बौद्धिकता के क्षेत्र को विस्तार दिया है। अधिक-से-अधिक आप यह कह सकते हैं, 'ओह! जीवन क्षणभंगुर है', किन्तु फिर भी आप दुर्घटना से पीड़ित होते हैं। यहाँ आवश्यकता है चेतना और अनुभूति के क्षेत्र को रूपान्तरित करने की। यह ध्यान योग, मन्त्र साधना तथा इसी प्रकार की अन्य क्रियाओं के अभ्यास से सम्भव है।

अधिकतर व्यक्ति गृहस्थ जीवन का निर्वाह करते हैं, आदर की भावना से नहीं, इसलिए नहीं कि वे इसे अधिक गरिमायुक्त समझते हैं, बल्कि इसलिए कि उन पर कोई-न-कोई मनोवैज्ञानिक, भावनात्मक या सामाजिक बाध्यता रहती है। यदि हम पर किसी प्रकार की बाध्यता नहीं रहे तो हम यह जीवन भी जीना नहीं चाहें। इसका अर्थ है कि हम अपने विकास के लिए गृहस्थाश्रम की उपयुक्तता को ही नहीं समझते। क्या गृहस्थ जीवन का अर्थ केवल भोग-विलास में अपने मन को विनष्ट कर देना है? क्या यह उच्चतर उपलब्धि का सोपान नहीं है? वेदों ने इस व्यवस्था की रचना क्यों की? इसका उद्देश्य क्या था? मात्र सन्तान? मात्र भोग-विलास? या आत्मोपलब्धि?

गृहस्थाश्रम एक सोपान है। यह अपने आपमें एक लक्ष्य नहीं है। आपको गृहस्थाश्रम से वानप्रस्थ आश्रम में या जिसे मैं कर्म संन्यास कहता हूँ, उसमें प्रवेश करना चाहिए। आपको वानप्रस्थ आश्रम में कब प्रवेश करना चाहिए? क्या छप्पन वर्ष की आयु में, जब आपको पहली बार दिल का दौरा पड़ा, या छिहत्तर वर्ष की आयु में जब आप पूरी तरह से अशक्त हो चुके हैं? नहीं। जिस क्षण आपको यह बोध होता है कि गृहस्थ आश्रम एक साधन है, साध्य नहीं और जीवन में संलग्न रहते हुए भी आपको ऐसी चेतना का विकास करना है जिसमें गहराई हो, महत्ता हो, तितिक्षा और स्थायित्व हो, उसी क्षण आप निकल पड़िये। अपने गुरु से गेरू धोती, आध्यात्मिक नाम, एक जीवन दर्शन और एक लक्ष्य की माँग करें।

कर्म संन्यासी का एक लक्ष्य होता है। एक गृहस्थ का कोई लक्ष्य नहीं होता है, वह बस जिये जाता है। भविष्य-निधि, धन-सम्पत्ति, शिक्षित बच्चे – यह न तो लक्ष्य हो सकता है और न नियति। कर्म संन्यासी का लक्ष्य भी एक है और गन्तव्य भी एक। जहाँ तक ब्रह्माण्ड के अस्तित्व का सम्बन्ध है, दो गन्तव्य हो ही नहीं सकते। प्रत्येक जीव चेतन या जड़, गतिशील और गतिहीन, उद्भिज, खनिज, स्तनपायी, सरीसृप, मनुष्य, राक्षस, या देव हो, एक ही गन्तव्य की ओर गतिमान है, और उसे कहते हैं पूर्णता, पूर्ण या परमात्म तत्त्व। आप उसे ईश्वर, निर्वाण, वैकुण्ठ या कैवल्य भी कह सकते हैं, किन्तु सबका अर्थ एक ही है। गन्तव्य एक ही है और जब आपके गुरु वह लक्ष्य आपको दे देते हैं तो आप कर्म संन्यासी हैं।

साल में एक बार आप किसी आश्रम में जायें, अपने परिवार के साथ नहीं, अकेले। अपने केश पूरी तरह मुंडवा लें, गेरू धारण करें, जमीन पर सोयें,

दिन में एक बार खायें, पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन करें (मन, वचन और कर्म से) तथा एक पूर्ण संन्यासी के समान रहें। न धूम्रपान, न रेडियो, न समाचार पत्र, न राजनीति, न व्यापार, न बाजार, केवल एक काम, आपकी साधना। आपके गुरु आपको बतायेंगे कि क्या करना है– जप, लिखित जप, योग वाशिष्ठ या भगवद्गीता का पाठ या आसनों का अभ्यास। यदि वे आपको कोई आदेश नहीं देते हैं तो आप उनकी फुलवारी या रसोईघर में कार्य करें।

यदि आप पन्द्रह दिनों का समय भी एक संन्यासी के समान व्यतीत करते हैं तो यह आपको गहरा और चिरस्थायी अनुभव प्रदान करेगा तथा इसके द्वारा मन, व्यक्तित्व एवं मनुष्य का नया स्वरूप सामने आयेगा। तब जब आप गृहस्थाश्रम में वापस जायेंगे तो सभी वस्तुओं के प्रति आपका दृष्टिकोण ही भिन्न होगा। आपके सम्मुख जन्म, मृत्यु, विवाह, द्वन्द्व या कलह भी हो सकते हैं, किन्तु अब आप उन पर एक भिन्न व्यक्ति के रूप में ध्यान देंगे।

कुछ वर्ष पूर्व जब मैंने कर्म संन्यास के विषय में चर्चा की थी तो लोग इसे समझ नहीं पाये थे, किन्तु अब अधिक-से-अधिक व्यक्तियों ने इस दर्शन को स्वीकार करना प्रारम्भ कर दिया है। आपको अपने कार्यालय में गेरू पहन कर नहीं जाना है। जब आप एक कर्म संन्यासी हैं तो संन्यासी की मनोवृत्ति के साथ आपको एक पूर्ण गृहस्थ की भूमिका का निर्वाह करना चाहिए। कर्म संन्यास को हमारे जीवन का एक अभिन्न अंग बन जाना चाहिए तथा इसके द्वारा वानप्रस्थ को पुनरुज्जीवित किया जाना चाहिए। सेवानिवृत्ति की प्रतीक्षा न करें। गृहस्थाश्रम में रहकर, विवाहित होकर भी आप कर्म संन्यासी बन सकते हैं।

अन्य विकल्प

किसी भी समाज में स्त्री के आदर्श स्वरूप की रचना उसके श्रम विभाजन के आधार पर होती है। प्राय: बाहरी जगत् से जुड़े कार्य (शिकार हो या व्यापार) पुरुषों के कन्धों पर डाल दिये गये ताकि वह परिवार की भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति कर सके। स्त्रियों को घर की देख-रेख और बच्चों के पालन-पोषण का उत्तरदायित्व दिया गया। सम्भवत: ऐसा इसलिए किया गया कि स्त्री को गर्भावस्था के उत्तरवर्ती समय में और शिशु के शैशव काल में सहायता की आवश्यकता होती है। इन कारणों से स्त्रियों को जीवन के प्रारम्भिक वर्षों में पुरुषों पर निर्भर रहना पड़ता है। इन वर्षों में स्त्री का जीवन घर की परिधि में सीमित हो जाता है। ऐसी परिस्थिति में स्त्रियों को परिवार के अन्दर की तथा पड़ोसी समुदाय की भावनात्मक स्वर-शैली के प्रति संवेदनशील होना पड़ता है। स्त्री को अपने परिवार में सहनशीलता, आज्ञाकारिता एवं अनाक्रामकता के लिए प्रशिक्षित किया जाता है। उसके यही गुण उसमें एक अन्तर्दृष्टि का विकास करते हैं जो भावना और संवेदना के गुप्त जगत् से उसका साक्षात्कार कराते हैं।

यह एक जैविक सत्य है कि स्त्रियों को संतानोत्पत्ति करनी होती है। किन्तु उन्हें सन्तान की देखभाल और पालन-पोषण करना चाहिए, यह जैविक आवश्यकता नहीं है। यह सुविधाजनक है, किन्तु सुविधा अनिवार्य नहीं है। स्त्रियों को ही घर की देखभाल करनी चाहिए, क्योंकि वे स्त्रियाँ हैं, इसका भी पर्याप्त कारण नहीं है। दक्षिण भारत की तोड़ा जाति में पुरुष गृहस्थी के काम को अपना पवित्र कर्त्तव्य मानते हैं।

श्रम विभाजन के लिए लिंग विभेद के औचित्य को सिद्ध करने के लिए कहा जाता है कि पुराने समय में ही गृह-भार स्त्री को सौंप दिया गया, क्योंकि

वह इसके अतिरिक्त कुछ करने में असमर्थ है। आज भी व्यापक रूप से यही माना जाता है कि स्त्रियों की अपेक्षा पुरुष अधिक बुद्धिमान् होते हैं और वे अपनी बुद्धि का बेहतर उपयोग करते हैं। स्त्रियों को सहजानुभूत माना जाता है, किन्तु आज के तकनीकी युग में सहजानुभूति का अवमूल्यन हो गया है; इसे व्यवहार कुशल लोगों की तार्किकता कहकर इस पर सन्देह किया जाता है। बालकों को अपनी सहजानुभूति का अनुसरण करना नहीं, बल्कि केवल बुद्धि का उपयोग करना सिखाया जाता है। जबकि उसी प्रकार के बौद्धिक कार्यों से बालिकाओं को अलग रखा जाता है। वर्तमान युग प्रत्येक कार्य के लिए तार्किक आधार की अपेक्षा करता है, वह सहजानुभूति या अन्तर्दृष्टि को निर्णय का पर्याप्त आधार नहीं मानता। इस प्रकार स्त्रियों के विवेक को अनिश्चित एवं अविश्वसनीय कहकर उपेक्षित कर दिया जाता है।

व्यापक स्तर पर यह विश्वास किया जाता है कि स्त्रियों में प्राकृतिक रूप से ही विचारात्मक, क्रियात्मक एवं सृजनात्मक क्षमताएँ क्षीण होती हैं। किन्तु इन क्षमताओं के अभाव का कोई जैविक या मनोवैज्ञानिक प्रमाण नहीं है। लिंग भेद के आधार पर किये गए बच्चों की उपलब्धि के अध्ययन से इस मनोवृत्ति की पुष्टि नहीं होती है। बालक एवं बालिकाओं को पढ़ कर सुनाने, गिनती, गणितीय विवेचन, क्रम-विच्छेद एवं पुनर्संरचना, अवधारणा गति, हस्त एवं वैज्ञानिक दक्षताओं के लिए जाँचा गया। भिन्नता का कोई विशेष स्वरूप प्रकट नहीं हुआ। न तो बुद्धि परीक्षण में और न ही मानसिक क्षमताओं के परीक्षण में यह स्थापित हो पाया कि लिंग भेद के आधार पर स्त्रियों को गृह कार्यों तक ही सीमित रहना चाहिए।

यदि स्त्रियों को घर की सीमाओं के अन्दर रखने का कारण यह है कि वे शारीरिक रूप से पुरुषों की अपेक्षा दुर्बल होती हैं तो यह याद रखना चाहिए कि कुछ ही मानवीय कार्यसिद्धि के लिये मांसल, शक्तिशाली मांसपेशियाँ आवश्यक हैं।

मातृत्व प्रवृत्ति का अभाव

इस बिन्दु पर अनेक वाद-विवाद हुए हैं कि माताओं का अपनी सन्तानों के साथ एक सहज सम्बन्ध होता है जिसे हम 'मातृत्व की नैसर्गिक प्रवृत्ति' कहते हैं। ऐसा प्रतीत होता है मानो यही वह जैविक कारण रहा हो जिसके आधार पर परिवार में स्त्री की भूमिका निश्चित की गयी हो। यह सार्वभौमिक दृष्टिकोण

रहा है कि स्त्रियों के परितोष के लिए मातृत्व ही अनिवार्य एवं पर्याप्त अवस्था है; प्रत्येक स्त्री को मातृत्व प्रदान कर देना ही उसके परम सन्तोष के लिए पर्याप्त है और इसी के द्वारा उसे पूर्णता का आनन्द प्राप्त हो सकता है।

आत्म-संरक्षण की प्रवृत्ति के बाद पुरुष के अन्दर यौन प्रेरित जैविक संवेग ही सर्वाधिक प्रबल होता है, जिसका परिणाम प्रजनन के रूप में प्रकट होता है। किन्तु मातृत्व का संवेग स्वयं में एक प्रेरक शक्ति नहीं है, इसलिए यह स्त्रियों के बीच सर्वमान्य नहीं है। 'मातृत्व की नैसर्गिक प्रवृत्ति' पीढ़ियों से चले आ रहे सामाजिक प्रशिक्षण के साथ-साथ अपरिहार्य स्थिति को लाभप्रद और सम्पुष्ट करने की आवश्यकता का मिला-जुला परिणाम है।

पुरुष पिता बनने के सभी आवश्यक शारीरिक उपकरणों के साथ उत्पन्न होते हैं, किन्तु हम कभी 'पितृत्व की नैसर्गिक प्रवृत्ति' का उल्लेख नहीं करते। कोई पुरुष इस अभ्युक्ति को स्वीकार नहीं करेगा कि उसके जन्म का प्रमुख उद्देश्य एक पिता बनना है और केवल पितृत्व की भूमिका ही उसे व्यक्तिगत सन्तोष दे सकती है। पुरुषों के क्रियाकलापों का एक व्यापक क्षेत्र रहा है जिसके माध्यम से वे सदा पुरस्कृत होते रहे हैं, पितृत्व उनके जीवन का अल्पांश रहा है, या कुछ भी नहीं। फिर भी, हम उन पुरुषों को 'अस्वाभाविक' नहीं कहते जो नि:सन्तान होते हैं, जबकि सन्तान नहीं चाहने वाली स्त्रियों को 'अस्वाभाविक' कहा जाता है। जैविक पिता द्वारा सन्तान के पालन-पोषण में सहयोग नहीं देने पर भी उसे सहन कर लिया जाता है। जबकि एक स्त्री यदि अपने बच्चों को उसकी देखभाल के लिए किसी अन्य व्यक्ति के पास छोड़ती है तो उसे दुष्ट या पागल समझा जाता है, या उसे भाग्य का मारा कहा जाये तो बेहतर होगा।

ऐसी दु:खी स्त्रियाँ जो सन्तान उत्पन्न करना तो चाहती हैं किन्तु शारीरिक अक्षमता के कारण ऐसा नहीं कर पातीं, उन्हें देखकर अनेक लोग यह दलील देते हैं कि उनके अन्दर मातृत्व की जो भावना है उसके अपूर्ण रह जाने पर वे निराशा से भर जायेंगी। पहली बात यह है कि सभी बन्ध्या स्त्रियाँ दु:खी नहीं रहती हैं। दूसरी बात यह कि स्वयं उन स्त्रियों ने नि:सन्तान रहना नहीं पसन्द किया था; किन्तु चीज से वंचित रह जाने की भावना ही उन्हें अधिक दु:खी बनाती है। इसके अतिरिक्त ऐसे समाज में जहाँ मातृत्व को ही स्त्री के अस्तित्व का मूल कारण और उद्देश्य समझा जाता है, वहाँ नि:सन्तान स्त्रियों को अपूर्ण माना जाता है और उन्हें अवांछित सहानुभूति एवं दया का सामना करना पड़ता है जो उनकी स्थिति को भारमुक्त नहीं करता। कुछ स्त्रियों ने अन्य कार्यों

में लगकर अपनी निराशा का समाधान ढूँढ़ लिया है। अनेक स्त्रियाँ ऐसी हैं जिन्होंने दूसरे बच्चों को गोद लेकर मातृत्व का आनन्द प्राप्त किया है।

मानव शास्त्रीय प्रमाणों से यह धारणा सत्यापित नहीं होती कि सन्तान की देखभाल करने से जो परितोष या परिपूर्णता का भाव आता है वह सहज प्रेरणा के सन्तुष्टिकरण पर आधारित होता है। कुछ ऐसे अध्ययन हैं जिनसे शायद ही मातृत्व की सहज प्रवृत्ति की हल्की झलक भी मिलती हो। डॉ. मीड ने न्युगिनी की एक जनजाति का अध्ययन किया, जहाँ की स्त्रियों में मातृत्व की भूमिका के प्रति छिपे तौर पर अरुचि थी; उनमें से ऐसी विरली स्त्री को तिरस्कार की दृष्टि से देखा जाता था जिसमें अपने बच्चों के प्रति स्पष्ट ममता थी। क्लॉड-लेवी-स्ट्रॉस द्वारा अम्बाया पर किये गये अध्ययन तो और चौंकाने वाले हैं। वे मातृत्व को इतना नापसन्द करती हैं कि प्रजनन के एक आंशिक विकल्प का प्रयोग करती हैं। अम्बाया के योद्धा दूसरी जन-जातियों के बच्चों को बन्दी बना कर ले आते हैं और फिर अपने बच्चों की तरह उनका पालन-पोषण करते हैं।

यह एक तथ्य है – कुछ मानव समाजों ने माता और सन्तान के बीच के सम्बन्ध को इतना स्वाभाविक एवं परितोषपूर्ण माना है कि उन्होंने स्त्रियों को यह सिखाना अनिवार्य नहीं समझा कि मातृत्व ही उनका कर्त्तव्य और उनकी नियति है। जो समाज जितना सभ्य हो जाता है वह इस प्रशिक्षण पर उतना ही बल देता है, क्योंकि ज्यों-ज्यों मानव समाज के क्रियाकलापों का क्षेत्र बढ़ता जाता है, त्यों-त्यों मातृत्व एवं परिवार से परे रुचि-अरुचि की सम्भावनाओं का विस्तार होता जाता है।

रुचि

यह कहना हास्यास्पद होगा कि स्त्रियाँ अब विवाह करना या सन्तानोत्पत्ति करना नहीं चाहेंगी। अधिकतर व्यक्ति गृहस्थ जीवनशैली पसन्द करते हैं, क्योंकि इसके द्वारा उनकी आवश्यकताओं एवं इच्छाओं की पूर्ति होती है, और सन्तान के साथ रहना तथा उनकी देखभाल करना परितोषदायक होता है। अनेक व्यक्ति बच्चों के भरण-पोषण या बच्चों के शिक्षण को अपने जीवन का उद्देश्य बना लेते हैं, क्योंकि यह उन्हें अत्यन्त उत्तेजक एवं सम्वर्द्धक प्रतीत होता है। (चूँकि ऐसे व्यक्ति अधिकतर पुरुष हैं, इसे मातृ प्रवृत्ति के पुनर्प्रणालन का परिणाम नहीं कहा जा सकता।)

गर्भ निरोधक साधनों की व्यापक सुलभता ने मातृत्व के चयन की स्वतन्त्रता दे दी है। अविवेकपूर्ण ढंग से स्त्रियों पर मातृत्व और परिवार का उत्तरदायित्व थोपे जाने के स्थान पर अब वे ऐसी स्थिति में हैं कि अपनी इच्छा से इनका चुनाव कर सकें। कुछ स्त्रियाँ यह समझ पायेंगी कि वे कभी मातृत्व नहीं चाहती या तत्काल नहीं चाहती हैं। दूसरी ओर, माता की भूमिका ऐसी स्त्री के लिए आनन्ददायक होगी जो सक्रियता से इसका चयन करती है, न कि जब उसे यह अनचाहे स्वीकार करना पड़े। स्वेच्छा से इस भूमिका को स्वीकार करने वाली स्त्री अधिक सकारात्मक, सक्षम एवं स्नेहपूर्ण होगी और वह आदर्श सम्बन्धों का सृजनात्मक ढंग से चयन कर सकेगी जो उसके लिये तथा परिवार के लिये सम्वर्द्धक होगा।

फिर भी मातृत्व एवं पारिवारिक जीवन की अपरिहार्यता के पुनर्मूल्यांकन के द्वारा स्त्रियाँ 'स्त्रियों के उन कार्यों' को वर्तमान कसौटी पर परख सकेंगी जो अनेक स्त्रियों में कष्ट का कारण बन रहे हैं। वे अब हमेशा घर में रहकर बच्चों की देखभाल में ही सन्तुष्ट नहीं रह पाने से होने वाले अपराध बोध से मुक्त होंगी। यहाँ एक विकल्प है जिसका अन्वेषण एकीकरण के लिये स्त्रियों की व्यक्तिगत आवश्यकताओं के परिपेक्ष्य में किया जाना चाहिये। जब स्त्रियों की पसन्द को मान्यता दी जा रही है तो ऐसी स्त्रियों के कार्य एवं जीवनशैली का पुनर्मूल्यांकन करना होगा जो अविवाहित हैं।

अविवाहित स्त्रियाँ

ऐसी अनेक स्त्रियाँ हुई हैं जिन्होंने तत्परता और सकारात्मकता के साथ विवाह के विकल्प का चयन किया है। अनन्त काल से योगिनियाँ, प्राचीन ग्रीस एवं फिनीशिया की पुजारिनें, डाइनें, धर्मसंघिनी (ईसाई), सन्त एवं धार्मिक जिज्ञासुओं-ऐसी सभी स्त्रियों ने विवाह और मातृत्व से परे परितोष पाया है। हर जगह परिवारों में ऐसी अविवाहित स्त्रियाँ भी हुई हैं जो बेशक पत्नी और माता से अधिक पुत्री, बहन आदि के समान उपयोगी रही हैं और जिन्हें वैसा ही स्नेह मिला है।

आज अधिक-से-अधिक स्त्रियाँ रूढ़िगत भूमिकाओं से परे भी कुछ ढूँढ़ रही हैं जिसके माध्यम से उनकी क्षमताओं को पूर्ण अभिव्यक्ति मिल सके। जिस प्रकार कभी शक्तिशाली रानियाँ और साम्राज्ञियाँ हुआ करती थीं, उसी प्रकार अब स्त्रियाँ अपने-अपने देशों की सरकारों के उच्चतम पदों पर

कार्यरत हैं। स्त्रियों ने विधि न्यायालयों एवं शल्य चिकित्सालयों में प्रवेश किया है; वे अभियन्ता एवं वास्तुकार हैं; वैज्ञानिक, शिक्षिका, परिचारिका एवं कलाकार हैं; मनोवैज्ञानिक, समाज सेविका एवं प्रशासक हैं। स्त्रियाँ अधिक-से-अधिक ऐसे अवसरों से लाभ उठा रही हैं और अवसर उत्पन्न कर रही हैं जहाँ वे एक रचनात्मक और भरापूरा जीवन व्यतीत कर सकें जिस पर कभी पुरुषों का ही एकाधिकार था।

पूर्वाग्रह

स्त्रियों की इस प्रत्यक्ष मुक्ति के बावजूद उनके विरुद्ध कमोवेश पक्षपात अभी भी होते हैं। वस्तुत: विभिन्न वृत्तियों एवं व्यापार के ऊँचे स्तरों पर महिलाएँ अल्पसंख्या में हैं। वे अधिकांशत: व्यापार तथा उद्योगों में अपेक्षाकृत निम्न पदों पर स्थित हैं या घरों में नौकरानियों के रूप में कार्य कर रही हैं। अधिकतर स्त्रियाँ परिवेषिका, लिपिक, टंकण, सचिव आदि के रूप में नियोजित हैं। आंशिक रूप से इसका कारण है कि स्त्रियाँ या तो विवाह होने तक इस प्रकार की नौकरियाँ कामचलाउ व्यवस्था के रूप में करती हैं या परिवार की निम्न आय में वृद्धि करने के अनुपूरक साधन के रूप में करती हैं। नियोजन का समान अवसर तो आना अभी बाकी है।

अनेक नियोजक स्त्रियों को पुरुषों की अपेक्षा कम योग्य समझते हैं, इसलिए पुरुषों को ही काम देना पसन्द करते हैं। यह दुर्भाग्यपूर्ण है कि समान वृत्ति के लिए स्त्री से पुरुष की अपेक्षा अधिक ऊँची अर्हता की माँग की जाती है। यह भी सत्य है कि अधिकतर पुरुष किसी वरीय स्त्री पदाधिकारी के अधीन कार्य करने की बाध्यता में अपने को अपमानित महसूस करते हैं, और कार्मिक प्रबन्धन को यही समस्या है जिसके कारण प्राय: योग्यता सम्पन्न स्त्री को भी पदोन्नत करने से प्रशासन कतराता है। अधिकतर व्यक्ति समझते हैं कि स्त्रियाँ अन्तत: विवाह कर सन्तानोत्पत्ति में लग जायेंगी, इसलिए उन्हें ऊँचे पदों के लिए प्रशिक्षित करना समय और पैसे का अपव्यय है। एकल महिलाओं के लिए लोगों को यह विश्वास दिलाना अत्यन्त कठिन होता है कि वे अपने कार्य के प्रति गम्भीर हैं और विवाह के लिए इसे छोड़ देने की उनकी कोई इच्छा नहीं है। नौकरी या व्यवसाय में पूर्वाग्रह के अतिरिक्त स्त्रियों को कानूनी पक्षपात का भी सामना करना पड़ता है। अनेक देशों में स्त्रियों को सम्पत्ति का अधिकार नहीं दिया गया था, किन्तु धीरे-धीरे अब उन्हें यह अधिकार दिया जा रहा है।

अकेली स्त्रियों को किराये पर घर लेने में भी अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है, एक घर खरीदने की बात तो दूर रही। एकल स्त्रियों को इसके लिये ऋण पर पैसा मिलना कठिन होता है, क्योंकि उनके पास पति की आय की संदेहास्पद जमानत भी नहीं होती।

अभी भी समाज का यह विचार है कि स्त्रियों को विवाह अवश्य करना चाहिए; और ऐसा करने के लिये उन पर परिवार और मित्रों के द्वारा अत्यधिक दवाब डाले जाते हैं। एक स्त्री विवाह नहीं करके न केवल अपने को परिवार से अलग-थलग कर लेती है, बल्कि ऐसे में प्रतीत होता है जैसे वह गरीबी को नैतिक संकट को और सबसे ऊपर वृद्धावस्था में अकेलेपन को बुलावा दे रही है। विवाह इन दुर्भाग्यपूर्ण स्थितियों से सुरक्षा प्रदान करेगा ही, इस बिन्दु को वाद-विवाद में स्थान नहीं दिया जाता है। यह स्थिति विवाह की इच्छुक उस बालिका के लिए अधिक दु:खदायी है जो किसी कारणवश विवाह नहीं कर पायी है या नहीं कर सकती हैं। वह द्वन्द्व में पड़ जाती है, क्योंकि एकांगी जीवन उसने अपनी इच्छा से नहीं चुना है; और अन्य लोगों से निरन्तर प्राप्त आलोचना के प्रहार से वह आत्मशंसा के प्रति अति संवेदनशील हो जाती है।

अविवाहित स्त्रियों के प्रति दया-करुणा का जो दिखावा किया जाता है वह उनके प्रति प्रयुक्त अपमानजनक शब्दों के द्वारा सामाजिक स्वीकृति के अभाव को प्रकट कर देता है। अंग्रेजी का 'बैचलर' शब्द पुरुष के मात्र अविवाहित होने का संकेत देता है, जबकि उसका समतुल्य स्त्रीलिंग शब्द 'स्पिन्स्टर' ऐसी दुर्बल और तुनक मिजाज स्त्री की छवि प्रस्तुत करता है जिसकी ओजस्विता एवं सहृदयता विवाह नहीं हो पाने के कारण विलुप्त हो चुकी है। अविवाहित स्त्रियों के लिए अंग्रेजी में असम्मानजनक अर्थों वाले कुछ शब्द उत्पन्न हुए हैं जो चरित्र विशेष का निरूपण करते हैं, जैसे– 'बैचेलर गर्ल' से असंयत चरित्र की स्त्री का बोध होता है। दूसरी ओर 'कैरियर वीमन' से ऐसी स्त्री की धारणा बनती है जो भावशून्य, निष्ठुर और हृदयहीन यन्त्र के समान है, अपने कार्य के प्रति उसका लगाव उसे सम्मान प्रदान नहीं करता, बल्कि नफरत पैदा कर देता है। किन्तु इस तथ्य पर किसी का ध्यान नहीं जाता कि एकल स्त्रियाँ अपनी जीवनशैली के प्रति समाज के विद्वेषपूर्ण रवैये से क्षुब्ध होकर स्वयं को अपने अन्दर समेट लेती हैं या छिद्रान्वेषी और कुपित हो जाती हैं।

एक स्त्री को सदा सतर्क रहना पड़ता है, क्योंकि उससे यदि कोई त्रुटि हो जाती है तो उसकी एकल स्थिति को इसका दोषी माना जाता है। यदि लोग

उसके व्यक्तित्व को नापसन्द करते हैं तो उन्हें ऐसा लगता है कि उस स्त्री को एक पुरुष की आवश्यकता है। एक स्त्री कितनी भी सुखी और सफल क्यों न हो, उस पर यह कटाक्ष किया जाता है कि 'वह विवाह नहीं कर पाई।' यह अधिकतर लोगों की कल्पना के परे होता है कि कुछ स्त्रियाँ सचमुच विवाह नहीं करना चाहती हैं। विकल्पत: अविवाहित रह जाने वाली स्त्रियों की संख्या बढ़ती जा रही है, किन्तु ऐसा कर वे सामाजिक अनुमोदन प्राप्त करने के लिए अनजाने-अनुत्तरित युद्ध में संलग्न हुई जा रही हैं।

योग के लिए अधिक समय

एकल स्त्रियाँ योग के द्वारा अपने तनाव से मुक्त होती हैं और उनकी जीवनशैली सम्वर्द्धित होती है। योग का अभ्यास उनमें अनासक्ति को संपुष्ट करता है तथा शान्ति के साथ तुच्छ आलोचनाओं से ऊपर उठने के लिए आन्तरिक सन्तुलन एवं संबल देता है। योग पूर्ण अनासक्ति के साथ अपने कार्यों में पूर्णता लाने की अभिवृत्ति को प्रोत्साहित करता है जिससे स्त्री की जीवनवृत्ति उच्चतर जागरूकता प्राप्त करने का एक साधन बन जाती है। यह महत्त्वपूर्ण नहीं कि वह किस प्रकार का कार्य करती है, उसकी यह अभिवृत्ति उसे यह बोध कराती है कि उसका कार्य केवल आजीविका का साधन नहीं है, बल्कि एक आध्यात्मिक अभ्यास भी है। थोड़े उत्तरदायित्वों और अपने समय पर दूसरों का कम अधिकार होने के कारण एकल स्त्री योग के माध्यम से आत्म-सम्वर्द्धन में अधिक समय दे सकती है। इसके द्वारा उसमें सामर्थ्य, विश्वास एवं व्यक्तिगत ओजस्विता उत्पन्न होगी, जो उसकी जीवनशैली के औचित्य को सत्यापित करेंगे।

संन्यास

आध्यात्मिक विकास के लिए हमें अपनी सामाजिक स्थिति में परिवर्तन लाने की आवश्यकता नहीं है। यदि हम विवाहित हैं तो हमें उस सम्बन्ध को समाप्त करने या उस जीवनशैली को बदलने की आवश्यकता नहीं। विवाहित जीवन में भी साधना हमें ऊँचाइयों तक ले जा सकती है।

ऐसी स्त्रियाँ भी हैं जो आजीवन अविवाहित रहना पसन्द करती हैं। उनका व्यक्तित्व भिन्न प्रकार की जीवनशैली से अनुप्रेरित होता है। ऐसी स्त्रियाँ जो उच्चतम आध्यात्मिक उपलब्धि चाहती हैं या ऐसी स्त्रियाँ जो केवल उपयोगी

होना चाहती हैं, योग उनके लिए संन्यास जीवन का मार्ग प्रशस्त करता है तथा सहजता, सामंजस्य एवं ज्ञान की ओर ले जाता है।

जीवन के अन्य मार्गों का त्याग करने पर भी एक स्त्री कुछ नहीं गँवाती है। यदि उसमें मातृत्व की भावना है तो उसे सार्वभौमिक अभिव्यक्ति का अवसर मिलता है और सैंकड़ों छोटे-बड़े बच्चे उसके स्नेह से लाभान्वित होते हैं। घर में पति और बच्चों की देखभाल करने के बजाय उसके लिए सम्पूर्ण मानवता की सेवा का क्षेत्र विस्तृत हो जाता है। संन्यास के मार्ग पर चलने वाली स्त्री संसार के सतहीपन का त्याग करती है ताकि वह संसार को समझ सके, और अधिक पूर्णता से उसका अनुभव कर सके।

संन्यास एक सृजनात्मक जीवनशैली है जो धीरे-धीरे मानसिक ग्रन्थियों और अवरोधों को दूर करती जाती है। इस गतिशील और प्रेरक जीवन में हताशा के लिए कोई स्थान नहीं होता है। संन्यास मन को आदर्श उपकरण के रूप में इस प्रकार रूपान्तरित करता है कि वह भ्रम या क्लेश नहीं, बल्कि ज्ञान और आनन्द का सम्प्रेषण करे।

संन्यासी हो जाने के बाद स्त्री लिंग-भेद से परे हो जाती है तथा अपनी जैविक संरचना के आधार पर किसी भूमिका-विशेष का निर्वाह करने के दायित्व से भी मुक्त हो जाती है। संन्यासी की कोई विशेष भूमिका नहीं होती है, वह स्वयं को सेवा करने योग्य बनाने के लिए किसी भी प्रकार का कार्य करने के लिए स्वतन्त्र है। संन्यास के माध्यम से स्त्री दूसरों की सहायता कर के ही स्वयं की पूर्ण सहायता कर सकती है। संन्यास का विकल्प चुनकर जीवन में पूर्णत: संलग्न होने की शपथ लेती है जो उसे अवश्य ही उसके आध्यात्मिक लक्ष्य तक पहुँचाता है। स्त्रियों की मुक्ति के लिए संन्यास ही परम सत्य है।

स्त्री एवं संन्यास

(*गुरुदेव स्वामी सत्यानन्द सरस्वती का प्रवचन*)

योग के इतिहास में स्त्रियाँ सदा बहुसंख्यक रही हैं। इस सभा में गिनती करें; किसी योग कक्षा, सत्संग या आश्रम में जायें, वहाँ आप पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों को ही अधिक पायेंगे। वस्तुत: आध्यात्मिक आन्दोलन में अधिक स्त्रियों की संलग्नता कोई नई बात नहीं है, बल्कि यह आधुनिक पुनर्जागरण है।

गत कई शताब्दियों में स्त्रियों का दमन किया जाता रहा और उन्हें समानता के मौलिक अधिकारों से वंचित रखा गया। उनके लिए आध्यात्मिक जीवन भी

निषिद्ध था। शायद हम अपने दैहिक सुखों के लिए उनका शोषण करना चाहते थे। निश्चित रूप से मेरा सन्देह उचित है। यदि स्त्रियों को आध्यात्मिक जीवन के लिए अनुमति दी जाती और उन्हें अपनी चेतना का विकास करने के लिए प्रोत्साहित किया जाता तो वे हमारी विषयासक्ति का शिकार कैसे बन पाती?

स्त्रियों की स्थिति को देखिये। पिछले कुछ समय तक भी उन्हें केवल पत्नी और माता बनने के लिए प्रोत्साहित किया जाता था, उससे अधिक कुछ भी नहीं। वे मानसिक रूप से इस प्रकार अनुबन्धित हो गयी थीं कि उन्हें अस्वीकार करना या प्रतिरोध करना आता ही नहीं था। अब स्त्रियों ने पुरानी प्रथाओं को तोड़ना प्रारम्भ किया है। पश्चिमी देशों में तो स्त्रियों को आध्यात्मिक मठों से सदा निष्कासित ही रखा जाता रहा है। जब भी मैं पश्चिम के मठों में गया, मेरे साथ गई सभी स्त्री संन्यासिनों को अन्दर जाने की अनुमति नहीं दी गयी। योग की परम्परा सर्वथा भिन्न है; स्त्री और पुरुष साथ रह सकते हैं, घूम सकते हैं, बातें कर सकते हैं।

योग के इतिहास के प्रारम्भ से ही स्त्रियों की प्रमुख भूमिका रही है, उनमें से अनेक तो सन्त और गुरु भी हुई हैं। शिव को तन्त्र एवं योग का अधिष्ठाता एवं गुरु भी माना जाता है। क्या आप जानते हैं, उनके प्रथम शिष्य कौन थे? पार्वती, उनकी प्रतिरूप पत्नी या शक्ति। यदि आप तन्त्र की पुस्तकें पढ़ें तो पायेंगे कि उनका आरम्भ 'पार्वती ने पूछा' से ही होता है। इस प्रकार तन्त्र और योग का ज्ञान सर्वप्रथम एक स्त्री को ही प्रदान किया गया। योग की संस्कृति में जब किसी सम्बन्ध का उल्लेख किया जाता है तो पहले स्त्री का नाम लिया जाता है। हम 'राम-सीता' नहीं, बल्कि 'सीता-राम', या 'कृष्ण-राधा' नहीं, बल्कि 'राधा-कृष्ण' या 'शंकर-गौरी' नहीं, बल्कि 'गौरी-शंकर' कहते हैं।

तन्त्र की तिब्बती एवं हिन्दू परम्परा में चौरासी सिद्ध एवं चौंसठ योगिनियाँ हुईं। कश्मीर में एक महान् महिला सन्त हुईं जिनका नाम लल्ला था। वे सर्वदा पूर्णत: नग्न रहती थीं। उनके भक्त प्राय: उनसे पूछते, 'लल्ला, आप वस्त्र क्यों नहीं पहनतीं?' वे उनका उपहास करती हुई कहतीं, 'तुम मेरा शरीर देखते हो या मेरी आत्मा?'

उपनिषदों में अनेक स्थानों पर स्त्री सन्तों का तथा स्त्री एवं पुरुष योगियों के बीच दार्शनिक वाद-विवाद का उल्लेख मिलता है। गार्गी नामक एक महान् स्त्री संन्यासिनी का उल्लेख भी मिलता है जो सुविख्यात विदुषी एवं अत्यन्त बुद्धिमती भी थीं।

जब शंकराचार्य ने अपने सुप्रसिद्ध तन्त्र-ग्रन्थ 'आनन्द लहरी' की रचना की तो उन्होंने इस मर्मस्पर्शी श्लोक से इसका श्रीगणेश किया– 'क्या शक्ति के बिना शिव सृजन कर सकते हैं?' शिव मात्र एक मौन साक्षी हैं, शक्ति ही स्रष्टा हैं। यही कारण है कि तान्त्रिक परम्परा में स्त्री ही उत्प्रेरक होती है।

विश्व में दो प्रथाएँ प्रचलित हैं– एक मातृसत्तात्मक और दूसरी पितृसत्तात्मक। यहूदी, ईसाई, और इस्लाम धर्म पितृसत्तात्मक हैं। हिन्दू, बौद्ध, पारसी, शिन्टो, ताओ एवं कन्फ्यूशियस धर्म मातृसत्तात्मक हैं। मातृसत्तात्मक धर्म अत्यन्त उदार एवं सुनम्य हैं। उनमें दूसरों के प्रति अत्यधिक सहानुभूति एवं करुणा होती है जो मूलत: स्त्री स्वभाव को प्रतिबिम्बित करती है।

मातृसत्तात्मक धर्मों ने जीवन को अनेक प्रकार से सौन्दर्य प्रदान किया है, योग, तन्त्र, ललित कलाओं– संगीत, नृत्य, चित्रकारी इत्यादि के माध्यम से। पितृसत्तात्मक धर्म अनम्य होते हैं, इन्होंने शक्तिशाली योद्धा उत्पन्न किये और समर्थ प्रशासन का विकास किया। किन्तु इन्होंने स्त्रियों के विकास को अवरुद्ध किया।

पिछली डेढ़ शताब्दी में पश्चिम की स्त्रियों में अधिक खुलापन आ गया है और पूरब में भी धीरे-धीरे परिवर्तन आ रहे हैं। जैसा कि मैंने प्रारम्भ में ही कहा था, स्त्री संन्यासिनी परम्परा का भी पुनर्जागरण हुआ है और इसका श्रेय मुझे जाता है। जब मैंने साठ और सत्तर के दशकों में स्त्रियों को संन्यास की दीक्षा देना प्रारम्भ किया तो रूढ़िवादी लोगों के बीच बहुत शोरगुल हुआ। किन्तु ज्यों-ज्यों समय बीता, उन्होंने मेरी लीक पकड़ ली, क्योंकि उनके पास अन्य विकल्प नहीं था। अब उनकी मेरे से अधिक संख्या में स्त्री शिष्यायें हैं।

मेरा व्यक्तिगत दर्शन है– स्त्रियाँ सच्ची और आज्ञाकारी होती हैं। वे ईमानदार और कठिन परिश्रमी भी होती हैं। और जब वे आपके साथ कार्य करती हैं तो वे आपको सदा तनावमुक्त रखती हैं। मैं यह भी कहूँगा कि मेरे कार्य की सफलता का प्रमुख कारण यह था कि मैंने अपने आन्दोलन में स्त्रियों को भी शामिल किया। मैं यह नहीं कह रहा हूँ कि पुरुष व्यर्थ हैं; उनका अपना स्थान है, किन्तु मेरा विश्वास है कि सृष्टि विन्यास में स्त्रियाँ श्रेष्ठतर हैं।

स्त्री स्रष्टा की सुन्दरतम कृतियों में से एक है और उन्हें आध्यात्मिक जीवन से दूर रखने का कोई कारण नहीं है। स्त्रियाँ स्वभाव से चैतन्यपूर्ण होती हैं, हमें उनको उनकी चेतना और व्यक्तित्व के इस अंग के विकास का अवसर देना चाहिए। क्यों नहीं उन्हें भी अतीन्द्रियदर्शी, दूरबोधी, पैगम्बर, विदुषी और संन्यासिनी होना चाहिए?

आत्म-स्थित भगवती

महादेवी अस्तार्ती को अपना पुत्र ताम्मुज अत्यन्त प्रिय था, जो पृथ्वी को आच्छादित करने वाला हरित वनस्पति देव था। एक बार उसकी सुन्दरता पर मुग्ध होकर पाताल लोक की रानी ने ताम्मुज का अपहरण कर लिया और उसे अपने साम्राज्य में ले गयी। अस्तार्ती शोकातुर होकर विलाप करने लगी। उसके चेहरे पर झुर्रियाँ पड़ गयीं और शरीर अस्थि-पिंजर-सा रह गया। उसके लिए सान्त्वना अर्थहीन हो गयी। उसने अपने केश बाँधे और अपने पुत्र की खोज में निकल पड़ी। किन्तु सम्पूर्ण विश्व में उसे अपना पुत्र कहीं नहीं मिला।

कुछ समय बाद सूर्य को अस्तार्ती पर दया आ गयी और उसने उसे उसके पुत्र के लुप्त होने का रहस्य बता दिया। महादेवी अत्यन्त शोकातुर थी, किन्तु निराश नहीं थी। उसने क्रुद्ध होकर पृथ्वी को भयंकर शाप दे दिया– "यदि मेरा पुत्र मुझे पुन: प्राप्त नहीं हुआ तो सम्पूर्ण मानव जाति विनष्ट हो जाये! न वर्षा हो, न ऊष्मा हो और न ही फसलें हों।" देवी की प्रबल शक्ति के कारण उसकी इच्छाएँ आदेश मानी जाती थीं, और इसीलिए पूरी धरती शीताच्छादित होकर बन्ध्या हो गयी।

जबकि धरती काँप रही थी, अस्तार्ती अपनी दु:साध्य यात्रा पर निकल पड़ी। पाताल के निषिद्ध सिंहद्वार पर जाकर उसने जोरों की दस्तक दी। वहाँ बैठे द्वारपाल ने कटाक्ष के साथ उससे प्रवेश शुल्क के रूप में उसके मुकुट की माँग की। उसने दे दिया। अन्धकारयुक्त विकृतियों को झेलती हुई वह पाताल के केन्द्र तक पहुँची। जब वह अपने लक्ष्य के मार्ग में आने वाले शेष छ: द्वारों से होती हुई आगे बढ़ी तो प्रत्येक द्वार के द्वारपाल ने उससे प्रवेश शुल्क माँगा, जो वह बिना किसी सोच-विचार के देती गयी। परिणामस्वरूप अन्तिम द्वार से

निकलने के बाद वह नग्न हो चुकी थी। नग्नावस्था में ही पाताल लोक की रानी से उसका साक्षात्कार हुआ और उसने अपने पुत्र का जीवन वापस माँगा। धरती के ऊपर और नीचे निस्तब्धता छा गयी, क्योंकि वहाँ प्रकाश और अन्धकार, जीवन और मृत्यु अपने शक्ति परीक्षण में व्यस्त थे।

अन्ततः अस्तार्ती की जीत हुई, उसे अपना पुत्र पुनः प्राप्त हो गया। इस प्रकार प्रकाश लोक में ताम्मुज का पुनर्जन्म हुआ जिससे विश्व में वसन्तोत्सव-सा आनन्द छा गया।

मिथक

रहस्य कथाओं या मिथकों की धुँधली भाषा में हम अपनी उन समझों को व्यक्त करते हैं जिन्हें हम अन्तर्ज्ञान से सही समझते हैं और वैसे अनुभवों को व्यक्त करते हैं जो तार्किक समझ से परे हैं। अस्तार्ती की कथा अनेक व्याख्याओं को जन्म देती है, किन्तु पहली बार पढ़ने पर यह प्रत्येक आध्यात्मिक साधक की कथा प्रतीत होती है। अस्तार्ती की ताम्मुज से पुनः मिलने की इच्छा हम सब की उस स्वाभाविक तीव्र इच्छा का प्रतिरूप है जो हमें उच्चतम चेतना में लीन होने को प्रेरित करती है। पाताल की उसकी यात्रा हमें अपने अस्तित्व की गइराइयों में ले जाने का प्रयत्न है, जो हमें अपने लक्ष्य तक पहुँचने के लिए अवश्य करनी चाहिए। प्रकाश और अन्धकार के बीच का द्वन्द्व प्रत्येक आत्मा के अन्दर होता है। पाताल की रानी वह प्रबल अहंकार है जो हमें अज्ञान-पाश में सदा के लिए आबद्ध कर देना चाहती है। सात द्वारपाल हमारे दैनिक जीवन की वे बाधाएँ हैं जिनके प्रति उचित मनोवृत्ति रहने पर हम आसक्ति एवं नकारात्मकता से मुक्त हो सकते हैं। वे सात द्वार सात चक्र हैं, तथा प्रकाशपूर्ण जगत् में अस्तार्ती और ताम्मुज का पुनरुद्भव उच्चतर चेतना में स्वयं हमारा ही उत्कर्ष है।

मिथकों का जन्म समग्र अचेतन से होता है, जिसमें स्त्रियों के विशुद्ध स्वरूप से सम्बद्ध सारे अनुभव संचित होते हैं। हमारे अस्तित्व का यह स्तर परिपूरक और विरोधी तत्त्वों को आपस में जोड़ कर बौद्धिक व्याख्या को चुनौती देता है तथा जाग्रत चेतना के पार से हमें प्रभावित करने वाले प्रतीकों का समन्वय कर देता है। मिथक हमारे व्यक्तिगत उन्नयन के लिए हमारा मार्गदर्शन कर हमें प्रेरित करते हैं। इसलिए अस्तार्ती की कथा सभी स्त्रियों के लिए सुसंगत है। 'स्त्रियों की स्त्री' होते हुए भी अस्तार्ती साहस, दृढ़ निश्चय एवं

व्यक्तिगत शक्ति का दृष्टान्त है। अपने पुत्र के खो जाने पर वह शोकातुर हो जाती है, किन्तु वह स्वयं को अवसाद में डूबने नहीं देती है। वह केवल बैठकर शोक नहीं मनाती रहती है, बल्कि उस स्थिति से उबरने के लिए हर सम्भव उपाय करती है। यद्यपि वह स्नेह से परिपूर्ण है, किन्तु उसके स्नेह ने उसे दुर्बल नहीं बनाया है। अस्तार्ती अपनी यात्रा की कठिनाइयों से विचलित नहीं होती है, बल्कि अन्त तक वह उस साहस और निश्चय के साथ आगे बढ़ती जाती है जिसकी हमें आवश्यकता है। महादेवी ब्रह्माण्ड की रचनात्मक शक्तियों का वह ईश्वरीय प्रतिरूप है जो मानव जाति के उद्‌भव काल से ही उसे उपासना के लिए प्रेरित करती रही है।

प्रतीक

पिछले कई दशकों में पुरातत्त्वविदों ने ऐसे प्रचुर प्रमाण एकत्र किये हैं जिनसे यह ज्ञात होता है कि हमारे प्रस्तर युगीन पूर्वजों के जीवन में 'माता' के रूप में 'देवी' की उपासना का महत्त्वपूर्ण स्थान था—भारत, अफ्रीका तथा विश्व के अन्य भागों में यह अब भी प्रचलित है। इसका आभास न केवल गुफा चित्रों से होता है, बल्कि पत्थर, हड्डी, मृगशृंग, यहाँ तक कि हाथी के विशाल दाँतों पर भी असंख्य छोटी-बड़ी मूर्तियाँ उत्कीर्ण हैं। इनमें से कुछ तो 25,000 वर्ष पुरानी हैं। इसी प्रकार की पुरुष मूर्तियों की संख्या स्त्री-मूर्तियों की अपेक्षा बहुत कम है, लगभग एक/दस के अनुपात में। यद्यपि उन छोटी मूर्तियों में नग्न स्त्रियाँ चित्रित हैं, किन्तु उनमें कामुकता नहीं है और न ही वे मात्र कलाकृतियाँ हैं। अनेक कारणों से मानवशास्त्रियों ने यह मान लिया है कि वे जादुई या धार्मिक परम्परा का अंग हैं। उनमें से अधिकांश अत्यन्त प्रतीकात्मक शैली में उत्कीर्ण हैं, जैसे स्तनों, नितम्बों तथा जननेन्द्रियों को विशेष रूप से प्रदर्शित किया गया है जो देवी, परम सृष्टा की असीम उर्वरता को दर्शाने का प्रयत्न करते हैं।

यह परम्परा न केवल आदिम जातियों के साथ पनपी, बल्कि ऐसा प्रतीत होता है कि यह प्रथा सार्वभौमिक रूप से प्रचलित भी थी। देवी की प्रतिमाएँ स्पेन, फ्राँस, जर्मनी, ऑस्ट्रिया, चेकोस्लोवाकिया और रूस से प्राप्त हुई हैं; तुर्की के निकट पूर्व में, टिग्रिस तथा यूफ्रेटीस नदियों के किनारे, मिस्र में और विशेष रूप से भारत में भी पाई गई हैं। विश्व के दूसरी ओर, ऑस्ट्रिया की आदिम जातियों ने अपने प्रस्तर युग के पूर्वजों की संस्कृति को अपरिवर्तित

रूप में ही हस्तगत किया है जिसमें स्वप्नकाल की इष्ट स्त्री ही थी। कुछ अन्य आदिम जातियों के समान वे भी जैविक पिता या संभोग तथा गर्भधारण के बीच के अनिवार्य सम्बन्ध की अवधारणा से अनभिज्ञ थे। स्त्री का जीवन-दात्री के रूप में सम्मान किया जाता था तथा जीवन धारण करने में पुरुष की भूमिका नहीं मानी जाती थीं। अत: स्त्री पूर्ण शक्तिमती थी, केवल उसी को यह सामर्थ्य प्राप्त था कि जगत् में नव-जीवन को प्रस्फुटित कर सके। बाइबिल प्रदेश के नाम से ज्ञात यहूदियों के क्षेत्र में कांस्य युग (लगभग 1500 – 1300 ई. पू.) की उपलब्ध सबसे पारम्परिक वस्तुएँ हैं, वे पट्टियाँ जिन पर देवी अस्तार्ती अंकित हैं। उसी प्रकार की वस्तुएँ बाइबिल काल से भी प्राप्त हुई हैं।

अनेक देशों में देवी की उपासना प्रचलित थी और वहाँ उनके अलग-अलग नाम थे। मिस्र में वह इसिस थी, सुमेरिया में नाना, बेबीलोन में इश्तार, असीरिया में ऐश्तोरह या अस्तार्ती, ग्रीस में ऐफ्रोडाइट, रोम में वीनस थी। चीन के ताओवाद ने उसे तेह के रूप में प्रकट किया और भारत की तान्त्रिक परम्परा में वह शक्ति या देवी हैं। कोई भी नाम रहा हो, किन्तु इन सभी क्षेत्रों के लोगों ने परमात्मा की उपासना 'माता' के रूप में की।

हमें महादेवी की उपासना को केवल मानव-जाति के विकास के प्रारम्भिक काल से सम्बद्ध करने की भूल नहीं करनी चाहिए। भूमध्य सागर के नदी क्षेत्र, निकट तथा मध्यपूर्व एवं भारत, वस्तुत: 'सभ्यता का पालना' माने जाने वाले सभी क्षेत्र देवी के प्रभाव केन्द्र थे। यही वह क्षेत्र था जहाँ मानवों ने सामान्य शिकार से आगे बढ़कर पशु-पालन एवं कृषि को अपनाया, यहीं पर लेखन कला का विकास हुआ और यह सब महादेवी के संरक्षण में हुआ।

इस क्षेत्र की शहरी सभ्यता में सुमेरिया बेबीलोन का पूर्ववर्ती प्रदेश था। ईसा के 3,000 वर्ष पूर्व वहाँ देवी के मन्दिर होने के प्रमाण मिले हैं जिसकी देखभाल नियमत: पुजारिनें ही करती थीं। वह मन्दिर उस प्रारम्भिक सभ्यता का मुख्य केन्द्र था। ऐसा प्रतीत होता है कि भूमि, पशु और अधिकांश भौतिक सम्पदा इसके अधीन थी। सुमेरिया के लोग मिट्टी की पट्टिकाओं के आविष्कार एवं लेखन कला का श्रेय देवी को देते हैं। लेखन के आदिकालीन प्रमाण सुमेरिया के एरिख में स्वर्ग की रानी के मन्दिर में प्राप्त हुए थे। प्रागैतिहासिक काल की सर्वाधिक उन्नत सभ्यता क्रीट पर बसी हुई थी – गिनोअन सभ्यता, भौतिक रूप से (बन्द स्नानगृह और फ्लश शौचालय) तथा सांस्कृतिक रूप से (बाद में ग्रीक सभ्यता के विकास पर प्रभाव डालते हुए) भी उन्नत थी। मिनोअनों

द्वारा उपासित देवी क्षीण कटि और अनावृत स्तनों पर सर्पों से सुसज्जित स्त्री थी। मिस्री सभ्यता के उत्कर्ष पर भी किसी को सन्देह नहीं होगा जहाँ यह माना जाता था कि देवी का अस्तित्व तब भी था, जब कोई सृष्टि नहीं हुई थी। देवी ने ही 'रा', सूर्य देव को आकाश में अधिष्ठापित किया जो फरोआ लोगों के इष्टदेव थे। जिन समुदायों ने परम स्रष्टा के रूप में महादेवी की उपासना की उनके बीच सभ्यता पनपी और विकसित हुई।

देवी से सम्बन्धित मिथक और अनुष्ठान समग्र अचेतन से उद्भूत हुए। वे सम्पूर्ण मानव जाति के उस सहज बोध को प्रतिबिम्बित करते हैं जिसका सम्बन्ध सृष्टि-स्रोत एवं ब्रह्माण्ड में क्रियाशील शक्तियों से होता है। शास्त्रों तथा अनुष्ठान प्रतीकों में सहज बोधों को स्पष्ट करने वाली चेतन अन्तर्दृष्टि प्राप्त होती है। प्रस्तर युग से चले आ रहे मिस्र, मध्य पूर्व और सुदूर चीन तथा अफ्रीका से पत्थर और मिट्टी की पट्टिकाओं पर असंख्य लिखित प्रमाण हमें प्राप्त हुए हैं। ये देवी की असीम शक्ति को प्रमाणित करते हैं जिसे विश्व की सृजनात्मक शक्ति का अति मानव प्रतिरूप माना जाता था।

मिस्र के थेबीस से प्राप्त (लगभग 1,400 वर्ष ई.पू.) एक पट्टिका घोषित करती है – "प्रारम्भ में इसीस थी, प्राचीनतम से भी प्राचीन। उसी देवी से सभी जीवों की सृष्टि हुई। वह महान् स्त्री थी, मिस्र के दो भूखण्डों की स्वामिनी, आश्रयदात्री, स्वर्ग की साम्राज्ञी, जीवन गृह की संरक्षिका, दिव्य शब्द की वाचिका थी वह। वह विलक्षण थी। वे एक विदुषी जादूगर थीं और बुद्धिमान् तथा किसी भी इष्ट देवी से अति श्रेष्ठ थीं।"

बेबीलोन वासियों (1800 – 700 ई. पू.) के लिए इश्तार ऐसी थीं, "जो प्रलय में प्रवेश कर प्रेम नियमों के द्वारा जीवन और सामंजस्य लेकर आईं।"

भारत में देवी की उपासना के लिए दुर्गाशतनामस्तोत्र के श्लोक प्रचलित हैं।

देवी के दृश्य प्रतीक उनकी बहुआयामी सृजनात्मक शक्ति के सुन्दर प्रमाण हैं। पूर्वी देश में प्राप्त हुए गोलाकार स्वर्ण फलक पर एक सुन्दर स्त्री का चित्र अंकित है जो हाथों में कमल का फूल लिए हुए हैं। फिनीसिया, मिस्र और भारत में कमल प्राकृतिक जीवन शक्ति का प्रतीक है। यह कांस्य युग की उन पट्टिकाओं के समान है जिनमें नग्न अस्तार्ती को कुमुदिनी पुष्प के साथ या किसी-किसी में सर्प के साथ अंकित किया गया है। विलेनडॉर्फ की वीनस विशाल गर्भयुक्त उदर और उभरे हुए स्तनों वाली स्त्री की मूर्ति

है। पूरे यूरोप में वीनस की इसी प्रकार की छोटी मूर्तियाँ देखने को मिलती हैं। वीनस की इन मूर्तियों को सृजनात्मकता का प्रतिरूप माना जा सकता है। इफेसस की डायना जो हीथन की देवी थी और जिन्हें सेन्ट पॉल्स ने अपने धर्मपत्र से बहिष्कृत कर दिया था, एक हजार स्तनों वाली विलासिताप्रिय स्त्री के रूप में चित्रित है। इसका यह रूप ममता और प्रचुरता का प्रतीक है। महादेवी के ये सभी रूप धरित्री (पृथ्वी) के ही विभिन्न रूप को व्यक्त करते हैं, जो जन्म देते हैं और फिर उन सभी का भरण-पोषण करते हैं। दिमितर एवं इसिस के समान सभी प्रकृति माताओं में इस प्रकार की शक्ति है। यह शंख के समान आनन्द कुन्तल, अक्षय पात्र का प्रतिरूप है।

क्रमिक-विकास की शक्ति

यह सृष्टि न तो सरल है और न ही अपरिवर्तनीय। प्रत्येक प्रतिबिम्ब अपरिवर्तित होकर अन्ततः कुछ नया उद्घाटित करता है। महादेवी में स्थित सहज बोध भी इतने सरल नहीं जो सुकोमल रमणीय प्रतीत होने वाले इष्टों के समतुल्य हों। देवी की प्रलय और विलय की क्षमता से युक्त सृष्टि की विनाशक शक्ति को पहचान कर मनुष्य मृत्यु-स्वामिनी के रूप में भी उनकी उपासना करता है। उसका यह पक्ष उसके भयानक और वीभत्स रूप को चित्रित करता है। इसमें उसकी जिह्वा प्रायः बाहर निकली हुई होती है। मेडुसा ऐसी ही थी। यदि कोई व्यक्ति सीधे उसकी आँखों में देखने का दुस्साहस करता तो वह उसे पत्थर बना देती। उसकी एकाग्रता की विस्मयकारी शक्ति को सर्प समान केश-विन्यास में प्रतिरूपित किया गया था। वह मेक्सिको के कोटलिक्यू से युद्ध करती है, जो लपलपाते-छटपटाते हुए सर्पों का घाघरा पहन कर मारने के लिए तैयार है। अन्य मृत्यु देवियाँ लिलिथ एवं हेकेट हैं जो दुष्ट मायाविनियों का मूर्त्त रूप हैं और जिनकी रुचि सामान्य जादूगरी में नहीं, बल्कि वशीकरण में है।

न तो प्रकृति को और न ही परमसत्ता को श्याम या श्वेत रूप में वर्गीकृत किया जा सकता है, किन्तु शक्ति के विभिन्न आयामों को देवियों का मूर्त्त रूप दिया गया है। पूर्वी देश में प्राप्त पत्थर पर बनी एक भू-आकृति में चार भुजाओं वाली एक स्त्री को बाघ पर बैठे हुए अंकित किया गया है, जो हमारी हीन प्रकृति की उग्र भावनाओं पर नियंत्रण को व्यक्त करती है। इस छवि का भारत की दुर्गा से निकट साम्य है जिनकी चार भुजाएँ हैं, जो रक्त वसना हैं और सिंह की सवारी करती हैं।

इन प्रमाणों से यह संकेत मिलता है कि देवी केवल सृजन से सन्तुष्ट नहीं थीं, बल्कि आध्यात्मिक विकास की शक्ति के रूप में भी सक्रिय थीं। इनकी संपुष्टि अन्य इष्टों, जैसे आर्तेमिस, दायोतिमा एवं सोफिया के अनुष्ठानों से भी होती है जो ज्ञान की संरक्षिका एवं मूर्त रूप थीं। ग्रीस में सभी गायक, नर्तक और कवि म्यूज का आह्वान करते थे। भारत में सरस्वती सभी ललित कलाओं, भौतिक तथा आध्यात्मिक विद्या एवं ज्ञान की अधिष्ठात्री देवी हैं। इन देवियों का सम्बन्ध धरित्री माता के समान केवल घर के चूल्हे-चौके से नहीं होता, बल्कि व्यापक क्षेत्रों से होता है। ये उन शक्तियों का प्रतिनिधित्व करती हैं जो मानसिक एवं आध्यात्मिक जीवन को तब तक उत्प्रेरित करती रहती हैं जब तक परमानन्द की स्थिति नहीं आ जाती। इसे प्राय: नृत्य भंगिमा के रूप में चित्रित किया जाता है। सभी कुमारी माताएँ (यीशू की माता मेरी भी) इस शक्ति का मूर्त्त रूप हैं। 'कुमारी' अर्थात् अप्रतिबन्धिता, मुक्ता, जिसका अभिप्राय है कि इनका कार्य सन्तान को धरती पर लाना नहीं, बल्कि मनुष्यों को आनन्दातिरेक की स्थिति में पहुँचाना है।

देवी का सामर्थ्य सरलीकरण की अवज्ञा करता है और इसमें विस्मय की बात भी नहीं है कि अत्यन्त प्रबल अभिव्यक्तियाँ विभेदों से परे होती हैं। तन्त्र की काली इसका उदाहरण हैं; वे एक साथ सृजन, विनाश और विकास की शक्तियों को नियन्त्रित करती हैं। श्री रामकृष्ण की इष्ट माँ काली विलासप्रिय स्त्री हैं जो रात्रि के समान श्याम हैं, उनके गले में नरमुण्डों की माला और कमर में कटे हुए हाथों की मेखला है। उनके दोनों बाएँ हाथों में से ऊपर वाला मारक मुद्रा में तलवार के साथ उठा हुआ है जबकि दूसरे हाथ में राक्षस का कटा हुआ सिर झूल रहा है। दोनों दाहिने हाथों में से एक वरमुद्रा में तथा दूसरा अभय मुद्रा में उठा हुआ है। जब वे काल के शव पर तल्लीन होकर नृत्य करती हैं तो उनका अट्टहास प्रचण्ड होता है और रक्तपूरित मुख से उन्मत्त जिह्वा लटकती है।

काली एक साथ विश्व की सृजक, पालक और विनाशक हैं। अनन्त सृजन के नृत्य के असीम आनन्द में वे काल को पैरों तले कुचलती जाती हैं। वे राक्षस रूपी हमारी निम्न प्रवृत्तियों का नाश करती हैं और अपने भक्तों को आध्यात्मिक अज्ञान से सुरक्षित रखती हैं। वे सबकी रक्षा करती हैं जो उनकी शरण में आते हैं, उन सबकी आकांक्षाएँ पूरी करती हैं और उन्हें परम आनन्द एवं मोक्ष का आशीर्वाद देती हैं। काली में महादेवी के सारे गुण

समाहित हैं– जीवन दान, मृत्यु से मुक्ति तथा दोनों से परे आनन्द की अनुभूति प्रदान करना। इन सबमें विस्मयकारी बात यह है कि शक्ति के सभी आयाम सृष्टि की रचना करते हैं।

तन्त्र में शक्ति (शक् धातु) को उसके विशिष्ट कार्यों के अनुसार विभिन्न रूप और नाम दिये गये हैं। शक्ति का सृजनात्मक आवेग चेतना की प्रेरणा के प्रतिक्रिया स्वरूप सृष्टि रचना करता है। शक्ति और चेतना अर्थात् शक्ति और शिव की क्रीड़ा का परिणाम है। शनैः-शनैः विज्ञान में विश्व के अन्तर्ग्रथित ऊर्जा-क्षेत्र के उद्भव स्थान के स्वरूप की मान्यता में वृद्धि हो रही है। यही शक्ति है तो सब कुछ है। महानिर्वाण तन्त्र में जीव शक्ति को सम्बोधित करते हुए कहते हैं– "आप उस ब्रह्म की परम अभिव्यक्ति हैं, परम चेतना है और आप से ही सम्पूर्ण सृष्टि उत्पन्न हुई है। आप इसकी माता हैं। आप सभी अभिव्यक्तियों का स्त्रोत हैं। आप प्रत्येक रूप में हैं। आपका मूल ब्रह्म में है, और जो निष्क्रिय है। उसकी इच्छा से आप गतिमान होती हैं, इस विश्व की प्रत्येक चल और अचल वस्तुओं का सृजन, पालन और विलय आप ही करती हैं। इसलिए आपकी उपासना के द्वारा आपके भक्त अवश्य ही ब्रह्म तक पहुँच पायेंगे।"

शक्ति द्वैत प्रकृति की होती है। यह शक्ति की ही माया है जो हमें सांसारिक अनुभवों और भ्रान्तियों से आच्छादित कर देती है। फिर भी यह कुण्डलिनी शक्ति की व्यक्तिगत अनुभूति हमें प्रबुद्ध करती है, ज्ञान की ओर ले जाती है। तन्त्र के अनुसार ब्रह्म एक है, किन्तु शिव (पुरुष) चेतना के रूप में एवं शक्ति (स्त्री) ऊर्जा के रूप में प्रकट होती है। फिर भी तन्त्र शक्ति देवी के अनुष्ठानों पर बल देता है, क्योंकि ये योग साधना में शक्तियों को जाग्रत कर उन्हें समेकित करने के व्यावहारिक साधन हैं तथा चेतना की व्यापकता की ऊँचाइयों तक हमें ले जाने के लिए अनिवार्य हैं।

पुनरुत्थान

भारत में देवी माँ की उपासना अब भी जीवन्त रूप में प्रचलित है। शक्ति का काली रूप सर्वाधिक लोकप्रिय है। विश्व के अन्य क्षेत्रों में देवी की उपासना में जो ह्रास हुआ है उससे अनुष्ठानगत अनुभूतियों एवं साधना की महत्ता में कोई कमी नहीं आई है। इससे मानव जाति के अन्तर्गत शक्ति-सामर्थ्य के सन्तुलन में परिवर्तन परिलक्षित होता है, न कि ब्रह्माण्ड की शक्ति का

पुनर्संगठन हुआ प्रतीत होता है। ईसा के 3,000 वर्ष पूर्व उत्तर से होने वाले आक्रमणों के साथ परिवर्तन-क्रम प्रारम्भ हुआ। आक्रमणों का उत्तरोत्तर क्रम लगातार कम-से-कम एक हजार वर्षों तक चलता रहा, शायद तीन हजार वर्षों तक।

उन नये लोगों को विभिन्न नामों से जाना जाता है, इन्डो-यूरोपियन, इन्डो-ईरानियन या केवल आर्य। उनके मूल के विषय में मतभेद है, किन्तु सम्भवत: वे उत्तरी यूरोप के प्रस्तरयुगीन समुदायों के वंशज थे। आर्य पशुपालन का काम करते थे और उनके इष्ट आकाश-देवता (पुरुष) थे, जबकि देवी के उपासक सामान्यत: कृषक समुदायों के लोग थे। आर्यों के इष्ट पशु बलि (कभी मनुष्य) के बदले उनके पशुओं के चारे के लिए वर्षा करते थे। ये समुदाय पितृ सत्तात्मक थे और युद्ध करना इनका व्यवसाय था जिसके कारण इन्हें 'युद्ध कुठार संस्कृति' के नाम से भी जाना जाता है। हर आक्रमण में उनकी जीत होती थी और वे शासन करते थे, इन्द्र देव और अग्नि देव को अपने साथ रखते थे।

आर्य दूर पश्चिमी भारत के पंजाब तक आये जहाँ उनका सामना यहाँ के द्रविड़ों से हुआ जिनकी उन्नत संस्कृति कैल्डिया के समान थी। द्रविड़ों ने पशु-बलि और मांसाहार त्याग दिया था। वे प्राकृतिक शक्तियों के रूप में शिवलिंग एवं काली और दुर्गा की उपासना करते थे। द्रविड़ संस्कृति मूलत: तान्त्रिक संस्कृति थी। आर्यों के साथ संस्कृति का जो तत्त्व आया वह बाद में हिन्दू संस्कृति के रूप में विकसित हुआ–संस्कृत, वर्ण-व्यवस्था एवं इन्द्र के नेतृत्व में पुरुष देवता-गण। चूँकि आर्य अनेक देवताओं की पूजा करते थे, इसलिए वे द्रविड़ों की देवी-देवताओं के प्रति सहनशील थे और इस प्रकार देवी की उपासना चलती रही, जबकि आर्यों के प्रभाव से दूर बिहार, बंगाल, उड़ीसा और आसाम देवी की उपासना के गढ़ थे और आज भी हैं। इलियूसिया और पश्चिमी संस्कृति में जो गूढ़ रहस्य लुप्त हो गये थे उन सबको भारत के तान्त्रिकों ने विशुद्ध और पूर्ण रूप में सुरक्षित रखा तथा गुरु-शिष्य परम्परा के माध्यम से उस ज्ञान को उत्साहपूर्वक हजारों वर्षों तक हस्तांतरित करते रहे। ईसा के लगभग 500 वर्षों के बाद मौखिक ज्ञान के साथ लिखित शास्त्र भी जुड़ने लगे और आज दोनों का समन्वय तन्त्र योग के पुनरुत्थान का साधन बन गया है।

एक प्रेरणा

सैंकड़ों वर्षों की सुषुप्ति के पश्चात्, महामाता मानव चेतना में पुन: जाग्रत हो उठी है। देवी का प्रतीक एक आधुनिक स्त्री के लिए अत्यन्त प्रभावकारी होता है, क्योंकि वह विस्मृत आदि शक्ति का पुनर्गठन कर स्त्री की अन्तर्तम क्षमताओं के साथ एकीकृत कर उसे क्रियाशील बनाता है। आज की स्त्री में इतनी क्षमता होनी चाहिए कि वह अपने विकास में बाधक बनने वाली अप्रासंगिक और अनुपयुक्त धारणाओं को नष्ट कर सके। अपने आन्तरिक प्रकाश का पोषण करते हुए उसे दूसरों की उपेक्षा भी नहीं करनी चाहिए, तथा उसे अपने वर्तमान जीवन की सभी अच्छी बातों को सावधानीपूर्वक सुरक्षित रखना चाहिए। ऐसी स्त्री स्वयं को नयी अनुभूतियों के प्रति सजग रखती है जिससे वह जीवन में नूतनता और आनन्द लाने में सक्षम होती है। इस प्रकार प्रत्येक स्त्री अपनी सुषुप्त शक्ति को जाग्रत कर अपनी हीन प्रकृति के शव पर परम आनन्द का नृत्य कर सकती है।

कुछ विशेष प्रयुक्तियाँ

पीठ दर्द

प्रत्येक वर्ष अमेरिका में पुराने पीड़ितों के अतिरिक्त बीस लाख से अधिक व्यक्ति पीठ के दर्द से पीड़ित होते हैं। विश्व स्तर पर चिकित्सकों का यह अनुमान है कि हममें से तीस प्रतिशत व्यक्ति कभी-न-कभी पीठ दर्द से पीड़ित होंगे और यह कष्ट आम सर्दी की तरह आम हो जायेगा।

मेरुदण्ड की हड्डियों में होने वाली विशेष बीमारियाँ जैसे यक्ष्मा, कैंसर और ऑस्टियो मायलाइटिस शायद ही पीठ दर्द का कारण बनती हैं। स्लिप-डिस्क, अस्थि भंग और अस्थिभ्रंश को भी पीठ दर्द का मुख्य कारण नहीं माना जा सकता। मेरुदण्ड में दर्द के इतने सामान्य कारण होते हैं जिन्हें योग के अभ्यासों के द्वारा सफलतापूर्वक दूर किया जा सकता है।

विभिन्न प्रकार के दर्द

पीठ दर्द ऐसा शब्द है जिसका प्रयोग हम पीठ की विभिन्न प्रकार की समस्याओं के लिए करते हैं, किन्तु उनमें से प्रत्येक को अलग-अलग समझने और उन पर ध्यान देने की आवश्यकता है।

प्रोलैप्स डिस्क सामान्यत: 'स्लिप डिस्क' के नाम से जाना जाता है। इसमें दो मेरुदण्डीय अस्थियों के बीच स्थित तन्तुमय (रेशेदार) पैड (गद्दी) फट जाता है जिसका जेली जैसा पदार्थ बाहर निकल कर मेरुदण्ड की तरफ आ जाता है और मेरुदण्ड के स्नायुओं पर दबाव डालने लगता है। इसके परिणामस्वरूप होने वाले दर्द का अनुभव कमर या पीठ के निचले हिस्से में हो सकता है, टीस उठ सकती है या पैर झुनझुनी के साथ सुन्न हो सकते हैं। गहरी श्वास लेने पर दर्द बढ़ता है।

सायटिका (गृध्रसी) भी नितम्ब या पैर के पिछले भाग में होने वाली भयंकर टीस है जो स्लिप डिस्क द्वारा सायटिका स्नायु पर पड़ रहे दबाव के कारण उठती है। यह दर्द निरन्तर होता है, किन्तु खड़े रहने पर, चलने पर या कुछ उठाने पर बढ़ जाता है।

स्पाण्डिलाइटिस में कशेरुका (वरटेब्रल) की सूजन मेरुदण्ड से निकलने वाले स्नायुओं को दबाती है। कभी-कभी निचली कशेरुका का खिसक जाना या अतिरिक्त अस्थि का बढ़ जाना भी स्नायुओं पर दबाव डालता है। गले के स्पॉण्डिलाइटिस में विशेषत: गले और कंधों में दर्द होता है जो कभी-कभी भुजाओं तक चला जाता है।

पीठ के ऊपरी भाग का दर्द गहरे श्वसन में बढ़ जाता है और पीठ घुमाने पर भी दर्द हो सकता है। लम्बर स्पॉण्डिलाइटिस पीठ के निचले भाग को प्रभावित करता है। ऐंकिलोजिंग स्पॉण्डिलाइटिस में कशेरुकाओं के बीच के स्थानों पर अनावश्यक बढ़त हो जाती है, जिससे सभी कशेरुकाएँ एक साथ जुड़ जाती हैं और मेरुदण्ड अपने लचीलेपन से वंचित हो जाता है। मेरुदण्ड की इस अनम्यता को कभी-कभी 'बैम्बू स्पाइन' या 'पोकर स्पाइन' भी कहते हैं।

पीठ के निचले भाग का दर्द

यह अत्यन्त ही आम प्रकार का दर्द है जो किसी विशेष अंग की बीमारी से सम्बद्ध नहीं होता है, जैसे, स्लिप डिस्क, गठिया, संधिशोथ, अर्बुद (ट्यूमर) या यक्ष्मा। हाल के अध्ययनों से यह पता चला है कि इन बीमारियों के साथ यदि अस्थि भंग या संधि भ्रंश के बाद का दर्द हो तो बीस प्रतिशत लोगों में ही ये पीठ दर्द का कारण होते हैं। पाँच में से चार के पीठ दर्द का कारण मात्र दुर्बल और अनम्य मांसपेशियाँ एवं नसें होती हैं। सौभाग्य से योग के उपयुक्त कार्यक्रम के द्वारा इन समस्याओं का निदान किया जा सकता है।

कारण

दोषपूर्ण भंगिमा, दोषपूर्ण बैठने के ढंग ही अधिकतर पीठ के निचले हिस्से के दर्द का कारण होते हैं। दुर्बल मांसपेशियों, व्यायाम का अभाव और निष्क्रिय जीवन-शैली के कारण हमारा बैठना, खड़ा रहना, सोना या झुकना सही ढंग से नहीं हो पाता। बैठने का गलत ढंग अपने आप में दर्द का पर्याप्त कारण

है जो अर्द्ध-चन्द्राकार पैरों जैसी समस्याओं से और ऊँची एड़ी के जूतों से अधिक बढ़ जाता है। भंगिमा दोष के कारण शरीर में अचानक झटका लगने पर मांसपेशियों में मोच आ सकती है या कुछ उठाते, झुकते या गाड़ी चलाते समय खिंचाव आ सकता है।

संप्रेषित दर्द का कारण पीठ या मेरुदण्ड में नहीं, बल्कि उदर या प्रजनन अंगों में होता है। कब्जियत या वायु विकार भी पीठ में हल्का-हल्का दर्द उत्पन्न कर देते हैं या हो रहे दर्द को बढ़ा देते हैं। स्त्रियों में पश्चनत (retroverted) या भ्रंश गर्भाशय भी पीठ दर्द का कारण होता है।

श्रोणि प्रदेश (पेल्विस) में आँत या किसी अन्य प्रकार के संदूषण से उत्पन्न संकुलन होने पर भी पीठ दर्द हो सकता है। स्त्रियों में योनि या मूत्राशय का संदूषण भी पीठ दर्द से सम्बद्ध हो सकता है। प्रजनन तन्त्र का संकुलन हॉर्मोन के असन्तुलन से सम्बद्ध होता है जिससे स्त्रियों को ऋतुस्राव के पूर्व पीठ दर्द का अनुभव होता है। योग के आसनों द्वारा इस पीड़ा से मुक्त हुआ जा सकता है और अन्ततः हॉर्मोनों में भी सन्तुलन स्थापित किया जा सकता है।

उदरीय मांसपेशियों की दुर्बलता भी पीठ दर्द का कारण होती है। स्त्रियों के लिए यह तथ्य विशेष रूप से सत्य है। संरचनात्मक रूप से ही उनकी उदरीय मांसपेशियाँ दुर्बल होती हैं और गर्भावस्था के उपरान्त प्रायः उनका गठीलापन एवं शक्ति समाप्त हो जाती है।

उदर में कोई हड्डी नहीं होती है। उदर में स्थित सभी अवयव विभिन्न मांसपेशियों के सहारे अपने स्थानों पर स्थिर रहते हैं और ये मांसपेशियाँ मेरुदण्ड पर आश्रित होती हैं। कटि प्रदेश की कशेरुकाएँ एवं श्रोणि (पेल्विस) का पीछे से ठोस और उदरीय मांसपेशियों का आगे से लचीला सहारा होता है। यदि उदरीय मांसपेशियाँ दुर्बल होकर ढीली हो जाती हैं तो उनसे लगे आन्तरिक अवयव आगे की ओर झूल जाते हैं जिससे पीछे की कशेरुकाओं पर खिंचाव पड़ता है। जहाँ अधिक वजन या पाचन समस्या के कारण उदर फूला हुआ रहता है वहीं पीठ की मांसपेशियाँ प्रतिकरण करती हैं। जब उदरीय मांसपेशियाँ दुर्बल हो जाती हैं तो हमारे आसन और भंगिमा में भी परिवर्तन आ जाता है तथा सारा भार पीठ पर पड़ने लगता है। विशेषकर स्त्रियों की उदरीय मांसपेशियों को सबल और दृढ़ बनाकर उनके पीठ दर्द को अधिकांशतः दूर किया जा सकता है, और इसके लिए प्रायः इतने भर की ही आवश्यकता है।

भावनात्मक कारण

अनवरत या अत्यधिक भावनात्मक तनाव शरीर के अंगों को प्रभावित करता है। यदि पीठ ही आपका दुर्बलतम अंग है तो भावनात्मक तनाव चिरकालिक मांसपेशीय तनाव और पीठ के निचले हिस्से के दर्द का रूप ले लेगा। बोलचाल की भाषा में 'कॉसिक्स' को पुच्छ अस्थि (टेलबोन) कहते हैं। इसका तात्पर्य यह हुआ कि यह मात्र अन्तिम हड्डी नहीं है; यदि हमें एक पूँछ होती तो यह उसे आधार प्रदान करती। यदि मनुष्य को कभी पूँछ रही होगी तो कॉसिक्स उसका अवशेष है।

निम्न प्राणियों में पूँछ का उपयोग कीड़े-मकोड़ों को भगाने के लिए, सन्तुलन बनाए रखने के लिए एवं क्रोध और भय जैसी भावनाओं को व्यक्त करने के लिए किया जाता है। किन्तु मनुष्य अपनी पूँछ से मुक्त हो चुका है, क्योंकि अपनी भावनाओं को व्यक्त करने के लिए उसमें बेहतर साधनों का विकास हो चुका है। फिर भी सभी संस्कृतियों में अपरिष्कृत, किन्तु अभिव्यक्तिपूर्ण कृत्य और कहावत हैं जो भले ही अचेतन रूप में हों, नकारात्मक भावनाओं एवं शरीर के इस अंग के बीच के सहज सम्बन्ध को प्रतिबिम्बित करते हैं।

जब हम कुण्ठा, असन्तोष, वासनात्मक एवं भावनात्मक तनावों से ग्रस्त रहते हैं तो यह प्राचीन कड़ी उत्तेजित हो जाती है और वह तनाव पीठ की मांसपेशियों में अकड़न और दर्द का रूप ले लेता है।

तीव्र और चिरकालिक (पुराना) दर्द

तीव्र पीठ दर्द ऐसा तीक्ष्ण और अचानक होने वाला दर्द है जो शरीर की प्रत्येक गति के साथ बढ़ जाता है या गति को पूर्णत: अवरुद्ध कर देता है। तीव्र पीठ दर्द होने पर तत्काल आराम की आवश्यकता होती है। कड़े गद्दे पर पेट के बल लेटने का परामर्श दिया जाता है (मकरासन या अद्वासन में)। बाद में मालिश, उष्ण-शीत दाब एवं योगनिद्रा के द्वारा शिथिलन भी दर्द को कम करता है। जब तीव्र दर्द कम हो जाये तो किसी योग्य पेशेवर व्यक्ति से परामर्श लेकर सरल योगासनों के अभ्यास का कार्यक्रम आरम्भ करना चाहिए।

स्लिप-डिस्क प्राय: तीव्र और गतिहीन कर देने वाले दर्द के रूप में उभरता है, पहले तो इसका प्रभाव तीक्ष्ण और एक ही स्थान पर स्थिर रहता है, किन्तु बाद में जब सूजन बढ़ जाती है तो यह दर्द स्थायी हो जाता है। कशेरुकाओं के बीच की तन्तुमय गद्दी के फटने से निकला हुआ जेलीनुमा

पदार्थ जब सायटिक स्नायुओं को दबाने लगता है तो तीव्र सायटिका के कारण हम खड़ा होने या चलने में असक्षम हो जाते हैं। सायटिका की तीव्रता कम होते हुए भी यह चिरकालिक हो जाती है और हर सुबह उठने पर दर्द उठने लगता है।

चिरकालिक पीठ दर्द की तीव्रता कम होती है, किन्तु यह वर्षों तक कष्ट का कारण बना रहता है। पीठ के निचले भाग का दर्द अधिकतर इसी श्रेणी में आता है जो शारीरिक या भावनात्मक कष्ट से प्रेरित होकर बीच-बीच में तीव्र दर्द के दौरे के रूप में उठ आता है।

दोनों ही स्थितियों में पूर्ण चिकित्सकीय जाँच होनी चाहिए, तत्पश्चात् एक अनुभवी योग उपचारक की देख-रेख में योग के अभ्यास आरम्भ किये जाने चाहिए।

उपचार

योग क्रमबद्ध अभ्यासों के द्वारा पीठ को सबल बनाकर दर्द से छुटकारा दिलाने में मदद करता है और तनाव के शारीरिक रूप में प्रकट होने के पूर्व ही उससे मुक्ति दिलाने का साधन प्रदान करता है। इस तरह की समस्याओं के लिए आसन ही यौगिक उपचार के मुख्य आधार हैं, जो मेरुदण्ड के दोनों ओर की मांसपेशियों को मजबूत बनाते हैं, उनका शिथिलन करते हैं, साथ-ही मेरुदण्ड में स्थित चकतियों और अवलम्ब देने वाले अस्थिबन्धों को स्वस्थ रखते हैं। उपयुक्त आसनों के अभ्यास के द्वारा मेरुदण्ड का कड़ापन दूर कर उसे सही स्थिति में लाया जा सकता है। आसनों का अभ्यास कशेरुकाओं के बीच से निकलने वाले स्नायुओं को उन पर पड़ रहे दबाव से मुक्त कराता है। इससे मेरुदण्ड का लचीलापन बढ़ता है और उसमें पूर्ण गतिशीलता की क्षमता वापस आ जाती है। ढीली उदरीय मांसपेशियों को दृढ़ और सबल बनाने में भी आसनों का महत्त्वपूर्ण योगदान रहता है जिससे ये शरीर की भंगिमा को उचित स्थिति में और श्रोणि के अवलम्ब को बनाए रखने में सहायक होते हैं।

जहाँ पाचन समस्याओं के कारण पीठ दर्द बढ़ता हो वहाँ लघु शंखप्रक्षालन अत्यन्त सहायक होता है। यह कब्जियत (मलबन्ध) और वायु विकार को दूर करता है, आँतों को स्वस्थ बनाता है और संकुलता कम करता है। इस यौगिक क्रिया के क्रम में शरीर को ऐंठना और झुकाना पड़ता है, वह भी अपने आप में पीठ दर्द के लिए लाभप्रद होता है।

पीछे झुककर या मुड़कर किये जाने वाले आसन पीठ दर्द के लिए विशेष रूप से लाभदायक होते हैं। हॉर्मोनों को सन्तुलित करने और प्रजनन तन्त्र की संकुलता को दूर करने में भी इन आसनों का विशेष महत्त्व होता है। स्त्रियाँ पायेंगी कि योग की क्रियाओं एवं आसनों के सुनियोजित कार्यक्रम का नियमित रूप से पालन करने पर दोनों ही प्रकार की समस्यायें दूर हो जाती हैं।

योगनिद्रा

'आसन' पीठ दर्द से मुक्त करने में सक्षम तो हैं, पर साथ-ही यह प्रयास भी किया जाना चाहिए कि इस दर्द को बढ़ा देने वाले उन भावनात्मक तनावों के घनीभूत होने से बचा जाये। अत: यौगिक शिथिलन और ध्यान प्रत्येक साधना चर्या के अनिवार्य अंग हैं। ध्यान के ऐसे आसन, जिनमें बैठना आवश्यक होता है, प्रारम्भ में पीठ दर्द की स्थिति के लिए उपयुक्त नहीं होंगे। बैठने के आदर्श आसन सर्वाधिक सन्तुलित एवं वैज्ञानिक हैं, ये पीठ को अवलम्बित रखते हैं, किन्तु मांसपेशियाँ इतनी सबल नहीं होती हैं कि कुछ मिनट भी इन आसनों में बैठा जा सके। अत: योगनिद्रा ही पहला विकल्प है, क्योंकि इसे शवासन में लेटकर किया जाता है। जहाँ आवश्यक हो वहाँ गद्दे या तकिये का सहारा लिया जा सकता है। योगनिद्रा का अन्य लाभ यह भी है कि यह नये सीखने वालों के लिए उपयुक्त है, इसकी अवधि को समन्वित किया जा सकता है, और आहार एवं समय का थोड़ा ध्यान रखते हुए इसे भी वर्तमान दिनचर्या में स्थान दिया जा सकता है।

समय

यद्यपि सुबह में जागने पर शरीर में अधिक कड़ापन रहता है, फिर भी इस समय आसनों से अधिक लाभान्वित हुआ जा सकता है। सुबह के प्रारम्भिक कड़ेपन और अवांछित तनाव से बचने के लिए कुछ देर इधर-उधर घूमने के बाद स्नान कर अपना अभ्यास प्रारम्भ करना चाहिए। जो स्त्रियाँ घर में ही रहती हैं, वे दिन के भोजन के पूर्व आसनों का अभ्यास करना पसन्द करती हैं। दिन भर के कार्यों से हुई थकान को दूर करने के लिए शाम में कुछ देर अभ्यास किया जा सकता है। अनेक व्यक्तियों ने पाया है कि शाम में योगनिद्रा करने पर दिन की थकावट और तनाव दूर हो जाते हैं।

व्यापक महत्त्व

सभी योगासनों का प्रभाव मेरुदण्ड पर पड़ता है। निरन्तर कई घण्टों तक बैठने की स्थिति में मेरुदण्ड को सर्वाधिक आलम्ब एवं आराम देने के लिए सिद्धासन, पद्मासन एवं स्वस्तिकासन जैसे आदर्श आसनों का विकास किया गया है। योग ने अबाधित आध्यात्मिक जीवन के लिए स्वस्थ मेरुदण्ड को पूर्वापेक्षित स्थिति के रूप में सदा उस पर अत्यधिक बल दिया है।

मेरुदण्ड के दोनों बगल से ही इडा एवं पिंगला नाड़ियाँ, हमारी चेतना एवं प्राण की वाहिनियाँ प्रवाहित होती हैं। मेरुदण्ड की सूक्ष्म नलिकाओं में भी किसी प्रकार का अवरोध नहीं होना चाहिए, क्योंकि उन्हीं के बीच स्थित सुषुम्ना नाड़ी से होकर कुण्डलिनी प्रवाहित होती है जो चक्रों को प्रदीप्त करती है। अत: पीठ और मेरुदण्ड की समस्याओं के समाप्त हो जाने पर उन अभ्यासों को मात्र उपचार समझ कर नहीं छोड़ देना चाहिए। पीठ दर्द वाले लोगों की साधना के लिए ये अभ्यास मूल तत्त्व हैं, किन्तु कोई भी साधक जो आध्यात्मिक प्रगति के लिए अपने शरीर रूपी यन्त्र को आदर्श स्थिति में रखना चाहता है, वह भी इन अभ्यासों के द्वारा लाभान्वित हो सकता है।

अभ्यास कार्यक्रम

पीठ के निचले भाग का दर्द

आसन – ताड़ासन (10), तिर्यक ताड़ासन (10), कटि चक्रासन(10), शवासन, पवनमुक्तासन (3/3/3), उत्तान वक्रासन (20), नौका संचालन (10/10), चक्की चलाना (10/10), अर्द्ध-भुजंगासन या भुजंगासन (7 – 21 श्वास), शलभासन (तीन बार श्वास रोककर), धनुरासन (7 – 10 श्वास), मकरासन (सामान्य शिथिलन के लिए)

अन्य – योगनिद्रा (तीस मिनट)

सामान्य कार्यक्रम (शाम के लिए या तुरंत आराम पाने के लिए)

आसन – तिर्यक ताड़ासन (10), कटि चक्रासन (10), झूलना-लुढ़कना (20 – 30), चक्की चलाना (10/10), उष्ट्रासन (7 – 10श्वास), मार्जारी आसन (15), शशांकासन (जितनी देर चाहें)

अन्य – योगनिद्रा।

स्लिप्ड डिस्क (प्रारम्भिक अवस्था)

आसन – उत्तान ताड़ासन (3/3/3), पवनमुक्तासन (3/3/3), कन्धरासन (केवल एक बार, सात श्वासों को रोककर), अर्द्ध-भुजंगासन (तीन बार, सात श्वासों को रोककर), अर्द्ध शलभासन (तीन बार प्रत्येक पैर से, जितनी देर सुविधापूर्वक रोक सकें), सरल धनुरासन (तीन बार, जितनी देर सुविधापूर्वक रोक सकें), मकरासन (सामान्य शिथिलीकरण के लिए), अद्वासन या मत्स्यक्रीड़ासन (सोने के लिए)।

सावधानियाँ – आगे झुककर किये जाने वाले आसन तथा पालथी मारकर बैठने वाले आसन न करें (इनके स्थान पर वज्रासन का प्रयोग करें)। कुछ महीनों के पश्चात् पीठ के निचले भाग के दर्द के लिए कार्यक्रम प्रारम्भ होते हैं।

सायटिका

आसन – प्रारम्भ में स्लिप डिस्क वाले आसन। तत्पश्चात् पीठ के निचले भाग के दर्द वाले आसनों में मार्जारी आसन के बाद व्याघ्रासन।

निषेध – पालथी मारकर बैठने वाले आसन (वज्रासन का प्रयोग करें) सर्वांगासन एवं हलासन तथा पश्चिमोत्तानासन जैसे आसन न करें।

सर्वाइकल स्पॉण्डिलाइटिस

आसन – स्कन्ध चक्रासन (10/10, शाम में पुन: करें), ग्रीवा संचालन (दस-दस बार, शाम में पुन: करें), ताड़ासन (10), कटि चक्रासन (10), उत्तान वक्रासन (20), उष्ट्रासन (सात श्वासों तक), मार्जारी आसन (पन्द्रह श्वासों तक), प्रणामासन (पचीस से पचास श्वासों तक)।

षट्कर्म – जल नेति क्रिया प्रतिदिन।

अन्य – योगनिद्रा (30 मिनट)।

विषाद

स्त्रियों को प्रभावित करने वाला सर्वाधिक घातक एवं दुर्बल कर देने वाला रोग है – विषाद या उदासी। अधिकतर स्त्रियाँ किसी-न-किसी रूप में विषादग्रस्त रहती हैं। यह एक मात्र ऐसी बीमारी है जिससे स्त्रियाँ अन्य बीमारियों की अपेक्षा अधिक पीड़ित रहती हैं। सम्पूर्ण विश्व के सामुदायिक निदानगृहों, गैर सरकारी मानसिक अस्पतालों और सरकारी अस्पतालों में स्त्रियों में जो रोग सबसे अधिक पाया जाता है, वह विषाद का ही एक रूप होता है। आँकड़ों से ज्ञात होता है कि जहाँ पुरुषों में आक्रामकता परिलक्षित होती है तथा मद्य या अन्य नशीले पदार्थों का व्यसन होता है, वहीं स्त्रियों के विषादयुक्त होने की सम्भावना रहती है।

लक्षण

यूँ तो निदानात्मक दृष्टि से विषाद शब्द का प्रयोग उसकी अतिरेकता की स्थिति में किया जाता है, किन्तु वस्तुत: विषाद की अनेक श्रेणियाँ और असंख्य रूप हैं। परेशान होते रहना, मोटापा और असामयिक वय वार्द्धक्य ऐसे तुच्छ प्रतीत होने वाले बाहरी संकेत हैं जो दु:ख को ही नहीं, बल्कि चिरकालिक चिड़चिड़ापन, घबराहट और अवसाद की सीमा तक थकान को भी इंगित करते हैं। विषाद सम्पूर्ण अस्तित्व के अन्दर होने वाली उथल-पुथल का परिणाम है, किन्तु स्त्रियाँ प्राय: इस तथ्य को मानना नहीं चाहतीं, क्योंकि उन्हें पागल कहे जाने का या उनकी समस्याओं को काल्पनिक कहकर टाल दिये जाने का भय होता है।

अपनी समस्याओं को गम्भीरतापूर्वक लिये जाने के लिए, अपने आन्तरिक तनाव को व्यक्त करने के लिए स्त्रियाँ अचेतन स्तर पर उन शारीरिक रोगों को

वास्तविक रूप दे देती हैं जिनका वस्तुत: कोई अस्तित्व नहीं था। और तब विषादयुक्त स्त्री को वैध रूप से मदद माँगने के लिए सिर दर्द, पीठ दर्द, चक्कर आना, हृदय गति का बढ़ना, हाथों का काँपना या उनमें पसीना आना, भूख मर जाना, गठिया, कब्जियत, अनिद्रा, दु:स्वप्न और कष्टपूर्ण ऋतुस्राव जैसे रोगों के लक्षणों का व्यापक आधार मिल जाता है।

यद्यपि इन रोगों से पीड़ित होने वाली स्त्री को वास्तविक कष्ट होता है, किन्तु चिकित्सक के लिए इनका शारीरिक कारण ढूँढ़ना कठिन हो जाता है। ऐसी स्थिति में दवाओं की लम्बी सूची भी प्रभावकारी नहीं हो पाती है। व्यस्त चिकित्सक इसे स्नायु की समस्या कहकर प्रशान्तिदायक दवा का एक घिसा-पिटा नुस्खा पकड़ा देते हैं और इसका लगातार सेवन करते रहने से शरीर और मन को इसकी लत पड़ जाती है।

विषादयुक्त स्त्रियाँ अत्यधिक भयभीत एवं चिन्ताग्रस्त रहती हैं। संकोच, कातरता, आत्मविश्वास का अभाव और हीन भावना भी इन्हें पीड़ित करती है। वे निरन्तर इतनी उद्विग्न रहती हैं कि एक छोटी-सी बात भी उन्हें भीषण संकट में डाल देती है। ऐसी स्थिति में स्त्रियाँ यह अनुभव करने लगती हैं कि समस्त जीवन ही उनके लिये भारी पड़ रहा है और तब वे आँखें भर कर स्वीकार करती हैं कि अब सहन नहीं होता। इसके साथ ही वे शक्ति चूस लेने वाले अपराध-बोध से घिर जाती हैं, क्योंकि वे यह समझती हैं कि वस्तुत: उनके जीवन की परिस्थितियाँ उतनी कठिन नहीं हैं। उन्हें अपनी तुच्छ उद्विग्नताओं के विषय में बताना भी हास्यास्पद लगता है जो बढ़ती ही जाती हैं और निरन्तर बनी रहती हैं। ये तुच्छ बातें जो उन स्त्रियों को पीड़ित करती रहती हैं, जब शब्दों में प्रकट की जाती हैं तो स्वयं उन्हें ओछी और मूर्खतापूर्ण प्रतीत होती हैं।

ऐसी मानसिक स्थिति का विशिष्ट लक्षण है आवश्यकता से अधिक थकान का होना। विषादग्रस्त स्त्री थकान के कारण अपने दैनिक कार्यों को भी पूरा कर पाने में स्वयं को असमर्थ पाती है, उसे लगता है कि अधिक आराम करने से अधिक थकान हो जाती है। वह शारीरिक, मानसिक और भावनात्मक क्लान्ति से निढाल होकर निष्प्राण अनुभव करने लगती है।

कारण

हम भावनात्मक आघात या क्षति के बाद आन्तरिक जैविक असन्तुलन के कारण या किसी रोग के लिए ली गयी दवाओं के अन्तर्प्रभाव के कारण विषाद

का अनुभव कर सकते हैं। चूँकि मन और शरीर एक-दूसरे से सम्बद्ध हैं, इसलिए अधिकांश स्थितियों में पहले दोनों कारक एक साथ उपस्थित होते हैं और एक-दूसरे को गम्भीर बनाते हुए कष्ट की अवधि को बढ़ा देते हैं।

औषधि प्रवृत्त विषाद– अनेक व्यक्तियों की यह धारणा है कि केवल दवाओं के व्यसनी लोग औषधि के दुष्प्रभाव से विषादग्रस्त हो सकते हैं, वे स्वयं नहीं। उदाहरण के लिए यह व्यापक स्तर पर ज्ञात है कि अत्यधिक मद्यपान के उत्तर परिणामस्वरूप विषाद होता है। (खुमारी और मादकीय पश्चाताप) कई सामान्य रोगों के लिए वैध रूप से उपयुक्त होने वाली औषधियाँ भी विषाद उत्पन्न कर देती हैं। जिन रोगों के लिए उन औषधियों का उपयोग किया जाता है वे रोग हैं गठिया, मूत्रीय संक्रमण, पेचिश, पाचन सम्बन्धी संक्रमण और उच्च रक्तचाप।

स्त्रियों को यह विशेष रूप से जानना चाहिए कि खायी जाने वाली गर्भनिरोधक गोलियों और शीघ्रता से वजन कम करने के लिए भूख दबाने वाली गोलियों के अन्तर्प्रभाव से भी विषाद होना सामान्य बात है। कुछ चिन्ता निरोधक एवं प्रशान्तिकारक औषधियाँ भी विषाद का कारण होती हैं। यदि आप इस प्रकार की किसी औषधि का सेवन कर रहे हैं तो आपको मद्य का पूर्णत: निषेध करना चाहिए।

प्रतिक्रियात्मक विषाद– इस नाम का प्रयोग विषाद की उस अवस्था के लिए किया जाता है जब भावनात्मक आघात या शोक के कारण विक्षोभ की अवधि लम्बी हो जाये। किसी घनिष्ठ व्यक्ति को खो देने पर या किसी दु:खद घटना के बाद उत्पन्न हुआ शोक भी दो-तीन महीनों तक विषादग्रस्त बनाए रख सकता है। इसे तो सामान्य स्थिति माना जायेगा, किन्तु जब शोक, दु:ख या उदासीनता की स्थिति लम्बी अवधि तक खिंच जाती है तो इसे गम्भीर स्थिति का सूचक कहा जायेगा। प्राय: अनपेक्षित असफलता भी हमें महीनों त्रस्त रख सकती है, जैसे शिक्षा सम्बन्धी असफलता, व्यापार का बैठ जाना, विवाह का भंग होना, इत्यादि। जो भयंकर शारीरिक अपंगता से पीड़ित हैं, वे भी स्वयं को निस्सहायता एवं पराधीनता के बोझ से दबा हुआ अनुभव करते हैं। यद्यपि इस स्थिति में उत्पन्न विषाद स्वाभाविक माना जाता है। हम अपने दु:खों की गहराई को अपनी आसक्ति की प्रबलता से माप सकते हैं और हमारा उत्कर्ष हमारी अन्तर्दृष्टि पर निर्भर करता है जो वैराग्य को संपोषित करती है।

अन्तर्जात विषाद– इसका स्रोत बाहर नहीं, बल्कि अन्दर भी होता है। विषाद कुछ रोगों का लक्षण होता है, जैसे विद्युत अपघट्य असन्तुलन (इलेक्ट्रोलाइट इम्बैलेन्स) मुख्य रूप से प्रतिश्याय (इन्फ्लुएंजा) और यकृत-शोथ (हेपेटाइटस) जैसी बीमारियों के बाद यह हो सकता है। स्त्रियों को विशेषकर इस तथ्य से सचेत रहना चाहिए कि यह विषाक्त रक्तक्षीणता (एनेमिया) से भी सम्बद्ध होता है और प्रसव के पश्चात् भी कुछ समय के लिए पीड़ित कर सकता है।

कुछ ग्रन्थियों में, विशेषकर पीयूषिका, अवटु (थायराइड) एवं प्रजनन सम्बन्धी हॉर्मोनों में असन्तुलन भी स्त्रियों में विषाद उत्पन्न करते हैं। उदाहरणार्थ, एक अति क्रियाशील अवटु ग्रन्थि आपको सोने में कठिनाई उत्पन्न करेगी, आप प्राय: असामान्य ढंग से आशंकित रहेंगे और सदा क्रोधित हो जाने का भय रहेगा। आवश्यकता से कम क्रियाशील अवटु के कारण आप सम्पूर्ण ऊर्जात्मक एवं भावनात्मक शक्तिविहीन हो जायेंगे, जिससे आपमें सुस्ती, चिड़चिड़ापन और संवेदनशीलता आ जायेंगी।

अनेक स्त्रियाँ प्रजनन चक्र में हॉर्मोनों के असन्तुलन के कारण ऋतुस्राव पूर्व-उदासी का अनुभव ऋतुस्राव के समय से एक सप्ताह-दस दिन पूर्व से ही करने लगती हैं। रजोनिवृत्ति के क्रम में हॉर्मोनों के स्तर में अनियमित और त्वरित परिवर्तन के कारण भी विषाद की सम्भावना रहती है। जहाँ जैविक तथ्यों के कारण विषाद उत्पन्न होता है वहाँ स्थिति को सुधारने में हठयोग और आसन अत्यन्त प्रभावकारी होते हैं।

यह उतना सरल भी नहीं

इस विश्लेषण के द्वारा यह स्थिति जितनी सरल दिखती है, उतनी सरल नहीं है। शरीर मन पर असर करता है और मन प्राणों को प्रभावित करता है जो शरीर को चलाते हैं। हॉर्मोन असन्तुलन के कारण हम दु:ख के दिनों में विषण्ण हो सकते हैं, किन्तु जीवन के प्रति लम्बे समय का असन्तोष एवं वर्षों की कुण्ठाएँ धीरे-धीरे शरीर पर अपना दुष्प्रभाव डालती हैं जो शारीरिक कष्ट के रूप में प्रकट होती हैं। विषाद सदा मन को विकृत कर देने वाले जैविक कारणों से ही नहीं होता है। भावनाओं का दमन, ऐसी सीमाएँ जो न तो स्वीकार्य हों और न ही उनसे ऊपर उठ सकते हों– ये सब चिरकालिक मानसिक अशान्ति का मूल कारण बन जाते हैं जो प्राण की क्रिया को और

अन्ततः शारीरिक क्रियाओं को बाधित कर देते हैं और फिर यह मन की नकारात्मक स्थिति को और भयंकर बनाकर उसे स्थायी रूप दे देता है।

व्यतिक्रमित ऊर्जा

यह एक वैज्ञानिक सिद्धान्त है कि ऊर्जा का न तो सृजन किया जा सकता है और न विनाश, इसे केवल रूपान्तरित या पुनरावर्तित किया जा सकता है। द्रष्टा योगियों के लिये सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड विभिन्न रूपों में स्पन्दनशील ऊर्जा है। जब शक्ति का एक से दूसरे में रूपान्तरण होता है तब सृजन और विनाश होता है। उदाहरणार्थ, पदार्थ एवं चेतना नियन्त्रक ऊर्जा के दो भिन्न परिणाम हैं।

प्राण के रूप में ऊर्जा हमारे वातावरण की देन है। यौगिक द्रष्टा के लिए एक मनुष्य प्राण से देदीप्यमान रहता है जो असंख्य अतीन्द्रिय मार्गों के द्वारा हमारी सम्पूर्ण संरचना में व्याप जाता है। मनुष्य के जैव ऊर्जा क्षेत्र के कीर्लियन चित्रों ने यह दर्शाया है कि सूक्ष्म लपलपाती हुई ज्वाला रन्ध्रों से प्राणिक जीवन-शक्ति की तरंगों के रूप में प्रवाहित होती रहती है।

योगी के लिए मन भी ऊर्जा है। मनुष्य का मन मनोमय कोश एवं विज्ञानमय कोश से आच्छादित रहता है जिन्हें सूक्ष्म ऊर्जा अनुप्राणित करती रहती है। हम ऊर्जा के मूर्त रूप हैं और जब इस ऊर्जा का प्रत्याहार होता है तो शरीर मृत हो जाता है। इस प्रकार जब कोई विषादग्रस्त व्यक्ति निस्तेज अनुभव करता है तो हम पाते हैं कि वस्तुतः समस्या का सम्बन्ध उस ऊर्जा के उत्पादन और उसकी अभिव्यक्ति से है जो हमारे अस्तित्व को संघटित करती है। विषाद का सम्बन्ध ऊर्जाविहीन स्थिति से जितना नहीं है उतना कुण्ठित चेतना के कारण ऊर्जा के बाधित प्रवाह से है। ऊर्जा का सामान्य मार्ग दूषित हो जाता है और व्यक्ति उपलब्ध ऊर्जा का उपयोग करने में असमर्थ होता है। अपने सामान्य उद्देश्य एवं कार्यों से कटकर अलग हो जाने पर एक स्त्री की ऊर्जा उसके अन्दर ही घुमड़ती रह जाती है और उसमें रिक्तता की भावना उत्पन्न हो जाती है जो उसे पूरी तरह अस्तव्यस्त कर देती है।

मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण

अनेक मनोवैज्ञानिक मन के गत्यात्मक स्वरूप का अनुमोदन करते हैं। फ्रॉयड के लिए सभी मानव क्रियाकलापों के पीछे 'लिबिडो' या काम ऊर्जा प्रेरक शक्ति के रूप में कार्यरत रहती है। उनकी धारणा के अनुसार मन मुख्यतः

दो स्तरों पर प्रकट होता है– चेतन और अचेतन। चेतन मन विवेकपूर्ण एवं वस्तुनिष्ठ अवस्था है जो हमारे जाग्रत जीवन का संचालन करती है, हमारी आवश्यकताओं एवं इच्छाओं का नियन्त्रण करती है।

अचेतन मन उस संचित ऊर्जा का भण्डार है जो सहज इच्छाओं या प्रेरणाओं के रूप में व्यक्त होना चाहता है। यदि इनमें से कोई इच्छा कुण्ठित रह जाती है तो इसे प्रेरित करने वाली ऊर्जा परावर्तित होकर अचेतन मन में चली जाती है जहाँ से यह अन्य रूप में निर्गत होने का मार्ग ढूँढ़ लेती है। उदाहरण के लिए, काम ऊर्जा सृजनात्मक या आध्यात्मिक शक्ति के रूप में रूपान्तरित हो सकती है। यदि इस ऊर्जा को अभिव्यक्ति या विकल्प नहीं मिल पाता है तो यह एक विनाशक शक्ति का रूप ले लेती है। अचेतन मन में अतीत के अनुभवों की स्मृतियाँ संचित रहती हैं। ऐसे अनुभव जो विशेष रूप से दु:खदायी रहे हों, उन्हें अचेतन मन की गहराइयों में दबा दिया जाता है, किन्तु उन्हें स्मृति की सीमा में आने से रोकने में अत्यधिक ऊर्जा खर्च हो जाती है। अनुभवों का यह दमन ऊर्जा को विकृत तो बनाता ही है, उसका अपव्यय भी करता है, किन्तु फिर भी वे अनुभव भय और विभिन्न मनोविकारों के रूप में व्यक्त होते रह जाते हैं। अचेतन मन में व्याप्त अशान्ति और क्षोभ हमारे अन्दर तनाव उत्पन्न कर देते हैं।

विल्हेम रीश ने बताया कि मानसिक ऊर्जा के निषेधक और सन्तुलक तत्त्व शरीर में परिलक्षित होते हैं तथा वे दमन मनोवैज्ञानिक ग्रन्थियों के रूप में प्रकट होते हैं जिनको उन्होंने 'मांसपेशीय कवच' और योगियों ने 'ग्रन्थि' का नाम दिया है। यद्यपि मूलत: ये एक प्रतिरक्षात्मक साधन के रूप में मन के संवेदनशील क्षेत्रों को और अधिक आहत होने से बचाते हैं, किन्तु ये ग्रन्थियाँ रक्तबन्ध के समान हैं जो ऊर्जा के स्वस्थ प्रवाह को अवरुद्ध कर हमारे सम्पूर्ण अस्तित्व से अलग कर देती हैं। हमारी संवेदनाएँ कुण्ठित हो जाती हैं और हम धीरे-धीरे निस्तेज और निष्प्राण हो जाते हैं।

फ्रॉयड ने मनुष्य की काम-लिप्सा को ही मौलिक ऊर्जा समझा और दमित लैंगिकता को विषाद एवं मनोरोगों का कारण माना। रीश को यह ज्ञात था कि हमारी जीवनी-शक्ति किसी अधिक व्यापक जैव ऊर्जा से उत्पन्न होती है, किन्तु उन्हें प्रतीत हुआ कि इस ऊर्जा को भोग-विलास के लिए समर्पित कर देने में असमर्थ होना आन्तरिक अवरोध और तनाव का प्रमुख कारण बन जाता है।

योगियों को यह ज्ञात है कि अतीन्द्रिय आनन्द प्रदान करने वाली कुण्डलिनी शक्ति प्रारम्भ में वासनात्मक ऊर्जा के रूप में व्यक्त होती है। यद्यपि योगी इस ऊर्जा को आध्यात्मिक उद्देश्यों के लिए रूपान्तरित और परिष्कृत कर लेते हैं, किन्तु वे यह भी जानते हैं कि दमित अवस्था से इसका उदात्तीकरण सम्भव नहीं। इस विस्मयकारी ऊर्जा को नियन्त्रित एवं अनुप्रेषित करने के पूर्व हममें वासनाओं की अभिव्यक्ति में सुख प्राप्त करने की क्षमता होनी चाहिए। यही कारण है कि पौराणिक शास्त्रों में ब्रह्मचर्य का पालन करने से पूर्व गृहस्थ जीवन के अनुभव प्राप्त करने को कहा गया है। यदि काम-लिप्सा को समय से पूर्व दबाया जाये तो यह एक भयंकर विध्वंसक शक्ति बन जाती है।

इसलिए इसमें आश्चर्य की बात नहीं कि विषादग्रस्त अधिकतर स्त्रियाँ यौन समस्याओं से भी पीड़ित रहती हैं। इन समस्याओं का कारण कुछ भी हो, किन्तु स्त्री की वासनाओं को अस्वीकृत करने या उन्हें बाधित करने से उसकी ऊर्जा दमित हो जाती है; ऊर्जा के इस दमन में जो ऊर्जा प्रयुक्त होती है, उसका उपयोग कहीं और किया जा सकता है। यदि वासनात्मक ऊर्जा को उचित एवं सुनियोजित ढंग से अभिव्यक्ति के अन्य मार्ग पर अनुप्रेषित किया जाये तो इससे ओजस्विता एवं सृजनात्मकता में अत्यधिक वृद्धि होती है। यदि इसे मन से निकालने का प्रयास किया जाये या यह एक द्वन्द्व के रूप में अन्दर रह जाय तो यह हमारे ऊर्जा-स्रोत का अपक्षय कर देगी। अपने विषाद से मुक्त होने के लिए स्त्री को अनेक आवश्यक उपायों में से एक यह करना है कि सहजता के साथ स्वयं को एक कामवासना युक्त प्राणी मान ले।

अर्थहीनता

विषाद किसी के जीवन की अर्थहीनता की सर्वप्रथम एवं प्रमुख प्रतिक्रिया के रूप में उत्पन्न होता है, फिर भी हमें इस सन्दर्भ में स्त्री के जीवन के उद्देश्यों को वासनाओं की तुला पर तौलने की गलती नहीं करनी चाहिए। स्त्रियों की क्लिष्ट प्रकृति को समझ पाने में विफल रह जाना ही स्त्रियों के दु:खों का कारण बना है।

यह पता चला है कि मनोवैज्ञानिक सहायता लेने वाली विषादग्रस्त अधिकतर स्त्रियों की आयु इक्कीस और चौवालीस की होती है, जो उनके जीवन का उत्कृष्टतम काल होता है। इसी अवधि में उनकी सृजनात्मक ऊर्जा शिखर पर होनी चाहिए और उनमें उपलब्धि एवं प्रगति के आनन्द का स्पन्दन

होना चाहिए। बालिकाएँ सुखी पत्नीत्व और मातृत्व की कल्पना के साथ विकसित होती हैं, और उनमें से अधिकतर विवाह के पश्चात् सन्तान उत्पन्न करती हैं। यथार्थत: घर बसाने और सन्तान धारण करने के ऐसे समय में ही स्त्रियाँ अपने जीवन के उद्देश्यों के पूर्ण होने की आशा रखती हैं।

यदि घर और बच्चों को उसके एक मात्र अंशदान के रूप में नहीं देखा जाय तो भी यह स्त्रियों के जीवन का सबसे महत्त्वपूर्ण अंशदान तो है ही। यही है उनकी सृजनात्मकता एवं उनके जीवन के कृत्य की उचित अभिव्यक्ति। ऐसे समय में जब जीवन की शक्तियाँ प्रबलतम होती हैं और उसके कार्य प्रतिफलित होते हैं, विषादग्रस्त स्त्री अपनी ही ऊर्जाओं को अपने ही विरुद्ध निर्जीवता की पीड़ा में उन्मुख होती पाती हैं। यह और भी अधिक दु:खदायी है, क्योंकि स्त्री आदर्शों की प्रतिष्ठित छवि के अनुसार वह पाती है कि उसके पास वह सब है जो वह चाहती हो। फिर भी उसे मूलत: एक अनुभूति होती है कि कहीं कुछ लुप्त है, और इस जीवन में जो भी हो, सार्थकता का अभाव है।

कुण्ठित सृजनात्मकता

जीवन में स्त्रियों की भूमिका की संकुचित परिभाषा के कारण ही समस्याएँ उत्पन्न होती हैं। उसकी जैविक संरचना के आधार पर ही उसे पारिभाषित किया जाता है – पत्नी बनो और माता बनो – किन्तु अनेक स्त्रियों के लिए यह पर्याप्त नहीं है। विशेषकर जब बच्चे स्कूल जाने लगते हैं तो गृहस्थी में स्त्रियों की रुचि कम हो जाती है और न पहले की तरह उन पर गृहस्थी का उतना भार ही होता। घर में उनकी आवश्यकता नहीं रह जाती है।

गृहस्थी के तो सभी समायोजित काम-काज पूरे होने हैं, किन्तु उन्हें पूर्णत: संतोषदायक भी नहीं माना जा सकता है। जैसे, भोजन बनाने में भी सृजनात्मकता का बड़ा अंश खर्च किया जा सकता है, किन्तु वह तो एक अतृप्त परिवार द्वारा पाँच मिनट के अन्दर निगल लिया जाता है। यह उपलब्धि क्षणभंगुर तो है ही, प्राय: इसकी परवाह भी नहीं की जाती। इसी प्रकार सफाई का काम है; ज्योंही सफाई पूरी हुई, फिर से उसमें लग जाना पड़ता है। गृहस्वामिनी का काम कभी समाप्त नहीं होता है।

स्त्रियों की सृजनात्मकता का निरन्तर कुण्ठित होते रहना भी उनके विषाद का कारण बन जाता है। अपनी अभिव्यक्ति की सम्भावनाओं के अभाव में यह शक्ति विध्वंसक बन जाती है। स्त्रियों के अन्तर्द्वन्द्व का कारण यह है कि उन्हें

प्रारम्भ से अपने मन और भावनाओं का उपयोग परिवार के लिए ही करना सिखाया जाता है, बाहरी दुनिया की चुनौतियों के लिए नहीं। इस बात पर सदा बल दिया जाता है कि उन्हें अपनी सम्पूर्ण शक्ति का यथोचित् उपयोग अपने पति और बच्चों की उन्नति के लिए करना चाहिए, अपने विकास के लिए नहीं। ऐसा मध्यम मार्ग जिसके द्वारा एक स्त्री अपनी गृहस्थी का ध्यान रखते हुए अपनी सृजनात्मक क्षमताओं का पूर्ण विकास करे, स्त्रीत्व के व्यापक आदर्श की परिधि के बाहर है।

दुस्साहसिकता एवं सीमाओं का उल्लंघन पुरुष आदर्शों के अन्तर्गत आता है। एक पुरुष द्वारा सामाजिक परम्पराओं को तोड़ कर उस पर इतराना अपरम्परागत नहीं है। वस्तुत: पुरुषों से यह अपेक्षा की जाती है कि वे विद्रोही और नई सम्भावनाओं के अन्वेषक हों। पुरुष पथ-प्रदर्शक और नायक होते हैं, उनका क्षेत्र कोई भी हो। ऐसे पुरुष परम्परा-विरोधी माने जाते हैं जो अपने अन्दर स्त्रीगत स्वभाव का विकास करते हैं या उनकी भूमिकाओं को अपनाते हैं। ऐसे पुरुष को, जो घर और बच्चों की देखभाल करता हो और जिसकी पत्नी बाहर नौकरी करती हो, हीन दृष्टि से देखा जाता है, उसका उपहास किया जाता है, विशेषकर अन्य पुरुषों द्वारा।

दूसरी ओर, स्त्रियों की रूढ़िगत छवि में 'आमूल परिवर्तन' के लिए कोई स्थान नहीं है। एक स्त्री यदि परम्परागत आदर्श से परे कोई ऐसा कार्य करती है जिसे परम्परा के अनुसार पुरुषजन्य माना जाता है तो समाज उसके प्रति उसी प्रकार विद्वेषपूर्ण हो जाता है जिस प्रकार एक पुरुष द्वारा किसी प्रतिष्ठित सामाजिक मर्यादा के भंग किये जाने पर होता। वह स्त्री जो केवल पत्नी और माता की भूमिका से सन्तुष्ट नहीं होती है, उसे यह विश्वास दिलाया जाता है कि कोई दोष उसमें है, उस प्रतिष्ठित आदर्श में नहीं।

यदि एक स्त्री प्रचलित आदर्शों का विरोध करती है तो उसे कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है, किन्तु यह आवश्यक नहीं कि पूर्णत: उन आदर्शों का पालन करने के बावजूद वह सुरक्षित रह पाये, क्योंकि अधेड़ उम्र में विषादग्रस्त होने वाली स्त्रियों में प्राय: वे ही होती हैं जिन्होंने प्रचलित स्त्रीगत भूमिका को पूरी तरह अपनाया था। स्वयं को पूर्णत: पत्नी और माँ के रूप में समर्पित करने के बाद एक ऐसी अवस्था आती है जब इस भूमिका की आवश्यकता नहीं रह जाती है। बच्चे बड़े होकर स्वतन्त्र हो जाते हैं; दूसरी ओर वर्षों तक बच्चों के लिए पति को कम महत्त्व देने के कारण पति के साथ उसके सम्बन्ध घनिष्ठ

नहीं हो पाते हैं। अपने सम्पूर्ण जीवन को परिवार की सेवा में लगा देने के बाद अब इन स्त्रियों को अपनी निरर्थकता का आभास होने लगता है।

स्त्रियों को अपने द्वन्द्वों को बाहर न निकाल कर अपने अन्दर दबाये रखने की जो सीख दी जाती है, उसके कारण वे अनभिव्यक्त ऊर्जाओं को अन्दर रोक लेती हैं और परिणामस्वरूप विषाद में डूब जाती हैं। विषाद आत्महत्या के लिए उकसाता है। सम्पूर्ण विकसित विश्व में आत्महत्या करने वालों में अधिकांश स्त्रियाँ ही होती हैं। पाश्चात्य देशों में आत्महत्या का प्रयास करने वालों में दो तिहाई स्त्रियाँ होती हैं। भाग्यवश, आत्महत्या का प्रयास करने वाली सभी स्त्रियाँ सफल नहीं हो पाती हैं। वस्तुत: उनमें से अधिकतर तो मरना भी नहीं चाहती हैं। वे अपनी असह्य वेदना से मुक्त होने के लिए मदद माँगती हैं; वे चाहती हैं कि लोग उनकी समस्या को समझें।

योग उपचार

तान्त्रिक ब्रह्माण्ड विज्ञान में सात तल होते हैं जो चेतना की विषादयुक्त अवस्था के प्रतीक हैं। योग वह साधन है जो हमें हमारे मृत जीवन से पुनरुज्जीवित कर सात लोकों या स्वर्गों तक उच्चतर चेतना की प्रगतिशील अवस्था में, जो प्रत्येक के अन्दर विद्यमान है, ले जाता है। योग न केवल तनाव से मुक्ति और ऊर्जा को नवजीवन प्रदान करता है, बल्कि चेतना के उत्कर्ष के लक्ष्य को सार्थक एवं उद्देश्यपूर्ण बना देता है।

इस विषाद से उबरने के लिए सर्वप्रथम अवसादयुक्त मन:स्थिति से बाहर निकलना होगा ताकि सहज रूप में ऊर्जा पुन: प्रवाहित होने लगे। इसके लिए हठयोग के अभ्यास अत्यन्त प्रभावोत्पादक होंगे।

षट्कर्म – कुंजल क्रिया एक प्रकार से 'प्रघात चिकित्सा' के रूप में काम करती है। इसके द्वारा ऊर्जा का त्वरित प्रवाह सिर तक जाकर सम्पूर्ण चयापचय क्रिया को अनुप्राणित करता है। जल नेति के द्वारा सिर की कुंदता और भारीपन को दूर किया जाता है; गहन विषाद की स्थिति में सामान्य तापक्रम के जल का प्रयोग करना चाहिए। हृदय का भारीपन अक्सर अतिदीर्घ होकर शरीर के भारीपन के रूप में प्रकट हो जाता है जिसे शंखप्रक्षालन के द्वारा दूर किया जाता है। ये तीन क्रियाएँ तमस, शारीरिक जड़ता एवं ऊर्जा के अवरोधों को दूर करती हैं, और शरीर एवं मन को हल्कापन प्रदान करती हैं।

आसन – इन क्रियाओं के पश्चात् आसनों का अभ्यास किया जाता है जिससे असन्तुलित हुए हार्मोन सन्तुलित होकर मन और शरीर के बीच पुन: सम्बन्ध स्थापित कर देते हैं। इसके फलस्वरूप ऊर्जा के सहज प्रवाह को बाधित करने वाला मनोवैज्ञानिक कवच भंग हो जाता है। इस कार्यक्रम के अन्तर्गत नौका संचालन, चक्की चलाना और सूर्य नमस्कार जैसे गत्यात्मक आसनों के बाद क्रम से ऐसे आसनों को लिया जाता है जो प्रत्येक प्रमुख ग्रन्थि और चक्र को प्रभावित करें। पीछे झुककर और उत्क्रमित होकर करने वाले आसनों पर विशेष बल दिया जाता है। सर्वांगासन का अभ्यास किया जाना चाहिए, यदि शीर्षासन सम्भव नहीं हो तो इसके सरल प्रकार भी अपनाये जा सकते हैं, जैसे – प्रणामासन, भूमि पाद मस्तकासन (शीर्षासन की प्रथम अवस्था)।

कुछ विषादग्रस्त स्त्रियों के लिए सुबह कष्टकर और शाम सुखद होती है। इनके लिए सुबह में क्रियाओं और आसनों का सुनियोजित अभ्यास लाभप्रद होगा। कुछ स्त्रियाँ सुबह में प्रफुल्लित अनुभव करती हैं, जबकि उनकी शाम अवसादयुक्त होती है। इन्हें क्रियाओं और आसनों के अभ्यास के लिए दोपहर के अन्त या शाम के पहले का समय चुनना चाहिए।

प्राणायाम एवं बन्ध – मन:स्थिति को सन्तुलित रखने में प्राणायाम एवं बन्ध सहायक होते हैं। इन्हें या तो आसनों के बाद या स्वतन्त्र रूप से कभी भी किया जा सकता है। इनके लिए कपालभाति, भस्त्रिका एवं नाड़ीशोधन प्राणायामों का अनुमोदन किया जाता है। मूलबन्ध का गहन अभ्यास होना चाहिए। सरल रूप में (त्वरित संकुचन) और श्वास के साथ। जब दक्षता बढ़ जाये तो सुबह और शाम महाबन्ध (मूल, उड्डियान एवं जालन्धर एक साथ) के बारह चक्रों का अभ्यास किया जाना चाहिए। बन्ध विशेष रूप से ऊर्जा की बाधाओं को दूर करते हैं, जीवन-शक्ति को पुन: स्पन्दित करते हैं और चक्रों में प्राण के उचित वितरण को सुनिश्चित करते हैं।

ध्यान – यदि हम सचमुच विषादग्रस्त हैं – केवल दु:खी या उदास नहीं – तो यह ध्यान के लिए उपयुक्त स्थिति नहीं है। प्रारम्भ में ध्यान करने का प्रयास अपनी समस्याओं का सामना करने के लिए नहीं, बल्कि उनसे बचने के लिए होता है। जब बाहरी जीवन उद्देश्यहीन और भ्रमित होता है तो यह भ्रम और उद्देश्यहीनता हमारे अन्तर्मुखी होने के प्रयास को धुँधला बना देती है। हम या तो सो जाते हैं या कुण्ठित करने वाले विचारों में उलझ जाते हैं, क्योंकि विचारों

में स्पष्टता का अभाव रहता है। इस प्रकार अत्यधिक समय नष्ट होता है और कोई रचनात्मक उपलब्धि नहीं हो पाती है।

हालाँकि जब आसनों, क्रियाओं और बन्धों का प्रभाव आरम्भ हो जाता है तो मन:स्थिति सुधरने लगती है, साहस और स्पष्टता सतह पर आने लगती है। धीरे-धीरे ध्यान गहराई में जमे हुए उन संस्कारों को उखाड़ने के लिए आवश्यक हो जाता है जो नकारात्मक प्रतिक्रियाओं की जड़ होते हैं। ध्यान ही अपने मूल स्वभाव को पहचानने के लिए भी आवश्यक है, क्योंकि वही हमारा पथ-प्रदर्शक बनकर हमें सम्पूर्ण और संतोषप्रद जीवन जीने की प्रेरणा देता है।

ध्यान एक प्रकार की मन:चिकित्सा भी है जो हमें शान्ति और स्पष्टता से परिपूर्ण समय का वह अंश प्रदान करता है जिससे हम जीवन को अधिक यथार्थ रूप में देख पाने में सक्षम होते हैं। परिस्थितियों के प्रति हमारा दृष्टिकोण बदल जाता है जो हमारे जीवन को नया रूप देने में सहायक होता है। बाधा उत्पन्न करने वाले तत्त्वों को हम स्पष्ट देख पाते हैं तथा अपनी सीमाओं एवं आकांक्षाओं से समझौता करने के नये उपाय निकालते हैं। नई अन्तर्दृष्टि और विस्तीर्ण हुई चेतना के साथ जीवन में नई सम्भावनाएँ प्रस्फुटित होने लगती हैं। सार्थकता पुष्पित होने लगती है।

असह्य मानसिक तनाव को दूर करने का सीधा उपाय है, अन्तर्मौन, आन्तरिक शान्ति उत्पन्न करने का अभ्यास। अन्तर्मौन सर्वप्रथम बाहरी बाधाओं के विरुद्ध प्रतिरोध बढ़ाता है, तत्पश्चात् जागरूकता को धीरे-धीरे अन्तर्मुख करता है और तब अचेतन में घुमड़ते विचार और दबी हुई भावनाएँ धीरे-धीरे चेतन स्तर पर उभरने लगती हैं। तनाव में शिथिलता आते ही हम अपने उन विचारों, भावनाओं, इच्छाओं और कुण्ठाओं के प्रति जागरूक हो जाते है जिन्हें वर्षों तक दबाया या छिपाया जाता रहा। धीरे-धीरे जाग्रत मन इन्हें स्वीकार करने लगता है और इन सब को दबाने के लिए जिस ऊर्जा का उपयोग किया जा रहा था वह अब बेहतर उद्देश्यों की पूर्ति के लिए स्वतन्त्र हो जाती है।

कुछ समय बाद एक ऐसी अवस्था आती है जब मन की गइराइयों में छिपे विचारों और भावनाओं का प्रभाव हम पर नहीं रह जाता और इस अवस्था में विचार प्रक्रिया को नियन्त्रित कर विचारशून्यता की स्थिति उत्पन्न की जा सकती है। यह स्थिति सहज ही ध्यान की ओर ले जाती है और हमारे अभ्यन्तर से हमारा सम्बन्ध स्थापित करती है। यह सम्बन्ध जीवन की किसी भी वस्तु से

अधिक महत्त्वपूर्ण होता है, हमारे अस्तित्व की सम्पूर्ण धारणा को ही रूपान्तरित कर देता है और हमारे जीवन को शक्ति और सार्थकता प्रदान करता है।

यौगिक चर्या

योगियों का जीवन सोने, खाने, काम करने और ध्यान करने के एक निश्चित कार्यक्रम के अनुसार चलता है, जिसमें शरीर और मन के स्वाभाविक ऊर्जा चक्र का अधिकाधिक लाभ उठाया जाता है। इसी प्रकार की चर्या योग के अभ्यासों को सम्बल देती है और विषाद के ऊपर विजय प्राप्त करने में सहायक होती है।

नींद– एक विषादग्रस्त स्त्री स्वयं को निष्प्राण-सा अनुभव करती है, उसे लगता है कि उसके अन्दर जो थोड़ी ऊर्जा शेष है उसे बचाने के लिए उसे अधिक आराम करना चाहिए। अनेक स्त्रियाँ अनुभव करती हैं कि नींद उनकी समस्याओं से मुक्ति का मार्ग है और उन्हें नींद की लत पड़ जाती है। वे अधिक-से-अधिक सोने लगती हैं; शारीरिक आवश्यकता से नहीं, बल्कि विषादयुक्त वास्तविकता से पलायन के लिए। एक सामान्य व्यक्ति के लिए एक दिन में आठ घण्टों की नींद पर्याप्त होती है, छः घण्टे सर्वोत्तम हैं, और जब हम लगभग आधी उम्र पार कर लेते हैं तो हमें इससे भी कम सोने की आवश्यकता होती है। आवश्यकता से अधिक सोना भी थकान का कारण हो जाता है, शारीरिक प्रक्रियाएँ मन्द हो जाती हैं और मन कुन्द हो जाता है; अत्यधिक सोने से तामसिकता बढ़ने लगती है और इससे सम्बद्ध नकारात्मक प्रवृत्तियाँ प्रबल होने लगती हैं। विषादग्रस्त होने पर कम नींद आवश्यक है। नींद को दूर करने का प्रयास करें और दिन में कभी न सोयें। यदि आपको नींद आने लगे तो ठण्ढे पानी से स्नान करें - इससे आप चुस्त और प्रफुल्लित अनुभव करेंगे। छः से आठ घण्टे की नींद आपको ताजगी प्रदान करेगी और तब आपके पास साधना तथा अन्य कार्यों के लिए पर्याप्त समय होगा।

'रात में जल्दी सोना और सुबह जल्दी उठना स्त्री को स्वस्थ, समृद्ध और बुद्धिमती बनाता है।' यह प्रचलित कहावत यौगिक जीवन के लिए भी एक महत्त्वपूर्ण सूत्रवाक्य है। आधी रात के पहले की नींद अधिक ताजगी भरी होती है, इसलिए जल्दी सोने पर हम नींद के हर घण्टे का लाभ उठाते हैं और तब हम ब्रह्ममुहूर्त में जाग पाते हैं, जो उत्थित चेतना की अवधि है (यथार्थ ब्रह्ममुहूर्त), प्रातः चार से छः बजे के बीच। इस समय जागने पर हॉर्मोनों में

होने वाले परिवर्तनों का लाभ भी होता है, ये परिवर्तन प्रात: चार बजे होते हैं। यह समय ऐसा होता है जब ब्रह्माण्ड की सभी शक्तियों में सात्त्विकता व्याप्त रहती है जो हमारे आन्तरिक 'स्व' और ब्रह्माण्ड की शक्तियों के बीच सामंजस्य स्थापित करने में सहायता करती है।

यदि आप सुबह जल्दी जागने की आदत डाल लें तो आप अपने जीवन पर इसका महत्त्वपूर्ण प्रभाव पायेंगे। किन्तु शर्त यह है कि आपको इस चर्या का कठोरता से पालन करना पड़ेगा। प्रारम्भ में इसके लिए आपको प्रयास करना पड़ेगा, किन्तु बाद में जल्दी जागना सुखद प्रतीत होने लगेगा। सुबह स्नान से प्रारम्भ करें, ठण्ढा पानी उपयुक्त रहेगा, और फिर नींद को दूर करने के लिए कुछ हल्की शारीरिक क्रियायें कर लें। सूर्य नमस्कार सर्वोत्तम है; कुछ अन्य आसन भी कर सकती हैं। यदि आप यह नहीं कर पायें तो घर में थोड़ी सफाई का काम कर लें। तत्पश्चात् ध्यान के लिए बैठें, आप पायेंगी कि मन स्वत: शान्त और अन्तर्मुखी हो जाता है। यही कारण है कि योगी आध्यात्मिक अभ्यासों के लिए इस अवधि को ही सबसे अधिक पसन्द करते हैं।

अनेक विख्यात विचारक, लेखक, चित्रकार तथा अन्य रचनात्मक व्यक्तियों ने इसको अत्यन्त सृजनात्मक काल कहा है, इस अवधि में विचार और प्रेरणाएँ उन्मुक्त रूप से प्रवाहित होती हैं। यदि आप किसी प्रतिभा का विकास करना चाहती हैं तो यह सब करने के लिए यही उत्तम समय है। यदि आपमें ऐसा कुछ भी करने के प्रति रुझान नहीं है तो आप इस समय केवल अपनी दिनचर्या ही प्रारम्भ कर दें; आप नि:सन्देह कुछ प्रेरणा प्राप्त करेंगी कि इस समय का सर्वोत्तम उपयोग किस प्रकार किया जाय। केवल इस तरह की चर्या के द्वारा आप अपनी छिपी हुई प्रतिभाओं को जाग्रत करने में सक्षम होंगी। इस चर्या का पालन आप अपनी साधना के अभ्यास के रूप में कर सकती हैं। यह एक महत्त्वपूर्ण उपचार है, जिसके द्वारा आप पायेंगी कि विषाद से उबरने के लिए आपके अन्दर अधिक ऊर्जा और आशावादिता का संचार होने लगा है।

भोजन – अधिक खाकर आनन्दित होने का प्रयास करना दु:खों से हुई क्षति की पूर्ति करने का एक साधन है। यद्यपि कुछ लोग विषाद में कम खाते हैं, किन्तु अधिकतर स्त्रियाँ सामान्य रूप से अधिक खाने लगती हैं, मिष्ठान्न के लिए उनमें विशेष ललक उत्पन्न हो जाती है। अधिक मीठा न केवल वजन बढ़ाता है और चयापचय क्रिया को अव्यवस्थित कर देता है, बल्कि

मन्दता और तमस को भी प्रबल होने का अवसर देता है। इस प्रकार आप आन्तरिक रिक्तता को तो भोजन से कभी नहीं भर पायेंगे, किन्तु अनावश्यक अपराध-बोध से अपनी ऊर्जा का अवश्य क्षय करेंगे। इसलिए समय पर भोजन करें, दो भोजनों के बीच के समय में कुछ न खायें और अधिक मीठे से परहेज करें।

कर्मयोग

उद्यम से ऊर्जा का क्षय नहीं होता, बल्कि सार्थक कार्य अधिक ऊर्जा और शक्ति उत्पन्न करता है। विषाद को प्रभावहीन बनाने के लिए अपने अर्थहीन विचारों से निकलकर कुछ अर्थपूर्ण कार्य करना होगा। जिस प्रकार लम्बी बीमारी से क्षीण हुई मांसपेशियों में पुन: शक्ति का संचार करना होता है, उनका पुनर्बलन करना पड़ता है। इसी प्रकार विषाद से अवरुद्ध हुए ऊर्जा-पथ को पुनर्संचलन के योग्य बनाना चाहिए। ऊर्जा को किसी भी क्रिया के रूप में अनुप्रेरित करना आवश्यक है ताकि अन्दर दमन का जो परिपथ बन गया है, वह भंग हो।

योग में यह कहा गया है कि तमोगुण से उत्पन्न जड़ता का राजसिक क्रियाओं के द्वारा क्षय करने के बाद ही सात्त्विकता उत्पन्न होती है। विषाद से उबरने के लिए ऊर्जा को पुन: गतिशील बनाकर उसमें सृजनात्मकता लानी चाहिए। पहले तो यह सुनकर ही कठिन प्रतीत होता है, किन्तु अपना एक लक्ष्य बना लें और उसे छोटे-छोटे टुकड़ों में पूरा करने का प्रयास करें। जैसे, आप प्रतिदिन आसनों के अभ्यास में मात्र पाँच मिनट का समय देते हैं, इसमें केवल एक आसन भी हो सकता है। कुछ दिनों के बाद दूसरा आसन भी प्रारम्भ करें और अभ्यास का समय बढ़ायें। यदि लक्ष्य छोटा हो तो हतोत्साहित होने की सम्भावना कम होती है और प्रत्येक सफलता, भले ही वह कितनी भी छोटी क्यों न हो, आपको अधिक समर्थ और सक्षम बनाती है। आपका प्रत्येक चरण आपको लक्ष्य के निकट ले जाता है; लक्ष्य की प्राप्ति आपके आत्मविश्वास को बढ़ा देती है और आपके अन्दर मंगलमयी भावना का संचार करती है।

निराशा से बचने के लिए हमें अतीत को भुलाना होगा और भविष्य की सम्भावनाओं से दूर रहना होगा। अत्यन्त तुच्छ कार्यों का भी महत्त्व बढ़ जाता है, यदि वर्तमान में उन पर अपना पूरा ध्यान लगा दिया जाय, अपनी पूरी क्षमता

से उस कार्य को किया जाय। जब आप कोई भी कार्य कर रही हों–खाना, झाड़ू लगाना, बच्चे को खिलाना, तो प्रयास करें कि आपका ध्यान कहीं अन्य नहीं हो। किसी भी काम को आराम से करें, मानो इसके अतिरिक्त दूसरा कोई काम ही नहीं और तब आप यह देख कर आनन्दित होंगी कि ध्यानपूर्वक किया गया प्रत्येक कार्य आपके अस्तित्व की सृजनात्मक अभिव्यक्ति है।

सहायता लें

जब एक स्त्री विषादग्रस्त होती है तो उसे प्रतीत होता है कि उसके पास अन्य क्रियाकलापों, विशेषकर योग साधना के लिए कोई समय ही नहीं है। जब कोई व्यक्ति अवसाद में डूबा हुआ होता है तो उसे न कुछ प्रोत्साहित करता है और न ही आकृष्ट। इच्छाशक्ति भी जुटा पाना कठिन होता है, क्योंकि आन्तरिक शक्ति के जो स्रोत होते हैं वे बिखर कर नष्ट हो चुके होते हैं। ऐसे समय में हमें अपने निकट के ऐसे व्यक्ति की सहायता लेनी चाहिए जो हमें अपेक्षित बल प्रदान कर सके।

आपको अपने किसी परिजन या मित्र की ऊर्जा और इच्छाशक्ति का सम्बल लेने में, उनके साथ कुछ समय व्यतीत करने में और अपनी साधना के विषय में याद दिलाने के लिए उनसे निवेदन करने में लज्जा या संकोच का अनुभव नहीं होना चाहिये। आप अपने विषय में यह जानती हैं कि आपके मनोभाव प्राय: भ्रमित हो जाते हैं, कभी आप निरन्तर मिलने वाली प्रेरणा से खीझ जाती हैं और कभी उन्हीं पर क्रुद्ध हो जाती हैं जो आपकी सहायता करने का प्रयास करते हैं। यदि आपके सहायक बुद्धिमान् हैं तो वे आपको आगे बढ़ने के लिए प्रोत्साहित करते रहेंगे और यदि आप अपने प्रयासों पर अटल नहीं तो शीघ्र ही आप स्वयं आगे बढ़ने के लिए पर्याप्त रूप से ऊर्जस्वित हो जायेंगी।

योगाश्रम में कुछ दिनों तक रहना श्रेयस्कर होगा, अत्यन्त विषादयुक्त लोगों के लिए तो यह अनिवार्य ही है। आश्रम जीवन स्वत: आपकी दैनिक चर्या को नियमित कर देगा। सुबह जल्दी जागना, उपयुक्त आहार, कर्मयोग इत्यादि। यहाँ आप उन परिस्थितियों से मुक्त रहेंगी जो आपको मानसिक रूप से व्यथित करती हैं और यौगिक क्रियाओं को सीखने के क्रम में जीवन के प्रति आपका दृष्टिकोण बदलेगा, आपको नया जीवन सन्दर्भ प्राप्त होगा।

सुधार करना

निस्सहाय होने की प्रतीति विषाद को और गहन बना देती है, अनेक प्रयासों के बावजूद हम अपनी इच्छा से अपनी मनोदशा और भावनाओं से नहीं उबर पाते। यह योग का एक सबसे महत्त्वपूर्ण योगदान है कि वह हमें आश्वस्त करता है कि हम अपनी सहायता स्वयं कर सकते हैं। हमें अब निष्क्रिय शिकार नहीं बनना है। यदि आप विषाद के प्रति संवेदनशील हैं तो आपको इस तथ्य का सामना करना चाहिए कि समय-समय पर आपकी मनोदशा और ऊर्जा अवसाद में डूबेगी, किन्तु यदि आप योग को अपने जीवन का एक अंग बना लें तो आप उस अन्धकार पूर्ण अवधि को न्यूनातिन्यून करने और शीघ्रातिशीघ्र सन्तुलित हो पाने में सक्षम होंगे। योग का नियमित अभ्यास आपको आन्तरिक स्थिरता प्रदान करेगा जिससे भावनाओं को उद्वेलित करने वाली संवेदनाएँ क्षीण हो जायेंगी, और ऐसे अनुभव प्राप्त होंगे जिनके द्वारा कठिनाइयों का सामना करने के लिए एक रचनात्मक दृष्टिकोण का विकास होगा।

विषाद पर अन्ततः विजय प्राप्त करने के लिए आवश्यक है कि हम अपनी भावनाओं की गत्यात्मकता को पहचानें और उस अनुबन्धन को तोड़ डालें जो हमारे आस-पास की वस्तुओं के प्रति हमारी प्रतिक्रिया को नियंत्रित करती रही है। योग साधना हमें ऐसा साक्षी भाव प्रदान करती है जो हमें हमारे विचारों और क्रियाओं में संलग्न हुए बिना तटस्थ रूप से उन्हें परखने के योग्य बनाता है। साक्षी भाव हमारी सभी क्रियाओं के प्रति तटस्थ सजगता की प्रवृत्ति है, विषाद का कष्टपूर्ण दमन नहीं, बल्कि यह अपने विचारों और भावनाओं के प्रति निर्णयमुक्त, अभिज्ञानमुक्त अवस्था है—मात्र एक अनासक्त स्वीकृति है। यह प्रवृत्ति भावनात्मक उथल-पुथल के समय सम्बल देती है; आत्मज्ञान, शान्ति एवं सामंजस्य प्रदान करती है तभी हम स्वयं को अपनी दुर्बलताओं के साथ जोड़ने के बदले अपने वास्तविक व्यक्तित्व के सबल और समर्थ पक्ष से जुड़कर आगे बढ़ते हैं।

स्त्रियों को स्वयं अपने को परखकर अपनी प्रमुख आवश्यकताओं, इच्छाओं एवं प्रतिभाओं को पहचानना चाहिए, भले ही वे परम्परा के अनुरूप स्त्रीजन्य न हों। तत्पश्चात् उन्हें विशेष साँचे में ढाली गयी अपनी उन मनोवृत्तियों को भी पहचान लेना चाहिए जो उनके सुखों और संसार में उनके प्रभाव को क्षीण बना देती हैं। किसी को बाहरी मानदण्ड पर जीवन आधारित

करने की धारणा के स्थान पर आत्मज्ञान पर आधारित आत्म-नियंत्रक सिद्धान्त को लाना चाहिए। योग स्त्रियों को आत्म-परिचय प्राप्त करने का साधन प्रदान करता है, और साथ-ही आत्म-स्वीकृति एवं आत्म-परिचय के बीच समस्वरता लाता है। योग नयी इच्छाशक्ति के द्वारा बिखरे हुए मन को एकीकृत करता है। इसके फलस्वरूप ऐसी ऊर्जा उत्पन्न होती है जिसके द्वारा स्त्री नये ओज से ओत-प्रोत हो जाती है जो उसे चेतना की उच्चतम अवस्था तक पहुँचने का साधन प्रदान करता है।

सिर दर्द

स्त्रियों की आम तकलीफों में से एक है उनका सिर दर्द, और यही है उनकी क्षमा-याचना का आम बहाना– "ओह, नहीं, मुझे सिर दर्द है" या "शोर नहीं मचाओ, माँ को सिर दर्द है।"

सिर दर्द के विभिन्न कारण हो सकते हैं, जैसे– ट्यूमर (बहुत कम), साइनोसाइटिस (प्रायः), उच्च रक्तचाप, आँखों की तकलीफ, पाचन की गड़बड़ी और मुख्यतः तनाव।

हॉर्मोनों का असन्तुलन

चिकित्सकों ने यह पाया है कि सिर दर्द से पीड़ित व्यक्तियों में अधिकतर स्त्रियाँ होती हैं और माइग्रेन (अर्धकपारी) के पीड़ितों में दो तिहाई स्त्रियाँ ही होती हैं। इससे यह संकेत मिलता है कि स्त्री की शारीरिक संरचना में कुछ ऐसा तत्त्व है जिसमें सिर दर्द की पूर्ववृत्ति होती है।

कुछ स्त्रियों को ऋतुस्राव के पूर्व संकुलित कष्टार्त्तव या रजोनिवृत्ति के लक्षण के रूप में सिर दर्द झेलना पड़ता है। बारम्बार होने वाले सिर दर्द का सम्बन्ध मासिक चक्र से होता है– दर्द अधिकतर चक्र के बीच में होता है (लगभग डिम्ब क्षरण काल में) और या इस चक्र की समाप्ति पर (ऋतुस्राव के ठीक पहले)।

यह सन्देह का विषय है कि सिर दर्द का सीधा सम्बन्ध शरीर में हो रहे रासायनिक सन्तुलन में परिवर्तन से है। फिर भी ऐसा प्रतीत होता है कि हॉर्मोन स्तरों की अस्थिरता के कारण कुछ स्त्रियों में शारीरिक और मानसिक तनाव उत्पन्न हो जाता है और यह तो सर्वविदित है कि भावनात्मक उद्वेलन सिर दर्द को उत्प्रेरित करता है।

तनाव-जनित सरदर्द

व्यग्रता या तनाव अनेक रूपों में प्रकट हो सकता है और यह सरदर्द का एक प्रमुख कारण होता है। एक विशेष शारीरिक अवस्था में सिर दर्द प्राय: किसी भावनात्मक उद्वेलन के कारण ही आरम्भ होता है। विषाद, अत्यधिक चिन्ता, कार्य के प्रति व्यग्रतापूर्ण अभिवृत्ति, चिरकालिक नैराश्य और असन्तोष तनावपूर्ण सिरदर्द के प्रधान कारक हैं।

कुछ स्त्रियाँ देखेंगी कि उन्हें सिर दर्द की पूर्व चेतावनी मिल जाती हैं, जब वे चिड़चिड़ी और तुनकमिजाजी हो जाती हैं। कुछ स्त्रियों ने पाया है कि सिर दर्द के पहले और बाद वे बहुत रोती हैं। इस प्रकार का सिर दर्द जो सुस्ती और असहिष्णुता से होता है, प्राय: स्त्रियों के अपने और अपने जीवन के प्रति असन्तोष की स्थूल अभिव्यक्ति है। लाड़-प्यार या दवा से इस प्रकार के सिरदर्द को दूर नहीं किया जा सकता, बल्कि इस प्रकार की स्त्रियों को योग में पूर्णत: संलग्न होकर अपने जीवन को अधिक सन्तोषदायक आधार और नया अर्थ देने की आवश्यकता है।

माइग्रेन (अर्धकपारी)

माइग्रेन तीव्रतम प्रकार का सिर दर्द है जो सिर के अन्दर की रक्त वाहिनियों में प्रसरण-संकुचन प्रणाली के अस्तव्यस्त होने के कारण होता है। यह स्वचालित स्नायु तन्त्र के द्वारा नियन्त्रित होता है। रक्त वाहिनियों में उत्पन्न होने वाली यह अस्थिरता अत्यधिक भावनात्मक तनाव के परिणामस्वरूप होती है।

माइग्रेन का यह विशेष लक्षण है कि वह सिर के आधे हिस्से में होता है और तीन दिनों तक रहता है। यह प्राय: एक अस्वस्थता की मनोभावना के साथ होता है जो घण्टों तक चलता रहता है जब तक उल्टी नहीं हो जाती। माइग्रेन से पीड़ित स्त्रियों को आँखों के आगे बिजली की चमक, धब्बे और रेखायें दिखाई देती हैं। उनके लिए तीव्र प्रकाश और कोलाहल असहनीय होता है।

संरचनात्मक कारक

माइग्रेन के वंशागत होने के प्रमाण भी मिले हैं। यह स्पष्ट रूप से पाया गया है कि माइग्रेन से पीड़ित व्यक्तियों को बचपन में यात्रा के क्रम में मिचली आती थी और पेट में बारम्बार विचित्र-सा दर्द होता था। माइग्रेन प्राय: यौवनारम्भ के समय और कभी-कभी जीवन के उत्तरार्द्ध में प्रारम्भ होता है। चूँकि माइग्रेन पुरुषों की

अपेक्षा स्त्रियों में अधिक होता है, इससे ऐसा लगता है कि स्त्री के हॉर्मोन चक्र की अस्थिरता इस समस्या का कारण हो सकती है। संतुलित आसनों के नियमित अभ्यास इस प्रकार की समस्याओं को दूर कर सकते हैं। सूर्य नमस्कार, भुजंग आसन, धनुरासन, प्रणामासन एवं सर्वांगासन इसके लिए उपयुक्त हैं।

आहार

कुछ लोग स्वाभाविक रूप से कुछ विशेष रसायनों एवं भोजनों के प्रति संवेदनशील (एलर्जिक) होते हैं, जिन्हें ग्रहण करने पर वे एलर्जिक सिर दर्द से पीड़ित हो जाते हैं। इस तथ्य पर ध्यान नहीं दिया जाता, क्योंकि जब सामान्य रूप से वही भोजन दूसरे लोग ग्रहण करते हैं तो उसका कोई प्रतिकूल प्रभाव नहीं होता। फिर भी यह तथ्य स्पष्टत: सत्यापित हो चुका है कि जिन लोगों में माइग्रेन की प्रवृत्ति हो उन्हें वे विशेष भोजन नहीं ग्रहण करने चाहिए। इनके अन्तर्गत चॉकलेट, कोकोकोला, सूअर का मांस, अण्डे, कुछ विशेष समुद्री मछलियाँ और मदिरा आदि हैं। कुछ लोगों को तला हुआ भोजन, मक्खन, दूध और कॉफी को भी इस सूची में मिला लेना चाहिए, और कुछ लोगों को तो नींबू, नारंगी तथा टमाटर (सभी अति अम्लीय हैं) का भी निषेध करना चाहिए।

यौगिक उपचार के क्रम में अनेक लोगों को शंख प्रक्षालन के साथ सादे भोजन से लाभ हुआ है। प्रचुर अनाज (गेहूँ, चावल, रागी, जौ), दाल, विभिन्न प्रकार के फल और सब्जियों से परिपूर्ण शाकाहारी भोजन सबसे अधिक लाभप्रद होता है।

भावनात्मक कारण

प्रेक्षणों से पता चला है कि माइग्रेन से पीड़ित होने वाले व्यक्ति प्राय: विद्वान् होते हैं, किन्तु उनमें जीवन के प्रति अत्यधिक सम्मोहपूर्ण झुकाव की प्रवृत्ति होती है। ये लोग प्राय: मीनमेख करने वाले और सदैव अपेक्षा रखने वाले होते हैं। उनके लिए अपनी और दूसरों की त्रुटियों को सहन करना कठिन होता है। अत्यधिक भय और चिन्ता या नैराश्य की सतत् अनुभूति उनकी इस प्रवृत्ति को प्राय: बढ़ा देती है।

सिर दर्द होने के पूर्व योगनिद्रा के द्वारा क्रमिक शिथिलीकरण संचित तनाव को दूर करता है। कर्मयोग के भाव के साथ किसी भी कार्य को करने पर तनावमुक्त और अधिक सहनशील दृष्टिकोण का विकास होता है।

योगोपचार

माइग्रेन के लिए योगोपचार के अन्तर्गत जल नेति, कुंजल क्रिया और योगनिद्रा के साथ आसनों का क्रमबद्ध कार्यक्रम आता है। एक सुयोग्य योग उपचारक के सुझाव के अनुसार ये अभ्यास तब किये जाने चाहिए जब शिरोवेदना के लक्षण परिलक्षित होने लगें।

सिर दर्द अपने आगमन के पूर्व प्राय: चेतावनी देता है। ऐसे समय पर जल नेति एवं योगनिद्रा उसे रोकने के लिए पर्याप्त होंगी। नेति न केवल नाक को साफ करती है, बल्कि चेहरे और सिर के स्नायुओं पर इसका उपशामक प्रभाव भी होता है।

जब सिर दर्द प्रारम्भ हो जाता है तो उल्टी करने से कुछ आराम होता है, इसलिए प्रथम अवसर पर ही कुंजल क्रिया कर लेनी चाहिए। भोजन के पश्चात् भी यह (व्याघ्र क्रिया) किया जा सकता है। घण्टों मिचली के कष्ट में पड़े रहने से अच्छा है कि कुंजल क्रिया कर ली जाये। लम्बे समय तक मिचली के कारण तनावयुक्त शिरोवेदना के बाद दुर्बलता का अनुभव होता है।

अन्य प्रकार के सर दर्द

अब तक माइग्रेन के जिन भावनात्मक कारणों के वर्णन किये जा चुके हैं वे आँखों के कष्ट, साइनोसाइटिस और उच्च रक्तचाप से होने वाली तथा अन्य प्रकार की शिरोवेदनाओं पर भी लागू होते हैं। कोई भी शारीरिक समस्या तनाव को बढ़ा देती है। उपचार के किसी भी कार्यक्रम में योगनिद्रा या ध्यान को किसी भी रूप में अनिवार्यत: सम्मिलित किया जाना चाहिए, किन्तु उपचार की समाप्ति पर इसे छोड़ना नहीं चाहिए, बल्कि इसे किसी भी रचनात्मक योगदर्शन का एक अंग बनाया जाना चाहिए।

साइनस के कारण सर दर्द

नाक के बन्द या बहते रहने के साथ प्राय: सिर में भारीपन का अनुभव होता है जो आँखों के ऊपर और नीचे साइनस भागों में सूजन के कारण होता है और छींकने, खाँसने या आगे झुकने पर अधिक तीव्र हो जाता है। इस वेदना से मुक्ति के लिए नाक में जमे कफ का साफ होना अनिवार्य है, क्योंकि तभी साइनस की जकड़न दूर होगी और नाक की झिल्लियों एवं साइनस मार्गों को आराम मिलेगा।

नेति– इस सन्दर्भ में नाक के प्रक्षालन की विभिन्न विधियाँ, जिन्हें नेति कहते हैं, सुसंगत हैं। नाक को नमक मिले हुए गुनगुने पानी से धोने की प्रक्रिया जल नेति कहलाती है; इसके अन्तर्गत एक नासिका छिद्र से पानी डाल कर दूसरे से निकाला जाता है। इसके बाद एक विशेष श्वसन प्रक्रिया से नाक को पूर्णत: सुखा लिया जाता है। साइनोसाइटिस के लिए व्यक्तिगत दशा के आधार पर एक से तीन मिनट तक जल नेति करते समय पानी निकालने की मुद्रा पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए। जल नेति का अभ्यास प्रतिदिन करना चाहिए, यदि जकड़न अधिक है तो दिन में दो या तीन बार भी इसे किया जा सकता है। कुछ दिनों के बाद नाक खुली रखने के लिए दिन में एक बार नेति करना पर्याप्त होगा।

नाक के निकले हुए कफ के रंग और गन्ध से संक्रमण की सम्भावना का अनुमान लगाया जा सकता है। यदि संक्रमण हो तो स्वमूत्र नेति का अभ्यास करना चाहिए। इसके लिए भी प्रक्रिया समान है, किन्तु इसमें नमकीन जल के स्थान पर सुबह के पहले स्वमूत्र का उपयोग किया जाता है।

साइनस के चिरकालिक (क्रॉनिक) अवरोध को दूर करने के लिए सूत्र नेति का अभ्यास लाभप्रद होगा। इसके लिए मोमयुक्त धागा या रबर की पतली नली को एक नासिका छिद्र से प्रवेश कराया जाता है और मुँह से बाहर निकाला जाता है।

एक अनुभवी शिक्षक की देख-रेख में ही इन सभी क्रियाओं को सीखना चाहिए, जो आपकी आवश्यकता के अनुसार यह भी बता सकें कि आपको इनका कब और कितना अभ्यास करना है।

आसन एवं प्राणायाम– नेति के साथ आसन एवं प्राणायाम का एक संक्षिप्त कार्यक्रम भी जोड़ा जाना चाहिए। सूर्यनमस्कार के कुछ चक्र बन्द नाक को खोल देंगे और पीछे झुककर किये जाने वाले आसन उसके प्रभाव को बढ़ा देंगे। उत्क्रमित होकर किये जाने वाले आसन तब तक नहीं किये जाने चाहिए जब तक जकड़न दूर न हो जाये। प्राणायामों में भस्त्रिका (दोनों नासिका छिद्रों को खुला रखकर) तथा नाड़ीशोधन अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं।

आहार– रात्रि में सात बजे के पूर्व भोजन करने से कफ की जकड़न को कम करने में मदद मिलती है। रात्रि के भोजन में भारी आहार, तला हुआ या तेलीय आहार, दूध से बनी हुई वस्तुओं (पनीर, दूध, दही, मट्ठा) से परहेज

करें। प्रसंस्कारित भोजन (प्रोसेस्ड फूड) और मैदे से तैयार की गयी वस्तुएँ भी नहीं ग्रहण करनी चाहिए। अन्य भोजन के समय आप सामान्य आहार ले सकती हैं, किन्तु दूध से बनी वस्तुओं का कम-से-कम प्रयोग करें और सब्जियाँ प्रचुर मात्रा में लें।

पाचनक्रिया जनित सिरदर्द

यदि भोजन के आधे-एक घण्टे के बाद सिर दर्द प्रारम्भ हो तो त्रुटिपूर्ण पाचन को इसका कारण माना जा सकता है। इस तरह के सिर दर्द के साथ उदर में भारीपन का अनुभव होता है और प्राय: चेहरे या आँखों में सूजन भी हो जाती है। अम्लता और कब्जियत इस प्रकार के सिर दर्द के पूर्व कष्ट का कारण बनते हैं।

आहार– बिना तेल-घी का सादा भोजन और प्रचुर मात्रा में सब्जी के साथ अधिक जल लाभप्रद होगा। शाकाहारी भोजन सर्वोत्तम है।

योगोपचार– दो सप्ताह तक लगातार एक दिन कुंजल क्रिया और दूसरे दिन शंखप्रक्षालन का अभ्यास करें। धीरे-धीरे इस अभ्यास को कम कर सप्ताह में एक दिन कुंजल क्रिया और दूसरे दिन शंखप्रक्षालन का अभ्यास करें। पाचन को सुधारने वाले आसनों के साथ जल नेति का अभ्यास प्रतिदिन किया जाना चाहिए। प्रारम्भ के कुछ सप्ताहों में व्युत्क्रमित होकर किये जाने वाले आसन नहीं करने चाहिए।

आँखों का तनाव

यदि आप समझती हैं कि आँखों का तनाव ही शिरोव्याधि का कारण है तो किसी योग्य चिकित्सक से जाँच करवायें। उसके सुझावों के अतिरिक्त प्रतिदिन जल नेति और आँखों के व्यायाम करें। नाड़ीशोधन एवं उत्क्रमित होकर किये जाने वाले आसनों से भी लाभ होगा।

प्रतिदिन त्राटक के अभ्यास के द्वारा आँखों को बिना किसी तनाव के अच्छी तरह देखने के लिए प्रेरित किया जाता है। त्राटक में किसी वस्तु को सीधे और तनावहीन होकर एकटक देखा जाता है, इसके लिए अण्डी के तेल की लौ पर अभ्यास की सलाह दी जाती है। त्राटक के द्वारा एकाग्रता का भी विकास होता है, जिसके परिणामस्वरूप तनावमुक्त और शान्तिप्रद अवस्था प्राप्त होती है।

दो सरदर्दों के अन्तराल में अभ्यास

जब तक वेदना प्रारम्भ नहीं हो जाये तब तक योग के अभ्यास स्थगित नहीं करें। यद्यपि नेति और योगनिद्रा ही सम्भावित सिर दर्द को दूर कर सकती हैं, फिर भी नियमित रूप से दैनिक अभ्यास इस समस्या को पूरी तरह रोक सकते हैं। योग का दैनिक अभ्यास शिरोवेदना को दो प्रकार से दूर कर सकता है। सर्वप्रथम उसके लक्षणों की तीव्रता कम हो जाती है और फिर धीरे-धीरे वेदनाओं का अन्तराल तब तक लम्बा होता जाता है जब तक वह पूरी तरह समाप्त न हो जाये। अन्ततः योग सिर दर्द उत्पन्न करने वाले संरचनात्मक एवं भावनात्मक कारणों का प्रतिकार करता है। इसमें इतनी क्षमता होती है कि यह आपके दमित जीवन को प्रेरणापूर्ण जीवन में रूपान्तरित कर दे।

अभ्यास-कार्यक्रम

माइग्रेन

आसन – सूर्य नमस्कार (3–6 चक्र), शवासन, वज्रासन (1 मिनट), शशांकासन (2–3 मिनट), सुप्त वज्रासन (1 मिनट), मार्जारी आसन (पन्द्रह बार), प्रणामासन (तीन मिनट), शवासन।

प्राणायाम – नाड़ीशोधन प्राणायाम (दस चक्र)।

षट्कर्म – लघु शंखप्रक्षालन (एक महीने तक सप्ताह में दो बार, उसके बाद सप्ताह में एक बार), कुंजल क्रिया (एक सप्ताह तक प्रतिदिन, फिर सप्ताह में दो बार), जल नेति (प्रतिदिन)।

अन्य – योगनिद्रा (तीस से पैंतालीस मिनट)।

आहार – सावधानीपूर्वक।

तीव्र सिर दर्द के लिए

आसन – प्रणामासन (3–5 मिनट)।

षट्कर्म – कुंजल क्रिया (यदि पेट खाली नहीं है, तब भी करनी है) जल नेति, लघु शंखप्रक्षालन (अगली सुबह)।

अन्य – योगनिद्रा।

साइनोसाइटिस

आसन – सूर्य नमस्कार (6 चक्र), शवासन, कन्धरासन (एक मिनट), भुजंगासन (एक मिनट), धनुरासन (तीस सैकण्ड), पश्चिमोत्तानासन (दो मिनट)।

प्राणायाम – भस्त्रिका प्राणायाम (पाँच चक्र), नाड़ीशोधन प्राणायाम (दस से बीस चक्र)।

षट्कर्म – जल नेति (प्रतिदिन), सूत्र नेति (सप्ताह में दो बार)।

आहार – सतर्क सुनिश्चित आहार।

पाचन क्रिया सम्बन्धी सिरदर्द

आसन – नौकासन (5), पवनमुक्तासन (प्रत्येक ओर 5 – 5 बार), झूलना-लुढ़कना (20), चक्की चालनासन (10), उष्ट्रासन (1 मिनट), मार्जारी आसन (15), वज्रासन (भोजनोपरान्त)।

प्राणायाम – भस्त्रिका प्राणायाम (5 चक्र)।

षट्कर्म – अग्निसार क्रिया (50 चक्र), जल नेति (प्रतिदिन), कुंजल क्रिया (दो सप्ताह तक एक-एक दिन के अन्तराल पर, फिर सप्ताह में एक बार), लघुशंखप्रक्षालन (एक-एक दिन के अन्तराल पर दो सप्ताह, फिर बाद में सप्ताह में एक दिन)।

अन्य – योगनिद्रा (तीस मिनट)।

आहार – सुनिश्चित।

श्वेत प्रदर

सार्वभौमिक स्तर पर स्त्रियों में विनयशीलता का गुण पारम्परिक रूप से प्रशंसित होता आया है। कोई संवेदनशील एवं सन्तुलित स्त्री इसे अस्वीकार नहीं कर सकती। किन्तु वास्तव में उसकी यह झूठी विनयशीलता भय और अज्ञान से उपजी है। लम्बे समय तक स्त्रियाँ अपने शरीर के सम्बन्ध में अज्ञानपूर्ण और भ्रमित कर देने वाली मनगढ़न्त बातों का शिकार होती आई हैं। विनयशीलता और स्पष्टवादिता में कोई विरोध नहीं है। स्पष्टवादिता के द्वारा ही हम अन्धविश्वास के जाल से निकल कर अपने शरीर के प्रति विश्वास उत्पन्न कर सकते हैं जो हमारे स्त्रीत्व का सच्चा आधार है।

ऐसी अनेक स्त्रियाँ ही इसके महत्त्व को समझ सकती हैं जिन्होंने कभी-न-कभी श्वेतप्रदर (योनि से होने वाले अत्यधिक स्राव) जैसी स्त्रीजन्य समस्या के लिए परामर्श की अपेक्षा की होगी। केवल जानकारी और खुलेपन के अभाव में अनेक स्त्रियाँ इस वस्तुत: नियंत्रणीय रोग के कारण चिन्तित, लज्जित और भयभीत रहती हैं।

स्वाभाविक क्या है

पहले तो अनेक स्त्रियाँ समझती हैं कि उन्हें श्वेत प्रदर है, जबकि ऐसा नहीं है। यह जानना आवश्यक है कि एक विशेष मात्रा में होने वाला योनि स्राव सामान्य और स्वास्थ्य के अनुकूल होता है। योनि की दीवारों में छोटी-छोटी ग्रन्थियाँ होती हैं जो योनि को स्वच्छ और चिकना बनाये रखने के लिए झिल्लीदार तरल पदार्थ स्रवित करती रहती हैं। यह स्राव योनि के संवेदनशील ऊतकों को सूखने से बचाता है और अवांछित जीवाणुओं को प्रक्षालित करता रहता

है। आँखों की तरह योनि भी स्वयं स्वच्छ होती रहती है। जिस प्रकार हर बार पलक झपकने से आँखें धुलती रहती हैं, उसी प्रकार योनि में निरन्तर होने वाला आन्तरिक स्राव उसे स्वच्छ रखता है।

योनि का स्वस्थ स्राव प्राय: पारदर्शक या हल्का उजला होता है, इसमें चिकनाहट भी हो सकती है। किन्तु मासिक चक्र की अवस्थाओं के साथ इसमें परिवर्तन होता है। कभी तो यह पानी जैसा पतला होता है, कभी बिल्कुल उजला गाढ़ा और जेली की तरह चिपचिपा होता है। स्राव की मात्रा विभिन्न समयों और स्त्रियों पर निर्भर होती है। यौवनारम्भ के पूर्व भी बालिकाओं में यह स्राव हो सकता है। यदि योनि स्वस्थ है तो उसमें न कोई गन्ध होती है और न कोई जलन, योनि के आसपास के क्षेत्र में भी लाली नहीं होती है।

संक्रमण के साथ भ्रमित नहीं होना

योनि के स्राव का अतिरेक किसी प्रकार के असन्तुलन का सूचक है, किन्तु निश्चित रूप से यह संक्रमण भी नहीं; फिर भी इस प्रकार की अत्यधिक आर्द्रता योनि में संक्रमण के लिए आदर्श अवस्था उत्पन्न कर देती है।

जिस प्रकार त्वचा पर, मुँह में और आँतों में जीवाणु होते हैं, उसी प्रकार सामान्य रूप से स्वस्थ योनि में भी जीवाणु उपस्थित होते हैं। इनमें से कुछ लाभप्रद जीवाणु होते हैं जो योनि के आसपास के स्थान को अम्लीय बनाये रखते हैं और योनि में अत्यधिक विकसित होने वाले हानिकारक जीवाणुओं का नाश करते रहते हैं। कभी-कभी यह स्वाभाविक सन्तुलन अव्यवस्थित हो जाता है और वह क्षेत्र संक्रमित हो जाता है। किन्तु श्वेतप्रदर को योनि का संक्रमित होना नहीं समझना चाहिए। संक्रमण की अवस्था में न केवल असामान्य स्राव होता है, बल्कि उसके साथ योनि में थोड़ी खुजली और उसके आसपास जलन तथा प्राय: बारम्बार मूत्रत्याग की आवश्यकता का भी अनुभव होता है। सर्वप्रथम संक्रमण पीठ के निचले हिस्से में दर्द, जाँघ और पेट की ग्रन्थियों में ऐंठन और सूजन के रूप में परिलक्षित होता है।

संक्रमण का पहला संकेत स्राव के रूप-रंग से ही मिलता है। अनियमित स्राव का उल्लेख 'अनविशेष योनि-शोथ' (नान स्पेसिफिक बेजाइनाइटिस) के रूप में किया जाता है। इसका अर्थ यह हुआ कि संक्रमण तो है, किन्तु चिकित्सक नहीं समझ पा रहे हैं कि वह है क्या। स्राव, उजला, पीला या रक्तकणों के साथ भी हो सकता है। कुछ स्थितियों में योनि में सूजन हो सकती

है या उस पर मवाद की परत भी जम सकती है। संक्रमण के दो सर्व सामान्य स्रोत हैं – मोनीलिया और ट्राइकोमोनास, जो दोनों ही स्वस्थ शरीर में सामान्य रूप से उपस्थित होते हैं।

मोनीलिया या यीस्ट संक्रमण होने पर स्राव गाढ़ा और उजला होता है जो देखने में दही के समान होता है। इससे पावरोटी के पकने जैसी गन्ध आती है। इससे सम्बद्ध होने के कारण स्त्री को पावरोटी की गन्ध से भी मिचली हो सकती है। मोनीलिया का संक्रमण योनि और भग में अत्यधिक खुजली और जलन पैदा करता है।

ट्राइकोमोनास पुरुष और स्त्री, दोनों के शरीरों में पाया जाता है। लगभग पचास प्रतिशत स्त्रियों की योनि में यह जीवाणु बिना कोई तकलीफ दिये उपस्थित रहता है। जब ट्राइकोमोनास की संख्या अत्यधिक बढ़ जाती है तो तरल, पीले-हरे या भूरे रंग का झागदार पदार्थ निस्सरित होने लगता है, जो अत्यन्त दुर्गन्धयुक्त होता है। योनि की जलन के कारण संभोग के पश्चात् यह प्राय: अधिक बढ़ जाता है। गन्दे तौलिए, जाँघिये या शौचालय के गन्दे सीट से भी यह संक्रमण हो सकता है।

योनि संक्रमण बहुत सामान्य है। शायद ही कोई स्त्री हो जो जीवन में एक बार इस प्रकार के संक्रमण से संक्रमित नहीं हुई हो। इन रोगों को सिफिलिस या गोनोरिया जैसे सांघातिक रोगों की श्रेणी में नहीं रखा जाना चाहिए, और इनके कारण लज्जित या अवमानित होने का भी कोई कारण नहीं है। स्त्रियों के यौन सम्बन्धी तथ्यों को गुप्त और अन्धविश्वासपूर्ण बना दिया गया है, जिसके कारण वे संक्रमण की स्थिति में सहायता लेने से वंचित रह जाती हैं, जिसका अनर्थकारी परिणाम होता है। यदि समय पर इलाज हो जाये तो ये योनि रोग नगण्य होते हैं; किन्तु यदि उन्हें उपेक्षित छोड़ दिया जाये तो उनका इलाज कठिन हो जाता है, ये जटिल रोगों का रूप ले लेते हैं और बंध्यता की सीमा तक अंगों को क्षतिग्रस्त कर देते हैं। गर्भावस्था में यदि इन्हें उपेक्षित छोड़ दिया जाता है तो बच्चे पर भी इसका कुप्रभाव पड़ता है।

उचित इलाज नहीं करवा पाना कायरता तो है ही, संकटपूर्ण भी है। अनधिकृत चिकित्सकों से इलाज करवा कर या तावीज पत्थर लेकर अपने स्वास्थ्य के साथ समझौता नहीं करना चाहिए। वे मनोवैज्ञानिक स्तर पर आश्वासन दे सकते हैं, किन्तु इससे संक्रमण में अन्तर नहीं आता है, वह बढ़ता ही जाता है। जब आपका पाचन संस्थान संक्रमित हो जाता है और दस्त

के रूप में मलद्वार से अत्यधिक स्राव उत्सर्जित होता है, तब आप लज्जित नहीं होतीं, बल्कि एक चिकित्सक से परामर्श लेना स्वाभाविक समझती हैं। योनि स्राव और प्रजनन प्रणाली सम्बन्धी किसी अनियमितता के प्रति भी आपकी यही मनोवृत्ति होनी चाहिए। सुयोग्य चिकित्सा सहायता के साथ आवश्यक यौगिक अभ्यासों से शीघ्र आराम और स्वास्थ्य लाभ होगा।

श्वेत प्रदर

सामान्य सुरक्षात्मक स्राव और योनि संक्रमण के बीच असंक्रामक, वेदनाहीन, किन्तु अत्यधिक स्राव का एक रोग है - श्वेत प्रदर। यह सामान्य योनि स्राव के समान है, किन्तु इसकी मात्रा बहुत अधिक होती है। नियमित स्राव का उजला या पीला धब्बा आपके अन्दर के कपड़ों में लग सकता है जो प्राय: सूख जाता है और इससे कोई तकलीफ नहीं होती। किन्तु यदि आपके कपड़ों में धब्बा लगने लगे, आपको सदा गीलेपन का अनुभव हो और आपको जाँघिया या अन्दर के अन्य कपड़े बदलने पड़ें तो निस्सन्देह स्राव अत्यधिक है।

कुछ स्त्रियों को तो इतना अधिक स्राव होता है कि ऋतुस्राव नहीं होने के बावजूद उन्हें सैनिटरी नैपकिन का उपयोग करना पड़ता है। इसके साथ पीठ में दर्द, जाँघों में जड़ता या उदर में भारीपन का अनुभव हो सकता है। ये संक्रमण के पूर्व-संकेतक हैं, किन्तु इनकी तीव्रता कम होती है। इसके अतिरिक्त संक्रमण की स्थिति में बारम्बार मूत्र त्याग की आवश्यकता का अनुभव होता है, जबकि श्वेतप्रदर उसे कम कर देता है।

श्वेतप्रदर असामान्य रूप से स्राव का अतिरेक है, किन्तु वह स्वच्छ होता है और योनि क्षेत्र में इसके कारण न खुजली होती है और न सूजन होती है।

पूर्वप्रवृत्त कारण

श्वेतप्रदर गर्भाशय ग्रीवा पर हुए घाव का प्रथम संकेत हो सकता है। ऐसा अनुमान लगाया गया है कि प्राय: 95% स्त्रियों को संतानोत्पत्ति के क्रम में कभी इस प्रकार का घाव हो जाता है, जिसकी उचित जाँच आवश्यक है। सामान्यत: चिकित्सक श्रोणि प्रदेश की पूरी जाँच करते हैं और 'पैप स्मीयर' (एक परीक्षण) भी लेते हैं।

अधिकांशत: हमारा शरीर श्वेदप्रदर के माध्यम से यह संकेत देता है कि हम दुर्बल हो गये हैं; नींद की कमी, उपयुक्त आहार का अभाव या स्नायुओं

में तनाव के कारण हमारी शारीरिक प्रतिरोधक शक्ति क्षीण हो गयी है। जो स्त्रियाँ मधुमेह या यक्ष्मा से पीड़ित हैं वे विशेष रूप से इसकी चपेट में आ जाती हैं। हॉर्मोनों का असन्तुलन भी अत्यधिक स्राव का एक अति सामान्य कारण है। गर्भनिरोधक गोलियाँ या IUD (लूप, कॉपर टी इत्यादि) का प्रयोग करने वाली स्त्रियाँ भी इसके प्रति संवेदनशील होती हैं। ऋतुस्राव के पूर्व या पश्चात् गर्भावस्था या रजोनिवृत्ति की अवधि में हॉर्मोन स्तरों में स्वाभाविक परिवर्तन के कारण भी यह समस्या उत्पन्न हो सकती है।

श्वेतप्रदर में आहार की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। अधिक दूध, मैदा और पॉलिश किये हुए चावल को खाने से योनि के सामान्य स्राव के साथ कफ जैसा पदार्थ निस्सरित होता है। अधिक मसाले और तेल वाले भोजन तथा चीनी की प्रचुरता भी इस समस्या को बढ़ा देते हैं। आहार में संसाधित चीनी और परिष्कृत शर्करा की प्रचुरता भी योनि संक्रमण के लिए अनुकूल स्थिति उत्पन्न कर देती है, क्योंकि इनके द्वारा योनि क्षेत्र के अम्लीय स्तर में परिवर्तन आ जाता है जो हानिकारक जीवाणुओं को प्रचुर मात्रा में उत्पन्न होने में सहायक है। अनेक स्त्रियों ने सूचित किया है कि केवल आहार को अधिक सन्तुलित बना देने से योनि स्राव में कमी आ गई।

श्वेत प्रदर प्राय: कब्जियत के साथ होता है और यह सर्वज्ञात है कि कब्जियत केवल भोजन की गड़बड़ी से नहीं, बल्कि चिन्ता और तनाव से भी होती है। जब हम निरन्तर तनाव में रहते हैं तो हम इसके इतने आदी हो जाते हैं कि चेतन स्तर पर हमें इसका अनुभव ही नहीं होता। हम यह समझ बैठते हैं कि हम तनावमुक्त हैं। यद्यपि शरीर इससे प्रभावित होता रहता है और अनुकम्पी स्नायु तन्त्र क्रियाशील होकर ऊर्जा को पाचन-तन्त्र से दूर ले जाता है जिससे हृदय की गति बढ़ जाती है, आदि-आदि। इन परिस्थितियों में आसानी से कब्जियत हो जाती है। तनाव की प्रतिक्रिया एड्रिनल ग्रन्थि को प्रभावित करती है। एड्रिनल ग्रन्थि द्वारा उत्पन्न हॉर्मोनों का असन्तुलन भी श्वेत प्रदर का कारण हो जाता है, और इस प्रकार कब्जियत और श्वेत प्रदर का एक-दूसरे के साथ लगाव स्पष्ट होता है।

इसमें कुछ भावनात्मक कारण अचेतन भी हो सकते हैं। स्त्रियों का अपने शरीर के प्रति नकारात्मक मनोभाव रहता है जिसे स्वीकार करना कठिन होता है। यह स्थिति इतनी दूर तक जाती है कि इन नकारात्मक प्रवृत्तियों को कभी चेतन स्तर पर स्वीकृति ही न मिले। प्रजनन अंगों के सम्बन्ध में यह तथ्य

विशेष रूप से सत्य है जिसका अब भी प्राय: उल्लेख नहीं किया जाता। शायद इस प्रकार के अचेतन स्तर के सन्देह स्वयं को श्वेत प्रदर के रूप में प्रकट करते हैं, शायद अत्यधिक स्राव स्वयं के शुद्धिकरण का एक प्रतीक हो।

व्यक्तिगत स्वच्छता

नियमपूर्वक एवं कड़ी व्यक्तिगत स्वच्छता श्वेत प्रदर के इलाज का पहला चरण है। यह केवल संक्रमण का निवारण और बेचैनी को कम नहीं करता, बल्कि मन को भी आराम पहुँचाता है। मलद्वार और भग को नियमित रूप से धोया करें और भग को पोंछ कर सुखा लें और इसे सूखा ही रखने का प्रयास करें। कई योनि संक्रमण मलद्वार के जीवाणुओं के योनि तक फैल जाने के कारण होते हैं, इसलिए मलद्वार को हमेशा सामने से पीछे की ओर धोया करें। शौचालय में पूर्वी प्रचलन के अनुरूप उकडू होकर बैठें – यह न केवल अधिक उपयुक्त है, बल्कि अधिक स्वच्छ भी है।

नाइलॉन के जाँघिये इत्यादि का प्रयोग न करें। नाइलॉन में नमी और गर्मी, दोनों रह जाती हैं जो हानिकारक जीवाणुओं को पनपने के लिए अनुकूल वातावरण प्रदान करती हैं। केवल ढीले-ढाले सूती जाँघिये पहनें या जब स्राव अधिक नहीं हो तो बिल्कुल नहीं पहनें। अनेक ऐसे अवांछित जीवाणु हैं जो हवा के सम्पर्क से ही मर जाते हैं। इससे योनि क्षेत्र स्वच्छ और शीतल भी रहता है।

योनि प्रक्षालन

योनि के आन्तरिक भाग को डूश करने (धोने की एक प्रक्रिया) से भी संक्रमण के निवारण में मदद मिल सकती है, बशर्ते कि बहुत अधिक न किया जाये। स्वस्थ योनि की अम्लता संक्रमण को अवरुद्ध करती है। चूँकि रक्त क्षारीय होता है, इसलिए ऋतुस्राव की अवधि में अम्ल की सान्द्रता, पी. एच. स्तर कम हो जाता है और संक्रमित होने का भय बढ़ जाता है। ऐसे समय में किंचित अम्लीय घोल से डूश करने पर अम्ल की सान्द्रता सन्तुलित हो जायेगी और इसका निवारक महत्त्व भी होगा। आधा लीटर गुनगुने पानी में चाय के एक चम्मच सोडाबाइकार्बोनेट या एक लीटर गुनगुने पानी में चाय के एक चम्मच सिरका से उपयुक्त घोल प्राप्त हो सकता है। अनेक स्त्रियाँ संक्रमण का इलाज करने के लिए योनि के आन्तरिक हिस्से और भग में दही का लेप लगाने का

परामर्श भी देती हैं। यह तब तक प्रभावकारक प्रतीत होता है, जब तक संक्रमण प्रारम्भिक स्तर पर ही हो और उसके किंचित लक्षण ही परिलक्षित हुए हों।

यद्यपि उत्तम घोल से किया गया डूश भी श्वेतप्रदर के लिए पर्याप्त नहीं होता, फिर भी यह कुछ हद तक आश्वस्त कर सकता है। हमें याद रखना चाहिए कि योनि स्वत: प्रक्षालित होती रहती है और श्वेत प्रदर वस्तुत: एक प्रकार का निरन्तर होने वाला डूश है। सामान्य जल के अतिरिक्त किसी अन्य पदार्थ से योनि को लगातार धोते रहने पर हम स्वाभाविक सुरक्षात्मक प्रक्रिया को खतरे में डाल देते हैं। अत्यधिक डूश करने पर पहले से ही अति क्रियाशील ग्रन्थियाँ और अधिक उद्दीपित हो जाती हैं, और इसके साथ ही संकोच उत्पन्न हो जाता है या अपने प्रति संकोच की भावना आ जाती है। ये दोनों ही समस्या को गम्भीर बना देते हैं।

सन्तुलन का पुन:प्रतिष्ठापन

तथ्य यही है कि श्वेत प्रदर सामान्यत: प्राणशक्ति की कमी तथा हॉर्मोनों के असन्तुलन के कारण होता है। स्त्रियों के लिए ये दोनों इस तरह एक-दूसरे से जुड़े हुए हैं कि इन्हें एक ही समस्या के दो पक्षों के रूप में देखा जा सकता है। यौगिक अभ्यास निरन्तर होने वाले अत्यधिक स्राव से निश्चित रूप से मुक्ति दिला सकते हैं।

स्त्री के सम्पूर्ण प्रजनन तन्त्र को सबल और सामंजस्यपूर्ण बनाने के लिए योगासन अमूल्य हैं, क्योंकि ये उदरीय एवं श्रोणीय अंगों को सीधे प्रभावित करते हैं तथा ग्रन्थीय प्रणाली पर इनका सन्तुलनकारी प्रभाव पड़ता है। श्वेत प्रदर के लिए उपयुक्त कार्यक्रम के अन्तर्गत सूर्यनमस्कार, वज्रासन, शशांकासन, मार्जारी आसन एवं उष्ट्रासन हैं। सर्वांगासन एवं विपरीतकरणी मुद्रा का भी सकारात्मक प्रभाव होगा, जबकि अधिक प्रशिक्षित साधक भुजंगासन, शलभासन, धनुरासन, चक्रासन एवं पश्चिमोत्तानासन का अभ्यास भी कर सकते हैं।

कोई भी यौगिक अभ्यास केवल शरीर को नहीं, बल्कि उस प्राणिक ऊर्जा को भी सूक्ष्म रूप से प्रभावित करता है जो शरीर को गतिशील और मन को उत्प्रेरित करती है। योग प्राणिक ऊर्जा; प्राणशक्ति का विज्ञान है; उचित रूप से की गयी प्रत्येक यौगिक क्रिया हमारे उत्साह और जीवनशक्ति को वर्द्धित करती है। इसीलिए सभी आसनों का स्थिरता से अभ्यास करते हुए जागरूकता के

साथ उपयुक्त चक्रों का ध्यान करना चाहिए। प्राणशक्ति को पुन: प्राप्त करने के लिए बन्ध के अभ्यासों का विशेष अनुमोदन किया जाता है। श्वेत प्रदर के लिए मूलबन्ध और उड्डियान बन्ध सर्वाधिक उपयुक्त हैं।

प्राणायामों में नाड़ीशोधन, भस्त्रिका एवं उज्जायी प्राणशक्ति में वृद्धि करते हैं तथा जीव-विषों (टॉक्सीन) को समाप्त करते हैं। जबकि योगनिद्रा या अन्तर्मौन जैसे ध्यानात्मक अभ्यास हमारे हॉर्मोनों को असन्तुलित एवं प्राणशक्ति को क्षीण करने वाले तनाव से बचाते हैं। ये अभ्यास रोग के मूल कारण को निर्मूल कर शरीर और मन के बीच सामंजस्य स्थापित करते हैं।

अभ्यास के कार्यक्रम

आसन – सूर्य नमस्कार (6 – 12 चक्र), शवासन, वज्रासन (पन्द्रह श्वास तक) सुप्त वज्रासन (पन्द्रह श्वास तक), उष्ट्रासन (पन्द्रह श्वास तक), मार्जारी आसन (15 बार), शशांकासन (30 श्वास तक), विपरीतकरणी आसन (इक्कीस श्वास तक)।

प्राणायाम – उज्जायी प्राणायाम (54 चक्र)।

षट्कर्म – लघु शंखप्रक्षालन (सप्ताह में एक बार)।

अन्य – योगनिद्रा (आधा घण्टा)।

ऋतुस्त्राव सम्बन्धी अनियमिततायें

किसी स्त्री का मासिक चक्र पूर्णत: नियमित नहीं होता, क्योंकि प्रकृति में होने वाली कोई भी दो घटनाएँ पूर्णत: समान नहीं होतीं। हमारी व्यक्तिगत संरचना के सन्दर्भ में प्रत्येक ऋतुस्त्राव में कुछ विचित्रता होती है, इसलिए हमारे मासिक चक्र में होने वाले किसी तुच्छ परिवर्तन से भयभीत या चिन्तित होने की आवश्यकता नहीं। हमें इसे अपने बीमार होने का संकेत नहीं समझना चाहिए। किन्तु जब कोई अनियमितता स्थायी रूप ले ले तब समझना चाहिए कि कहीं कुछ असामान्य है। कुछ ऐसे प्रश्न हैं जो बारम्बार उठते हैं, क्योंकि इनके माध्यम से वे घटनाएँ प्रकट होती हैं जो कभी-न-कभी लगभग प्रत्येक स्त्री के साथ घटित हुई हैं। अक्सर उठाये जाने वाले कुछ विशिष्ट प्रश्नों की व्याख्या नीचे की गयी है ताकि अधिक-से-अधिक स्त्रियाँ योग के माध्यम से शारीरिक स्वास्थ्य और आत्मा की मुक्ति का आनन्द लाभ कर सकें।

क्या हम ऋतुस्त्राव की अवधि में योग का अभ्यास कर सकते हैं?

अत्यधिक रक्तस्त्राव होने पर आसनों का अभ्यास नहीं किया जाना चाहिए। सामान्य स्त्राव होने पर भी इस अवधि में शीर्षासन एवं सर्वांगासन का अभ्यास नहीं किया जाता है। फिर भी प्राणायाम तथा ध्यान इत्यादि का अभ्यास सामान्य रूप से जारी रखा जा सकता है।

वस्तुत: योग के अनुसार साधना के लिए यह अवधि अत्यन्त लाभप्रद होती है। इस समय स्त्रियाँ अत्यन्त संवेदनशील तथा मानसिक रूप से प्रबल हो जाती हैं जिससे आध्यात्मिक अनुभूति प्राप्त करने की

सम्भावना बढ़ जाती है। इसलिए हमें इस अवधि में आन्तरिक सजगता के स्वाभाविक विस्तार का लाभ उठाने के लिए जप और ध्यान पर विशेष बल देना चाहिए।

मैं एक योग शिक्षिका हूँ, अनेक स्त्रियाँ अपनी मासिक समस्याओं के सम्बन्ध में मुझसे सम्पर्क करती हैं। सबसे महत्त्वपूर्ण कौन-सी बात उन्हें बतायी जानी चाहिए?

जब एक स्त्री अपनी मासिक अनियमितताओं के लिए अपनी शिक्षिका से मदद माँगती है तो उसके लिए सर्वश्रेष्ठ परामर्श यह है कि उसे तुरन्त एक चिकित्सक के पास जाना चाहिए। सभी प्रकार की जाँच के बाद ही यह स्पष्ट हो पायेगा कि वस्तुत: समस्या क्या है, क्योंकि एक ही समस्या के अनेक कारण हो सकते हैं।

ऋतुस्राव की अनियमितताएँ किसी अन्य रोग का संकेत मात्र होती हैं जिनका उचित इलाज नहीं होने पर परिणाम गम्भीर हो सकते हैं। जब चिकित्सक उन सम्भावनाओं से मुक्त कर देता है तो स्त्री आश्वस्त हो जाती है, और तब (योग) शिक्षिका यह निर्धारित कर पाती है कि शारीरिक और आध्यात्मिक स्तर पर समस्वरता एवं सन्तुलन स्थापित करने के लिए कौन-से अभ्यास सबसे अधिक उपयुक्त होंगे।

मेरी पुत्री अट्ठारह वर्ष की हो गई है और उसमें स्त्रीजन्य शारीरिक रोगों का विकास होने लगा है, किन्तु अब तक उसका ऋतुस्राव प्रारम्भ नहीं हुआ है। मैं इस विषय में बहुत चिन्तित हूँ।

अधिकतर बालिकाओं को ग्यारह-बारह वर्ष की आयु में रजोदर्शन (पहला ऋतुस्राव) होता है, किन्तु यह नौ से अठारह वर्ष के बीच कभी-भी हो सकता है। यदि आपकी पुत्री स्वस्थ है तो हो सकता है कि उसमें यह विकास कुछ देर से हो।

ऋतुस्राव नहीं होने के अनेक कारण हो सकते हैं, जैसे– दोषपूर्ण प्रजनन तन्त्र, सिस्ट या ट्यूमर, असन्तुलित हॉर्मोन या वे भावनात्मक तत्त्व जो स्त्रीत्व की भूमिका से सम्बद्ध हैं। यदि चिकित्सक ने चिन्तित होने का कोई कारण नहीं बताया है तो उसे प्रतिदिन प्रात: सूर्य नमस्कार के बारह चक्र करने चाहिए।

मैं मात्र उन्चास वर्ष की हूँ, किन्तु कभी-कभी कुछ धब्बों या रेशों के अतिरिक्त और कुछ नहीं होता है, मेरा ऋतुस्त्राव समाप्त होता हुआ लगता है। अवश्य ही समय से पूर्व रजोनिवृत्ति हो रही है।

रजोनिवृत्ति का औसत काल अड़तालीस-उन्चास वर्ष है। एक स्त्री अपने जीवन के चालीस से पचपन वर्ष के बीच कभी भी इस अवस्था में पहुँच सकती है। मोटे तौर पर चिकित्सकों ने पाया है कि जिन स्त्रियों को जल्दी रजोदर्शन हुआ है उनकी रजोनिवृत्ति देर से होती है। फिर भी अनियमित रूप से धब्बों का आना या दो ऋतुस्त्रावों के बीच रक्तस्त्राव हो जाना प्रजनन तन्त्र के संक्रमित होने या पॉलिप (गर्भाशय मुख पर या उसके निकट श्लेष्मा झिल्लियों से उत्पन्न उभार) के कारण भी हो सकता है।

यदि आपकी चिकित्सीय जाँच रिपोर्ट सामान्य है तो अपने हॉर्मोनों को सन्तुलित रखने के लिए तथा रजोनिवृत्ति के क्रम में होने वाले किसी शारीरिक कष्ट को कम करने के लिए योग का अभ्यास प्रारम्भ करें। सिर के बल किये जाने वाले आसन, विशेषकर शीर्षासन, सर्वांगासन एवं हलासन लाभप्रद होंगे।

सामान्यतः मेरा ऋतुस्त्राव पाँच दिनों तक होता है, किन्तु दो महीनों में यह केवल दो दिनों तक हुआ और पिछले महीने में हुआ ही नहीं। कभी-कभी सुबह में मुझे मिचली भी होती है।

ऋतुस्त्राव नहीं होने का सर्वसाधारण कारण गर्भावस्था है, और इसके साथ यदि सुबह में मिचली होती हो तो यह स्थिति निश्चित प्रतीत होती है। कुछ स्त्रियों में गर्भ धारण के तुरन्त बाद ऋतुस्त्राव बन्द हो जाता है, किन्तु अन्य स्त्रियों में दो-तीन महीनों तक यह अल्प मात्रा में जारी रहता है। यदि आप गर्भ-निरोधक गोलियाँ ले रही हों, तो हो सकता है कि उसमें प्रयुक्त हॉर्मोनों का सम्मिश्रण आपकी प्रणाली के लिए उपयुक्त न हो और आपके ऋतुस्त्राव को अवरुद्ध कर रहा हो।

प्रसूति के छः सप्ताह के पश्चात् ऋतुस्त्राव पुनः प्रारम्भ होने की पूरी सम्भावना रहती है यदि आप बच्चे को स्तनपान नहीं करा रही हैं तो। जब तक आप (दूध आता रहेगा) बच्चे को स्तनपान कराती रहेंगी तब तक आपको ऋतुस्त्राव नहीं होगा। गर्भनिरोधक दवाओं को बन्द करने के छः सप्ताह बाद तक ऋतुस्त्राव नहीं होगा। यदि आप गर्भ धारण कर चुकी हैं तो आपको प्राणायाम एवं योगनिद्रा के द्वारा स्वाभाविक तथा सहज प्रसूति की तैयारी आरम्भ कर देनी चाहिए।

मुझे नियमित ऋतुस्त्राव हो रहा था, किन्तु जब से मैंने कॉलेज जाने के लिये घर छोड़ा है, यह बन्द हो गया है।

बहुत कम स्त्रियाँ ऐसी हैं जिन्हें पूर्णत: नियमित ऋतुस्त्राव होता है, क्योंकि जीवन में ऐसी अनेक परिस्थितियाँ आती हैं जो मासिक चक्र को नियन्त्रित करने वाले हॉर्मोनों को प्रभावित करती हैं। पहली बार घर छोड़ना और साथ में विद्यार्थी जीवन का अतिरिक्त भार एक ऐसी चुनौती है जो एक सीमा तक भावनात्मक तनाव उत्पन्न कर देती है। कुछ समय के लिए आपके ऋतुस्त्राव को रोकने के लिए यह पर्याप्त है।

कुछ स्त्रियाँ अपेक्षाकृत अधिक संवेदनशील होती हैं जिससे जीवन में होने वाला कोई विशेष परिवर्तन इनके ऋतुस्त्राव में अस्थायी रूप से रुकावट उत्पन्न कर देता है। लम्बी यात्रा से, मन्द गति के जीवन से अचानक भाग-दौड़ वाले जीवन में जाने पर (या इसके विपरीत), आहार या वातावरण में आमूल परिवर्तन से, किसी नये व्यवसाय में जाने पर, रोमांस के आरम्भ या अन्त होने पर, किसी परिजन को खो देने के दु:ख से, वैवाहिक जीवन प्रारम्भ करने पर, किसी गहन भावनात्मक अनुभव से ऐसा हो सकता है।

कई तरह की बीमारियों, जैसे–बुखार, आँत सम्बन्धी गड़बड़ी, मोटापा, यहाँ तक कि गम्भीर कब्जियत से भी कुछ समय के लिए ऋतुस्त्राव रुक जाता है।

यदि आपको अपने चिकित्सक से स्वीकृति मिल गई हो तो योगनिद्रा का नियमित अभ्यास आरम्भ कर दें। इससे न केवल शारीरिक शिथिलन होगा, बल्कि भावनात्मक तनावों से भी मुक्ति मिलेगी। यह आपके अध्ययन के लिए भी लाभप्रद होगा। हो सकता है आपको अधिक शारीरिक व्यायाम की आवश्यकता हो, इसलिए आप अपने कार्यक्रम में गत्यात्मक आसनों को भी सम्मिलित कर लें, जैसे–नौका संचालन, चक्की चलाना, शशांकासन, मार्जारी आसन, शशांक-भुजंगासन एवं द्रुत-हलासन।

मेरा ऋतुस्त्राव नियमित है, किन्तु बहुधा इक्कीस-बाइस दिनों के अन्तराल पर ही हो जाया करता है। क्या कुछ गड़बड़ी है?

अपने चिकित्सक से जाँच करा लें, किन्तु अधिक भयभीत नहीं हों। औसतन मासिक चक्र अट्ठाइस दिनों का होता है, किन्तु यह चक्र कम-से-कम बीस दिनों का और अधिक-से-अधिक छत्तीस दिनों का भी हो सकता है। यदि आप

नियमित रूप से आसन-प्राणायाम तथा ध्यान के अभ्यास करती रहें तो आपके चक्र की अवधि कुछ बढ़ सकती है।

मुझे अत्यधिक ऋतुस्त्राव होता है और पूरे सप्ताह तक चलता है। क्या यह सामान्य है?

एक सामान्य ऋतुस्त्राव दो से आठ दिनों का हो सकता है और औसतन चार से छ: दिनों का होता है। इसमें दो-तीन ऑउन्स ही हानि होती है। यदि आपको अत्यधिक ऋतुस्त्राव होता है तो ऋतुस्त्राव और किसी अन्य आन्तरिक गड़बड़ी से होने वाले स्त्राव के अन्तर को पहचानना आवश्यक है। यदि रक्त का प्रवाह झोंके से आता है तो सम्भवत: इस रक्त प्रवाह का कारण केवल गर्भाशय की श्लेष्मा कला (यूरेकाइन लाइनिंग) का टूटना ही नहीं है।

रक्तस्त्राव की अतिरेकता 'एन्डोमेट्रियोसिस' या 'फाइब्रॉयड्स' का लक्षण हो सकती है। एन्डोमेट्रियोसिस उस स्थिति में होता है जब सामान्य रूप से गर्भाशय में उत्पन्न होने वाले ऊतक कहीं और, अधिकतर मूत्राशय या आँत में उत्पन्न हो जाते हैं। यह बीमारी तीस से चालीस वर्ष की स्त्रियों में सामान्य रूप से होती है और इसके लिए विशेषज्ञ की सलाह लेना आवश्यक है। बीस-पचीस प्रतिशत स्त्रियों में 'फाइब्रॉयड्स' हो जाता है जो गर्भाशय की श्लेष्मा कला के पूरी तरह नहीं टूटने पर कड़े तन्तुमय ऊतक का रूप ले लेता है। कुछ 'फाइब्रॉयड्स' कैंसरयुक्त होते हैं जो मूत्राशय और आँत में समस्या उत्पन्न कर देते हैं। लगातार अधिक ऋतुस्त्राव होने की स्थिति में चिकित्सक से परामर्श लेना आवश्यक हो जाता है।

यदि विभिन्न परीक्षणों से यह पता चले कि हॉर्मोन असन्तुलन ही समस्या का कारण है तो किसी योग्य शिक्षक से अन्तर्मौन या योगनिद्रा के साथ निम्नलिखित आसन सीखें– सर्वांगासन, हलासन, कन्धरासन, अर्द्धमत्स्येन्द्रासन, भुजंगासन, शलभासन, धनुरासन एवं पश्चिमोत्तानासन।

जब से मैंने मांस खाना छोड़ा है, मेरा ऋतुस्त्राव भी बन्द हो गया है। मेरी कई शाकाहारी मित्रों के साथ भी ऐसा हुआ है, किन्तु हम लोगों का अनुभव है कि हम लोगों का स्वास्थ्य कभी अच्छा नहीं रहा।

आहार हमारे शारीरिक स्वास्थ्य के प्रत्येक पक्ष को प्रभावित करता है, ऋतुस्त्राव को भी। अब तो यह अच्छी तरह सत्यापित हो चुका है कि अधिक प्रोटीनयुक्त

मांसाहार के कारण अधिक दर्द होता है और अधिक रक्त की हानि हो सकती है। पूर्णत: शाकाहारी हो जाने पर ऋतुस्राव अक्सर अस्थायी रूप से बन्द हो जाता है, किन्तु जब वह पुन: आरम्भ होता है तो सामान्यत: समस्याओं से मुक्त रहता है। केवल अन्न और सब्जीयुक्त आहार (दूध या मांस नहीं) लेने वाली स्त्रियों ने विरले ही पाया हो कि उनका ऋतुस्राव बिल्कुल बन्द हो गया है। किन्तु उनके योनि स्राव से पता चला है कि उनके हॉर्मोन अभी-भी क्रियाशील हैं और उनके स्त्रीत्व में कोई कमी नहीं आई है। उन स्त्रियों का वैवाहिक जीवन अब भी सक्रिय है और उन्होंने स्वस्थ, प्रसन्न शिशुओं को जन्म दिया है।

फिर भी सामान्यत: नियमनिष्ठ आहार ऋतुस्राव को तभी कम कर सकता है जब उसके साथ पूर्ण शुचिता का पालन किया जाये। आप और आपकी मित्र पायेंगी कि आपका ऋतुस्राव विवाह के बाद पुन: आरम्भ हो गया है।

क्या आध्यात्मिक जीवन के कारण ऋतुस्राव का बन्द हो जाना स्वाभाविक है?

कुछ ऐसे आध्यात्मिक अभ्यास हैं जो ऋतुस्राव को या तो कम कर देते हैं या कुछ समय के लिए बिल्कुल बन्द कर देते है। कुछ अभ्यासों (शीर्षासन) का सीधा प्रभाव पीयूषिका ग्रन्थि पर होता है, कुछ अन्य (महाबन्ध) हैं जो प्राण की निम्नवर्ती गति को विचलित कर ऊर्ध्वमुखी कर देते हैं, कुछ दूसरे अभ्यास हैं (धारणा, ध्यान, समाधि) जो मन को एकाग्र कर कामवासना का पूर्ण परिष्कार कर देते हैं। यद्यपि यह तभी हो पाता है जब इनका गहन अभ्यास किया जाता है, उदाहरणार्थ, एक गुरु के मार्गदर्शन में यौगिक चर्या का निष्ठापूर्वक पालन करते हुए शीर्षासन को निरन्तर दो-तीन घण्टों तक किया जाये।

इस प्रकार के तथ्य चिकित्सकों को यह सोचने के लिए बाध्य कर देते हैं कि क्या ऋतुस्राव का बन्द हो जाना अस्वस्थता का सूचक है, शायद यह 'परम स्वस्थता' का ही संकेत हो। फिर भी ऋतुस्राव का बन्द हो जाना स्वयं में आध्यात्मिक विकास का संकेत नहीं होता है। यह अधिकतर शारीरिक या भावनात्मक असन्तुलन का सूचक है जिसे चिकित्सक के परामर्श और यौगिक अभ्यासों के सन्तुलित कार्यक्रम के संयोजन से ठीक किया जा सकता है।

हमारे अस्तित्व के प्रत्येक स्तर पर सत्त्व, शुद्धता एवं प्रकाश की प्रधानता होने पर ही सच्ची आध्यात्मिकता उत्पन्न होती है। शारीरिक स्तर पर सत्त्व के

अन्तर्गत प्राकृतिक नियमों के अनुरूप शरीर की सामंजस्यपूर्ण एवं सन्तुलित क्रियायें आती हैं। गीता में कहा गया है–

नात्यश्नतस्तु योगोऽस्ति न चैकान्तमनश्नतः ।
न चाति स्वप्नशीलस्य जाग्रतो नैव चार्जुन ॥6/16॥

'यह योग न तो अधिक खाने वाले को और न बिल्कुल नहीं खाने वाले को तथा न अधिक सोने वाले को और न बिल्कुल नहीं सोने वाले को सिद्ध होता है।'

यह तथ्य जीवन के सभी पक्षों पर लागू होता है, मासिक चक्र पर भी। कुछ असामान्य स्थितियों को छोड़कर, इसका अर्थ ऋतुस्राव का समाप्त हो जाना नहीं, बल्कि स्वाभाविक, नियमित तथा वेदनाहीन ऋतुस्राव है। यौगिक अभ्यास सात्त्विक शरीर का विकास सर्वाधिक लाभ के साथ करते हैं और तब मन में भी सात्त्विकता का विकास होता है। योग के द्वारा हम शरीर की स्वाभाविक प्रक्रियाओं को नहीं रोकते, बल्कि उनका परिष्करण करते हैं ताकि वे मन को भ्रमित या उद्विग्न न करें।

मोटापा

योग का उद्देश्य भार को कम करना नहीं है, फिर भी योग को भार सम्बन्धी समस्याओं के लिए प्रभावपूर्ण और स्थायी निदान के रूप में मान्यता मिली है। वास्तव में यह न तो विशेष आहार का परिणाम होता है, और न ही उत्तेजक व्यायाम का। मूल ग्रीक भावार्थ के अनुसार योग एक उपयुक्त आहार देता है, एक जीवनचर्या देता है। योग हमें हमारी आवश्यकताओं और स्वभाव के अनुरूप जीवन के प्रति एक सामंजस्यपूर्ण अभिवृत्ति देता है। योग की नजर भार पर नहीं होती, बल्कि आप पर होती है। योग आपको एक शरीर नहीं, बल्कि एक व्यक्ति मानकर ऐसी व्यावहारिक तकनीक बताता है जो न केवल आपको वसा और मिताहार (डायटिंग) से मुक्ति दिलाती है, बल्कि आपके जीवन के प्रत्येक पक्ष को स्वस्थ और समस्वरित बनाती है।

योग उपचार

सर्वप्रथम समेकित योग साधना के लिए समय निर्धारित करना होगा जिसके अनुसार दिनचर्या संचालित होगी।

आसन– अनेक व्यक्ति समझते हैं कि अपने भार को कम करने का मतलब है हाँफ-हाँफ कर व्यायाम करना और पसीने में डूब जाना। आसन कुछ अधिक सरल प्रतीत होते हैं। सम्भवत: प्रारम्भ में आसन करते समय आपको पसीना आये, किन्तु यह मुख्य बिन्दु नहीं। चिकित्सा जगत् के अनुसन्धानों से यह ज्ञात हुआ है कि आसनों के द्वारा कॉलेस्ट्राल और रक्त की तरल वसा की मात्रा में कमी आती है; इस प्रकार आसन शरीर की आन्तरिक प्रक्रियाओं को सामंजस्यपूर्ण बनाते हैं।

विशेषकर स्त्रियों में भार वृद्धि का सम्बन्ध प्रजनन तन्त्र के असन्तुलित हॉर्मोनों से हो सकता है। सुस्त अवटु (थॉयरायड) भी इसका कारण हो सकता है। आसन न केवल झूलती हुई मांसपेशियों को सबल बनाते हैं, बल्कि शरीर की आन्तरिक प्रणालियों को भी प्रभावित कर असन्तुलित हॉर्मोनों को समंजित करते हैं और आन्तरिक अवयवों की मालिश करते हैं। इस प्रकार भार का समान रूप से क्षरण होता है और शरीर का यथोचित पुनर्गठन होता है।

इस सन्दर्भ में अधिक महत्त्वपूर्ण यह है कि आसनों का उचित अभ्यास हमें अपने अन्तर की पुकार के प्रति जागरूक बनाता है जो अधिकतम स्वास्थ्य लाभ के लिए हमारा मार्गदर्शन करती है। शरीर का अपना भाव तत्त्व होता है, और हम आसनों के अभ्यास से शरीर द्वारा दिये गये अनेक छोटे संकेतों और सूक्ष्म सन्देशों को समझना सीख जाते हैं।

हमें कब, कितना और क्या खाना चाहिए, कब अधिक काम करना चाहिए, कब आराम करना चाहिए और ऐसी ही अनेक बातें हम सीख जाते हैं जो स्वास्थ्य और शक्ति को कायम रखने में सहायक होती हैं। जब आप योग के माध्यम से अपने अन्तर की पुकार पर ध्यान देने लगेंगे तो कभी आपको यह जान कर आश्चर्य होगा कि कतई यह आहार नहीं है जिसकी आपको आवश्यकता है।

शायद आप सोना चाहते हों या तनावमुक्त होने के लिए घूमना चाहते हों तो इसके विकल्प के रूप में भोजन आपको सन्तुष्ट नहीं कर पायेगा, बल्कि आपके भार में ही वृद्धि कर देगा।

आसन हमारी ऊर्जा को कम नहीं करते हैं, जैसा कि अनेक व्यायामों और खेलों में होता है। अपितु ये ऊर्जा को सुरक्षित रखते हैं और उसका नवीनीकरण कर देते हैं जो अधिक भार वाली स्त्रियों के भारीपन और सुस्ती को कम करने में मदद करती है।

आरम्भ में गत्यात्मक आसनों का अभ्यास किया जाना चाहिए, जैसे– तिर्यक ताड़ासन, सूर्य नमस्कार, कटिचक्रासन और इनके साथ कुछ सहज आसन, जैसे– वज्रासन, सुप्तवज्रासन, प्रणामासन या भूमि शीर्षासन। बाद में आसनों के अभ्यास में कुछ कटौती करके प्राणायामों, विशेषकर भस्त्रिका एवं नाड़ीशोधन को अधिक समय देना चाहिए।

षट्कर्म– एक सुनियोजित कार्यक्रम के अन्तर्गत भार को कम करने वाले अधिक प्रभावकारी आसनों के साथ एकान्तर क्रम से कुंजल क्रिया और शंख

प्रक्षालन भी किये जाने चाहिए। भार वृद्धि के बाद हम जितने अधिक दिनों तक उस अतिरिक्त भार को कायम रखते हैं, हमारे शरीर का समय चक्र उतना ही धीमा होता जाता है। षट्कर्म आसनों के प्रभाव को अधिक प्रबल बना देते हैं और मन्द पड़ गये चयापचय में जान डाल देते हैं।

लघु शंखप्रक्षालन से रक्त शर्करा में तुरन्त कमी आती है जिसकी पूर्ति के लिए शरीर संचित वसा का उपयोग करने के लिए प्रेरित होता है। इससे यकृत को भी शक्ति प्राप्त होती है जो वसा के संग्रह और उसके उपयोगी तत्त्व रक्त शर्करा में पुनर्परिवर्तन के लिए अत्यावश्यक है।

पाचन संस्थान की क्षमता वृद्धि में तथा अति अम्लता के कारण 'कूट क्षुधा' को समाप्त करने में भी कुंजल क्रिया सहायक होती है। वसा के पिघल जाने पर अनेक अवांछित तत्त्व जो वसा कोशिकाओं में संचित रहते हैं, रक्त में चले जाते हैं। ये दोनों क्रियायें टॉक्सिन के निष्कासन को द्रुत कर देती हैं और शरीर हल्केपन का अनुभव करता है।

शिथिलन – उचित शिथिलन के लिए योगनिद्रा या गहन ध्यान आपके कार्यक्रम का एक अनिवार्य अंग है। सामान्यतया यह समझा जाता है कि अत्यधिक तनाव से आप दुर्बल हो जायेंगे और यदि आप का भार अधिक है तो शिथिलन से वह और बढ़ जायेगा। स्त्रियों के साथ हमेशा ऐसा नहीं होता है। कुछ व्यक्ति तनावयुक्त होने पर कम खाते हैं, किन्तु अधिकतर व्यक्ति, उनमें से अधिकतर स्त्रियाँ अधिक खाने लगती हैं, यह एक प्रकार से क्षति पूर्ति का प्रयास होता है।

प्राय: जब हम थकावट से व्याकुल हो जाते हैं तो अपने आराम के लिए कुछ समय चाहते हैं। स्त्रियाँ, विशेषकर वे जो दिन-भर रसोई-घर में रहती हैं, जब थकान का अनुभव करती हैं तो उन्हें लगता है कि उन्हें कुछ खाने की आवश्यकता है। जबकि उनके शरीर को भोजन की आवश्यकता नहीं होती, और इस प्रकार उनका मोटापा बढ़ता जाता है।

तनाव हमें भोजन का आनन्द नहीं लेने देता है। चूँकि मन विचलित रहता है, इसलिए भोजन के स्वाद पर हमारा ध्यान नहीं जाता और भरपेट खा लेने के बाद भी हम असन्तुष्ट ही रह जाते हैं। फलस्वरूप हम अधिक खा लेते हैं, अधिकतर ऐसी तली हुई और मीठी चीजें जो भार बढ़ाती हैं।

इसके अतिरिक्त तनाव की निरन्तरता से शरीर की सूक्ष्म और संवेदनशील प्रक्रियाएँ अस्त-व्यस्त हो जाती हैं और भार को बढ़ने का अवसर मिल जाता

है। भोजन से हमारे सम्बन्ध को विकृत करने वाले तनाव को दूर कर आन्तरिक संकेतों के प्रति हमारी संवेदनशीलता को प्रोत्साहित करने के लिए शिथिलन अनिवार्य हो जाता है। सर्वांगीण व्यक्तित्व विकास की दृष्टि से भार की कमी से अधिक महत्त्वपूर्ण है तनाव का कम होना और यह योग का वास्तविक उद्देश्य है।

मनोवैज्ञानिक कारण

सामान्यत: मोटापा अतिभोजन का परिणाम है, न कि वंशागत गुणों, हॉर्मोन की त्रुटि इत्यादि का। मोटे व्यक्ति मोटे हैं, क्योंकि वे आदतन अधिक खाते हैं, ऐसी आदत जिसकी जड़ भावनाओं की गहराई में दबी है। मोटापा प्राय: असुरक्षा, यौन कुण्ठा, चिन्ता और क्रोध की प्रतिक्रियात्मक अभिव्यक्ति है। असुरक्षात्मक भावनाओं से ग्रस्त अनेक व्यक्तियों को अनुभव होता है कि उनकी चेतना उनका वास्तविक 'स्व' एक खोखले शरीर में बन्द है। वे अपने भय और असुरक्षा की अनुभूति को उपशमित करने के लिए उस खोखले स्थान को भोजन से भर देते हैं। इससे उन्हें ठोस होने की अनुभूति होती है, उनका मोटापा उनमें विशिष्टता और उनके अस्तित्व के सुसंगत होने का भाव भर देता है।

दूसरी ओर, एक स्त्री ऐसा भी समझ सकती है कि उसका मोटापा उसके और इस संकटपूर्ण संसार के बीच एक सुरक्षित दीवाल है। क्रोध और आक्रामकता अनेक लोगों के लिए अवांछनीय होते हैं, विशेषकर स्त्रियों के लिए, इसलिए इन्हें प्रत्यक्षत: व्यक्त नहीं किया जाना चाहिए। किन्तु अन्दर ही अन्दर ये इतना बेचैन कर देते हैं कि हमारा ध्यान हमेशा भोजन पर लगा रहता है। कुछ अन्य लोग खाते समय अकेलापन, क्षति और दर्द को भूल जाते हैं, भोजन उन्हें पलायन का, आराम का और क्षणिक विस्मृति का अवसर देता है।

चिरकालिक मोटे व्यक्तियों के लिए भोजन नशीली दवाओं की तरह होता है, किन्तु किसी भी व्यसनी के समान वे अपराध-बोध से भी ग्रस्त रहते हैं और सीमित आहार या उपवास पर उनकी तीव्र प्रतिक्रिया होती है। भोजन के व्यसनी व्यक्ति का या जिसके लिये अधिक आहार बाध्यकर होता है, उसका अच्छे-बुरे का अपना दृष्टिकोण होता है, उसके अनुसार भूखा रहने वाला व्यक्ति 'अच्छा' और अधिक खाने वाला 'बुरा' होता है। अफसोस की बात

यह है कि कष्टकर सीमा तक खा लेने वाली भोजन-व्यसनी स्त्री अपराध बोध से इतनी ग्रस्त होती है कि उसे भोजन के एक भी ग्रास के स्वाद का पता नहीं चलता है। भोजन का पर्वत भी निगल जाने पर उसे न तो उसका आनन्द प्राप्त होता है और न ही सन्तोष।

सनकी आहार

केवल आहार समस्याओं का हल नहीं है, क्योंकि यह भावनाओं की गहराई में दबे द्वन्द्वों को शान्त नहीं कर सकता। जो आन्तरिक पोषण हम भोजन में ढूँढते हैं, वह तो एकमात्र योग के माध्यम से प्राप्त हो सकता है, शरीर का भार कम करने के लिए नहीं, बल्कि आत्मानुभूति के लिए।

बाध्यकर भोजन-व्यसनी का तो वास्तविक भूख, पेट की भूख से कोई सम्पर्क नहीं होता। वह घबराहट, बाद में लगने वाली भूख की आशंका और मुँह की भूख (मेरे पेट को भूख नहीं लगी है, लेकिन मेरे मुँह में कुछ होना चाहिए) के कारण खाती है। न्यून आहार इस समस्या को और उलझा देते हैं। वह तो भूख के अनुभव से और उसे सन्तुष्ट कर पाने की क्षमता से अपना सम्पर्क खो देती है, क्योंकि वह कृत्रिम मानदण्ड (जैसे, कैलोरी) के अनुसार खाती है, शरीर की आवश्यकता के अनुरूप नहीं। परिणाम यह होता है कि उपवास की सीमा तक किये गए न्यून आहार का त्याग कर आप दृष्टिगत होने वाली प्रत्येक वस्तु को खाने लगती हैं, क्योंकि स्वयं को और वंचित रख पाना अब आपके लिए सम्भव नहीं। इस प्रकार अनियमित रूप से किया गया कभी मिताहार और कभी अति भोजन आपके भार को सदा घटाता-बढ़ाता रहेगा जिसके फलस्वरूप शरीर की ऊर्जा का सन्तुलन शारीरिक एवं प्राणिक स्तरों पर अव्यवस्थित हो सकता है। यह स्नायुओं, ग्रन्थियों और एन्जाइमों को बाधित करता है, जिसके फलस्वरूप मस्तिष्क के परितृप्ति केन्द्र की प्रक्रिया अस्त-व्यस्त हो जाती है, जिस केन्द्र के द्वारा हमें सूचित किया जाता है कि हम पर्याप्त भोजन कर चुके हैं, अब और नहीं।

सामान्य भोजन लें

न तो आप एक रात में मोटे हुए हैं और न ही आप दूसरी रात दुबले हो सकते हैं। जो भी आहार आप चुनें, उसे ऐसा होना चाहिए जिसे आप महीनों तक जारी रख सकती हैं और जो आपके स्वाद का विकास करता हो, आपको

स्वाद की पहचान कराता हो। असामान्य सनकपूर्ण आहार में कुछ तत्त्वों का अभाव हो जाता है जिसकी आपूर्ति के प्रयास में शरीर की चयापचय की प्रक्रिया असन्तुलित हो जाती है। एक बार भोजन करना और अत्यन्त अल्प कैलोरीयुक्त आहार लेना अस्थायी रूप से सम्भव हो सकता है, इसके द्वारा भोजन की स्थायी और स्वस्थ आदत नहीं लग पाती है।

एक सामान्य, असंसाधित तथा भोजन के सभी आवश्यक तत्त्वों से परिपूर्ण आहार शरीर को स्वस्थ रखने का अनिवार्य पोषण प्रदान करता है। अपरिष्कृत भोजन (अन्न के दाने, सब्जियाँ, फल) रेशेदार होते हैं जो परिष्कृत भोजन की अपेक्षा अधिक सहजता से भूख को तृप्त करते हैं। भोजन में रेशेदार तत्त्वों की अधिकता पाचन को सुगम बनाती है और प्रक्रमित भोजन के विपरीत इसमें या तो अल्प कैलोरी होती है या बिल्कुल नहीं होती।

यहाँ यह अधिक महत्त्वपूर्ण है कि सामान्य और सन्तुलित आहार मिताहार पर बल नहीं देता—हम वंचित अनुभव नहीं करते हैं, यह खाने की स्वस्थ आदत डाल देता है जिससे शरीर का आवश्यक भार कायम रहता है।

आप वही खायें जो आपको पसन्द हो, किन्तु सरल और असाधित (अनप्रोसेस्ड) भोजन को पसन्द करना सीखें। हर चीज में से थोड़ा-थोड़ा खायें—यहाँ तक कि तथाकथित 'निषिद्ध' वस्तुएँ, जैसे चॉकलेट, मिठाई और केक भी खायें। मूल बात यह है कि जो भी खायें थोड़ा खायें और इस तरह की चीजें प्रतिदिन न खायें। सप्ताह के एक दिन आप स्वयं को कुछ अतिरिक्त खाने की छूट दे दें ताकि हमेशा बँधा हुआ एक प्रकार का भोजन खाने का अहसास दूर हो जाये। कुछ दिनों के बाद जब आप सरल, पौष्टिक भोजन पसन्द करने लगेंगे तो कुछ अतिरिक्त खाने की लालसा समाप्त हो जायेगी। यदा-कदा होने वाली दावतों से नहीं, बल्कि प्रतिदिन के अतिभोजन से भार में वृद्धि होती है। सन्तुलित आहार लेने पर आप पायेंगे कि कम खा रहे हैं और इसका आनन्द भी उठा रहे हैं।

अपनाने योग्य लाभप्रद आदतें

- भोजनों के बीच पर्याप्त जल पीयें।
- सलाद या सूप से भोजन आरम्भ करें। दक्षिण भारत में भोजन के अन्त में रसम पीया जाता है, किन्तु जब आप पथ्याहार ले रहे हैं तो भोजन आरम्भ करने के पूर्व सूप के रूप में कुछ पीयें।

- पर्याप्त सब्जियाँ खायें–इनमें पौष्टिकता अधिक और कैलोरी कम होती है।
- इडली, चावल और चपाती में अधिक घी से परहेज करें। तले हुए भोजन में कटौती करें और प्रतिदिन मिठाई न खायें। रस, चाय और कॉफी में कम शक्कर लेने की आदत डालें।
- दो भोजनों के बीच कुछ नहीं खायें–निश्चित समय पर पानी, चाय, कॉफी या मट्ठा लें, किन्तु बिना किसी अल्पाहार के।
- धीरे-धीरे खायें। जिस क्षण आप पहला ग्रास लेते हैं उसके लगभग बीस मिनटों के बाद मस्तिष्क का परितृप्ति केन्द्र 'पर्याप्त' का संकेत देता है। शीघ्रता से खाने पर आप बीस मिनटों में आवश्यकता से अधिक खा सकते हैं। धीरे खाने पर आप भोजन के स्वाद का आनन्द उठाते हैं और आपका शरीर यह अनुमान भी लगा पाता है कि उसे कितने भोजन की आवश्यकता है।
- भोजन के पूर्व और पश्चात् वज्रासन में बैठें। वज्रासन पाचन को सुगम बनाता है। भोजन के पूर्व बैठने पर यह आपको शान्त होकर भोजन के प्रति अधिक जागरूक होने का अवसर देता है। यह आपको अपने संकल्प को स्मरण करने का भी समय देता है।

भोजन का समय अति महत्त्वपूर्ण होता है।

यौगिक भोजन के लिए आकर्षक भोजन की अपेक्षा भोजन के समय का अधिक महत्त्व होता है। प्रतिदिन निश्चित समय पर ही खायें। यह नियमितता चयापचय प्रक्रिया को स्थिरता प्रदान करती है। आपका शरीर यह जान जाता है कि उसे कितने भोजन की अपेक्षा करनी है। शरीर का तापक्रम और सक्रियता-स्तर ग्रहण किये गए भोजन का दहन करने के लिए स्वत: तैयार हो जाता है। आपको दो भोजनों के बीच खाने की इच्छा नहीं होगी, क्योंकि शारीरिक प्रणालियाँ और भूख भोजन के समय के अनुरूप साथ-साथ सक्रिय हो जाती हैं। दो भोजन के बीच यदि भूख जैसा अनुभव होता है तो उसे चिन्ता की अभिव्यक्ति समझें और योगनिद्रा द्वारा उसका शमन करें, न कि वास्तविक भूख समझ कर रेफ्रिजरेटर की तरफ दौड़ें।

रात का भोजन जल्दी लें। कई देशों में रात के आठ-नौ या दस बजे तक भी भोजन लेने की प्रथा है। हमारा अन्तिम भोजन सोने के तीन-चार घण्टे पूर्व

होना चाहिए, ताकि पाचन लगभग समाप्त हो जाये। जब हम सोते हैं तब हमें अधिक ऊर्जा की आवश्यकता नहीं होती, इसलिए सोने के पूर्व हम जो भोजन ग्रहण करते हैं वह वसा में ही परिणत हो जाता है।

रात में देर से खाना शरीर को अन्य प्रकार से भी दुष्प्रभावित करता है। जब हम सोते हैं तो पाचन पूर्णत: बन्द नहीं होता, चलता ही रहता है। यद्यपि इसमें ऊर्जा का अल्पांश ही खर्च होता है, किन्तु यह ऊर्जा का वह अंश है जिसका उपयोग शरीर के अन्दर विभिन्न प्रकार के जीर्णोद्धार या संचय के लिए होता है। इसलिए हमारी नींद कम प्रभावोत्पादक और कम सन्तोषप्रद होती है। हम सुबह में सुस्ती और थकान का अनुभव करते हैं।

दूसरी ओर, यद्यपि पाचन बन्द नहीं होता है, फिर भी धीमा हो जाता है और उसकी क्षमता कम हो जाती है। जब आग पूरी तरह से जलती है तो उसमें या तो कम धुआँ होता है या बिल्कुल नहीं होता। जब हम इसमें गीली लकड़ी डाल देते हैं या हवा के प्रवेश को रोक देते हैं तो अत्यधिक धुआँ बनने लगता है। पाचक-अग्नि के साथ भी यही होता है। जब पाचन सफलतापूर्वक होता है तो अवशिष्ट अवांछित तत्त्वों की मात्रा अल्प ही रहती है। सुप्तावस्था में जब पाचन की गति मन्द हो जाती है तो अवांछित वायु, अम्लता, कफ और वसा उत्पन्न हो जाते हैं। जल्दी खाने पर सफल पाचन और सन्तोषप्रद नींद अवश्यम्भावी है। सुबह जल्दी उठना आसान हो जाता है और हम ताजगी के साथ उठते हैं।

रात में जल्दी खाने का अर्थ है दिन में भी जल्दी खाना। हम लोगों के आश्रमों में स्वामीगण दिन के दस बजे और शाम के पाँच बजे भोजन ग्रहण करते हैं। सुबह साढ़े छ: बजे और दोपहर डेढ़ बजे कुछ गर्म पेय लेते हैं। इस प्रकार हमारे भोजन की आवश्यकता प्रतिदिन दो आहार में ही पूरी हो जाती है और बीच में भूख लगने का अवसर नहीं मिलता है। ये समय शरीर की लय के अनुरूप होते हैं, इसलिए इन समयों पर ग्रहण किये गए भोजन का सर्वाधिक उपयोग हो जाता है। जब हमें सबसे अधिक ऊर्जा की आवश्यकता होती है तो यह हमें मिलती रहती है – दिन के कार्यों के समय, तथा प्रात: एवं रात्रि में साधना के लिए शरीर हल्का रहता है।

यदि आप इन समयों को अपना सकें तो आप अनेक प्रकार से लाभान्वित होंगे। आप पायेंगे कि समय के साथ आपका भार स्वत: सन्तुलित हो गया है, बिना किसी कष्ट के। समय में परिवर्तन लाने पर आपको अपने पुराने समय

पर, विशेषकर रात में भूख लग सकती है। दस-पन्द्रह दिनों में यह समस्या भी समाप्त हो जायेगी। फिर भी यदि आवश्यकता हो तो उस समय कोई गर्म पेय ले सकते हैं।

अपराध-बोध से ग्रस्त न हों

यौगिक जीवन का महत्त्वपूर्ण पक्ष यह है कि आप अपने भोजन का मूल्यांकन करना छोड़ दें और मिताहार बन्द कर दें। इसके स्थान पर आप यह देखें कि आप किस प्रकार खाते हैं और इसके प्रति अधिक जागरूक हो जायें कि आपके लिए क्या आवश्यक है। जागरूकता और अवलोकन के द्वारा आप यह पता लगायें कि आपको कितने भोजन की आवश्यकता है जो शारीरिक और भावनात्मक रूप से आपको सन्तुष्ट करता है, और सुनिश्चित करें कि आप इतना सब खा लेते हैं – न कम, न अधिक। यदि सभी सामग्रियों के एक साथ करने पर आपको भोजन की मात्रा अधिक लगे तो उतना ही खायें जितना उस नियत समय पर आवश्यक हो। यदि आप एक भोजन में अधिक खा लेती हैं तो अपराध-बोध से ग्रस्त होकर अगला भोजन छोड़ने का लोभ न करें, इससे सन्तुलन और भी बिगड़ेगा।

योग हममें अपने अन्तर की पुकार के प्रति आत्म-स्वीकृति एवं विश्वास उत्पन्न कर शरीर के प्रति सकारात्मक जागरूकता की अनुभूति प्राप्त करने के योग्य बनाता है। आप स्वयं को एक सामान्य व्यक्ति के रूप में देखना आरम्भ कर देती हैं और तब आप एक सामान्य व्यक्ति के रूप में खाने लगते हैं – बिना अपराध बोध के।

योग का उद्देश्य वसा कम करना नहीं, बल्कि आध्यात्मिक अज्ञान तथा सभी प्रकार के कष्टों को दूर करना है। योग का लक्ष्य शरीर को हल्का बनाना नहीं बल्कि मन को प्रबुद्ध करना है। यदि आप इस विचार को सदा अपने सामने रखें तो आपका शरीर आपको एक बोझ के समान प्रतीत नहीं होगा, बल्कि एक वरदान बन जायेगा।

अभ्यास के कार्यक्रम

मोटापा

आसन– कटि चक्रासन (20), तिर्यक् ताड़ासन (20), सूर्य नमस्कार (6–12 चक्र), शवासन, उत्तानवक्रासन (20), नौका संचालन (10/10), चक्की चलाना (10/10), सुप्त वज्रासन या उष्ट्रासन (कम से कम सात श्वासों तक), मार्जारी आसन (10 श्वास), प्रणामासन (3–50 श्वास), वज्रासन (भोजन के पूर्व पाँच मिनट, भोजनोपरान्त दस मिनट)।
प्राणायाम– भस्त्रिका प्राणायाम (3–5 चक्र)
अन्य– योगनिद्रा (दिन में किसी भी समय – आधा घण्टा)
षट्कर्म– लघु शंखप्रक्षालन (तीन महीनों तक सप्ताह में एक बार), कुंजल क्रिया (एक महीने तक सप्ताह में दो बार, फिर सप्ताह में एक बार)
भोजन– दिन में दस बजे और शाम पाँच-छः बजे।

गर्भावस्था

शिशु को गर्भ में धारण करने वाली शाश्वत माता अनन्त काल से उर्वरता, प्रचुरता और उत्पादकता की प्रतिरूप रही है तथा गर्भावस्था सृजनात्मक चेतना एवं आशावादिता का मौलिक प्रतीक है। यद्यपि गर्भावस्था एक सामान्य स्थिति है; फिर भी यह अपने आप में एक सम्पूर्णता का अनुभव है। यह एक विशिष्ट अवस्था है। शरीर और मन की अंतरंगता का यह प्रभावशाली उदाहरण है। यह एक ऐसी अवस्था है जब स्त्री के अस्तित्व के विभिन्न आयामों के बीच समस्वरता का होना अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। योग के अभ्यास माता के साथ शिशु के शारीरिक, भावनात्मक एवं आध्यात्मिक विकास को संयोजित करते हुए शरीर और मन को सर्वोत्तम स्वास्थ्य प्रदान करते हैं।

गर्भधारण का विचार करना

गर्भधारण के पूर्व योग का नियमित अभ्यास गर्भावस्था के लिए आदर्श पृष्ठभूमि है। भावी माता आसनों के अभ्यास के द्वारा अच्छे समन्वय सहित लचीलापन और सुनम्यता प्राप्त कर लेती है। तब प्राणायाम दो जीवों के लिए पर्याप्त प्राणशक्ति से परिपूर्ण करना सुनिश्चित करता है और ध्यान मातृत्व से जुड़ी परम्पराओं के अनुरूप स्वच्छता का विकास करता है।

योग का अभ्यास एक असाधारण आध्यात्मिक क्षमताओं वाले शिशु का आतिथेय करने की दृष्टि से माता-पिता दोनों के लिए महत्त्वपूर्ण होगा। यह सम्भव है कि शिशु आंशिक या पूर्णरूपेण जाग्रत कुण्डलिनी के साथ उत्पन्न हो। इस प्रकार के व्यक्ति जन्म से ही आध्यात्मिक रूप से विकसित होते हैं और मानवता के प्रति उनका महान् योगदान हो सकता है।

इस प्रकार के बच्चे विरले ही होते हैं और विरले ही होते हैं वे माता-पिता जो इस प्रकार के बच्चों को इस जगत् में लाते हैं, फिर भी हमें यह कभी भूलना नहीं है कि उसकी सम्भावना तो है ही। प्रत्येक बच्चे का गर्भ में प्रतिरोपण यदि माता-पिता की आध्यात्मिक पृष्ठभूमि पर हो तो यह अभिभूत करने वाला तथ्य होगा, क्योंकि उन बच्चों की चेतना का गठन एवं पोषण माता-पिता के आध्यात्मिक तत्त्वों से होगा।

प्रारम्भिक अभ्यास

गर्भावस्था में योग अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हो सकता है, यहाँ तक कि नये लोगों के लिए भी, क्योंकि वे पायेंगे कि इनमें से अधिकतर अभ्यास उनकी क्षमताओं की सीमा के अन्दर हैं। सफल गर्भावस्था एवं प्रसूति के लिए निम्नलिखित क्षेत्रों के विकास पर बल दिया जाना चाहिए–

उदर की मांसपेशियाँ– उदर क्षेत्र के सबल रहने पर बच्चे को उचित विकास के साथ उन्हें कुशलतापूर्वक धारण किया जा सकेगा। प्रसूति के क्रम में बच्चे को गर्भाशय से बाहर निकालने में इन मांसपेशियों का सबसे अधिक महत्त्व होता है। इस क्षेत्र के लिए सुप्त वज्रासन, शशांकासन, उष्ट्रासन, हंसासन, मत्स्यासन एवं शक्तिबन्ध शृंखला के आसन महत्त्वपूर्ण हैं।

मेरुदण्ड– स्नायुतन्त्र की उपयुक्त कार्यशीलता एवं सामान्य लचीलेपन के लिए सबल और स्वस्थ मेरुदण्ड का होना अनिवार्य है। गर्भावस्था में बच्चे के अतिरिक्त भार के कारण प्राय: कन्धों में झुकाव आ जाता है जिसे एक सबल मेरुदण्ड रोक सकता है। इसके लिए सर्वाधिक अनुमोदित आसन हैं– सुप्तवज्रासन, मार्जारी आसन, व्याघ्रासन, अर्द्ध-मत्स्येन्द्रासन, पश्चिमोत्तानासन, भुजंगासन एवं सूर्य नमस्कार।

पीठ की मांसपेशियाँ– बच्चे के अतिरिक्त भार से पीठ की मांसपेशियों में भी बहुत तनाव उत्पन्न होता है। इसलिए इन मांसपेशियों के सशक्त होने से भी लाभ होगा। भुजंगासन, पश्चिमोत्तानासन, हलासन, सर्वांगासन, शशांकासन एवं सुप्त वज्रासन इसके लिए उपयुक्त रहेंगे।

श्रोणि प्रदेश (पेल्विस)– तनावमुक्त और लचीला श्रोणि प्रदेश प्रसूति को सुगम बना देता है। मार्जारी आसन, शशांकासन, व्याघ्रासन, मत्स्यासन, पालथी में बैठकर किये जाने वाले सभी आसन, सिद्धयोनि आसन तथा इसी प्रकार के अन्य आसन श्रोणि के लिए उपयोगी हैं।

यौगिक आसनों का सन्तुलित कार्यक्रम इस मर्मस्थलीय क्षेत्र के महत्त्वपूर्ण स्थलों के क्रमिक विकास के लिए उपयुक्त होगा।

गर्भावस्था की सम्पूर्ण अवधि के लिए आसन

गर्भावस्था के प्रारम्भिक तीन महीनों में उपक्रमात्मक आसनों को ही जारी रखा जा सकता है, किन्तु उसके पश्चात् कार्यक्रम में कुछ परिवर्तन लाने की आवश्यकता होगी।

चौथे महीने के आरम्भ होने पर, शरीर को ऊपर की ओर खींचने या तानने वाले आसन या पेट को अत्यधिक संकुचित करने वाले आसनों को बन्द कर देना चाहिए। शीर्षासन एवं सर्वांगासन के स्थान पर क्रमश: प्रणामासन एवं जालन्धर बन्ध का अभ्यास किया जा सकता है।

छठे महीने से आगे (पश्चिमोत्तानासन) और पीछे (चक्रासन, उष्ट्रासन) झुक कर किये जाने वाले आसनों का अभ्यास कठिन हो जाता है। यदि समय से पूर्व प्रसव या भ्रंश की प्रवृत्ति हो तो सुप्त वज्रासन और उकडू बैठ कर किये जाने वाले आसन भी नहीं किये जाने चाहिए।

ऐसे समय में ही पवनमुक्तासन उपयोगी होते हैं। इनके द्वारा मांसपेशियों एवं हड्डी के जोड़ों का पूरी तरह व्यायाम हो जाता है जिससे उनमें अधिकतम लचीलापन आ जाता है और रक्तसंचार में भी वृद्धि हो जाती है, साथ-ही न्यूनतम ऊर्जा खर्च होती है। नितम्बों को लचीला बनाये रखने एवं श्रोणि तल को सशक्त बनाने के लिए उकडू बैठने वाले आसनों का अभ्यास जारी रखना चाहिए।

काली आसन भी सामान्य प्रसव के लिए प्रयुक्त उकडू बैठकर किया जाने वाला एक सरल आसन है। प्रसूति के लिए इस आसन का अभ्यास करने में स्त्री को एड़ियों के बल जमीन पर दस-पन्द्रह मिनट बैठने का प्रयास करना चाहिए। शिशु का सिर बाहर आ जाने के पश्चात् स्त्री को इस अवस्था से सहजतापूर्वक उठने का अभ्यास होना चाहिए। प्रसूति के लिए काली आसन के अनेक शारीरिक एवं भावनात्मक लाभ हैं और उकडू बैठ कर किये जाने वाले आसन प्रसूति की तैयारी के लिए सर्वोत्तम होते हैं। इनके अन्तर्गत कौवा चाल, लकड़ी काटना, नमस्कारासन एवं उत्तरासन आते हैं। इन आसनों को गर्भावस्था के आरम्भ से अन्त तक मार्जारी आसन, कन्धरासन एवं प्रणामासन के साथ जारी रखा जा सकता है।

पालथी मारकर किये जाने वाले आसन, जैसे सुखासन, स्वस्तिकासन, अर्द्ध पद्मासन, पद्मासन या सिद्धयोनि आसन सम्पूर्ण गर्भावस्था में किये जाने चाहिए। ये आसन पैरों में रक्त संकुलता और टखनों के पास होने वाली सूजन से बचाते हैं जो प्राय: गर्भावस्था के अन्त में और कुर्सियों पर अधिक देर तक बैठने से हो जाती है। अन्त के महीनों में पालथी मारकर बैठने से शरीर में स्वाभाविक रूप से होने वाले भारीपन के अनुभव में भी कमी आती है।

प्राणायाम

गर्भावस्था की अवधि में प्राणायाम अत्यन्त महत्त्वपूर्ण होता है, क्योंकि इसके द्वारा अपशिष्ट उत्पादों का उचित उत्सर्जन हो जाता है तथा माता एवं शिशु को पर्याप्त ऑक्सीजन प्राप्त हो जाती है। प्राणायाम स्नायु तन्त्र को विशुद्ध और शान्त करता है जिससे स्वस्थ होने का सुखद अनुभव प्राप्त होता है।

शास्त्रों के अनुसार प्रथम तीन माह तक शिशु को प्राणिक आपूर्ति के लिए पूर्णत: माता पर निर्भर रहना पड़ता है। इसलिए गर्भावस्था के प्रारम्भिक महीनों में प्राणायाम का पर्याप्त अभ्यास नितान्त अनिवार्य है।

एक उपयुक्त कार्यक्रम के अन्तर्गत शीतली, शीतकारी, कपालभाति, भस्त्रिका एवं नाड़ीशोधन का अभ्यास करना चाहिए। यदि सम्भव हो तो इन अभ्यासों को शाम में भी दुहराया जाना चाहिए।

तीसरे महीने के अन्त में शिशु के शरीर में पंच प्राण क्रियाशील हो जाते हैं और इसलिये वह स्वयं के स्रोतों से सम्पन्न हो जाता है। माता को अपने और शिशु के लिए प्रचुर ऊर्जा की प्राप्ति को ध्यान में रखते हुए सदा प्राणायाम जारी रखना चाहिए जो उसके मन और शरीर को हल्का बनाये रखता है तथा प्रसूति गृह के लिए भी तैयार करता है।

गर्भावस्था के लगभग मध्य में शिशु की आकार वृद्धि के कारण गर्भाशय इतना बड़ा हो जाता है कि वह तन्तु पेट को ऊपर की ओर ठेल देता है। परिणामस्वरूप श्वास संक्षिप्त हो जाती है। कपालभाति को बन्द कर समवृत्ति प्राणायाम को छोटे अनुपात में प्रारम्भ किया जा सकता है। इस अवस्था में भस्त्रिका का अभ्यास कठिन प्रतीत हो सकता है, किन्तु फिर भी इसे रूपान्तरित करके जारी रखना चाहिए। इस समय के लिए नाड़ीशोधन सरलतम और अत्यन्त सन्तोषदायक होता है।

कुछ विशेष समस्याएँ

प्रातः वमन– गर्भावस्था के प्रारम्भिक दिनों में अधिकतर स्त्रियों को प्रात:काल मिचली होती है और कभी-कभी उल्टी भी हो जाती है। इस कष्ट के साथ-साथ मन्दता और सुस्ती भी आती है, भूख में कमी हो जाती है और कुछ विशेष सामग्री तथा भोजन पकने की गन्ध से अरुचि उत्पन्न हो जाती है। कभी-कभी प्रात: वमन कई महीनों तक जारी रहता है, किन्तु अधिकतर स्त्रियों में यह तीसरे महीने के अन्त तक स्वत: बन्द हो जाता है।

इस बीच सीमित आहार एवं कुंजल क्रिया द्वारा इस समस्या की तीव्रता को कम किया जा सकता है। तैलीय तथा भारी आहार से पूरी तरह परहेज करना चाहिए, विशेषकर रात में, और रात का भोजन शाम पाँच से सात बजे के बीच ले लेने का प्रयास करना चाहिए। प्रात: कुछ घण्टे तक कष्ट से पीड़ित होने के बजाय पहले ही कुंजल क्रिया कर लेनी चाहिए। कुंजल पेट को धोकर मिचली को रोकता है। यह भूख और जठराग्नि को उत्प्रेरित करता है। मानसिक रूप से आप ताजगी और स्पष्टता का अनुभव करेंगी तथा दिन का आरम्भ करने के लिए आपके पास पर्याप्त ऊर्जा और आशाएँ उपलब्ध रहेंगी। चूँकि यह वमन अक्सर गर्भावस्था के प्रारम्भिक काल में स्वत: होता है, इसलिए चेतनता के साथ होने वाले इस वमन को हानिकारक नहीं माना जा सकता, विशेषकर जब आप इससे तनावमुक्त रहती हैं।

मलबद्धता या कब्जियत– गर्भावस्था के उत्तरार्द्ध में जब शिशु का भार बढ़ने लगता है और वह गतिशील होकर अपनी स्थितियाँ बदलने लगता है तो अनेक स्त्रियों में कब्ज की समस्या उत्पन्न हो जाती है जो अपने आप में न केवल कष्टपूर्ण है, बल्कि पीठ दर्द और आलस्य को भी बढ़ा देती है। रूखा-रेशेदार भोजन और जल की पर्याप्त मात्रा कुछ सहायक हो सकते हैं, किन्तु इस समस्या को पूर्णत: दूर नहीं किया जा सकता। इसके लिए लघु शंखप्रक्षालन करने का परामर्श दिया जाता है।

लघु शंख प्रक्षालन की प्रक्रिया पूरे पाचन संस्थान की सफाई तो करती ही है, आँतों को विशेष रूप से धो देती है। इसके अभ्यास के लिए नमकयुक्त छ: गिलास पानी पीया जाता है और बीच-बीच में कुछ आवश्यक आसन किये जाते हैं। इस प्रक्रिया के क्रम में पेट को संकुचित नहीं किया जाता, बल्कि ऐसे आसन बताये जाते हैं जो सुरक्षित तो होते ही हैं, जिन्हें गर्भावस्था के अन्त तक भी किया जा सकता है।

लघु शंखप्रक्षालन निश्चित रूप से कब्ज को दूर करेगा और शरीर को हल्केपन का अनुभव प्रदान करेगा। छठे महीने के बाद इसका अभ्यास सप्ताह में एक या दो बार करना चाहिए। यदि माता में जल रोकने, अवधारण करने की प्रवृत्ति हो तो इसे कम करने के लिए इस क्रिया के बाद सबसे पहले एक बड़ा ग्लास बार्ली का पानी, नारियल का पानी या चावल की कंजी लेनी चाहिए तथा आवश्यकतानुसार दिन में बिना नमक का भोजन लेना चाहिए।

शोथ (इडिमा)– शरीर में अतिरिक्त जल का अवधारण होना शोथ है जो चेहरे, हाथ, टखनों, कलाई या पैरों की सूजन के रूप में दृष्टिगत होता है। दिन के अन्त में सूजन के बढ़ने की प्रवृत्ति होती है। गर्भावस्था में, विशेषकर बाद के महीनों में कुछ शोफ का होना स्वाभाविक है, किन्तु इन्हें भी पवनमुक्तासन के अभ्यास से कम किया जा सकता है। पवनमुक्तासन की पहली शृंखला (गठिया सम्बन्धी) का अभ्यास दोपहर के अन्त में या शाम के प्रारम्भ में किया जाना चाहिए और पैरों के लिए किये जाने वाले आसनों पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए। ये शरीर में ऊतकों के बीच संचित जल को निचोड़ कर निकालने, रक्त संचार को बढ़ाने तथा परिसंचारी एवं लसिका (लिम्फ) तन्त्रों के द्वारा द्रव का संवहन करने में सहायक होते हैं। कन्धरासन या सरल मत्स्यासन भी गुर्दों को अतिरिक्त द्रव शरीर से बाहर निकालने के लिए उत्प्रेरित करेगा।

नमक की अधिकता से परहेज करना चाहिए, किन्तु अतिन्यूनता भी हानिकारक होती है, क्योंकि इसके कारण मांसपेशियों में ऐंठन हो सकती है और दूध के उत्पादन में बाधा उत्पन्न हो सकती है। इससे बेहतर यह है कि हरे नारियल का पानी, बार्ली का पानी या चावल की कंजी को स्वाभाविक मूत्रवर्द्धक के रूप में लिया जाये।

विषरक्तता (टॉक्सीमिया)– कुछ जल अवधारण स्वाभाविक होता है, किन्तु कुछ स्थितियों में पाँचवें महीने के पश्चात् जब अचानक शोथ बढ़ जाता है तो यह विषरक्तता का संकेत भी हो सकता है। गर्भावस्था में चयापचयक विषरक्तता एक गम्भीर स्थिति होती है जो बाद की अवधि में उत्पन्न होती है। अपने पहले शिशु के समय 7–12% और बाद के शिशुओं में 5–6% स्त्रियाँ इससे प्रभावित होती हैं। शोथ की अतिरेकता होने पर उच्च रक्तचाप तथा मूत्र में प्रोटीन के लक्षण भी प्रकट होने लगते हैं। इसके साथ अत्यधिक सिर दर्द, दृष्टि में धुँधलापन और पेट दर्द भी हो सकता है। विषरक्तता यूँ तो विरले

ही अपनी अन्तिम अवस्था तक विकसित हो पाती है (जो प्राणघातक भी हो सकती है) यदि महिला नियमित चिकित्सकीय देख-रेख में रहे। यही कारण है कि गर्भावस्था की सम्पूर्ण अवधि में नियतकालिक चिकित्सकीय जाँच का सुझाव दिया जाता है।

विषरक्तता मूलत: आहार में पौष्टिक तत्त्वों, विशेषकर प्रोटीन एवं विटामिन-बी के अभाव से होने वाली समस्या है। इसका कुप्रभाव न केवल गरीब देशों की स्त्रियों पर होता है, जहाँ भोजन का अभाव है, बल्कि विकसित देशों की स्त्रियों पर भी होता है जो अधिक मात्रा में संसाधित एवं प्रक्रमित भोजन के लिए अन्नों, फलों एवं सब्जियों की उपेक्षा करती हैं। विषरक्तता से बचने के लिए सन्तुलित यौगिक आहार लिया जा सकता है जिसके अन्तर्गत सभी प्रकार की सब्जियाँ, कुछ फल, थोड़ा दूध या दही तथा प्रचुर मात्रा में अनाज, जैसे– गेहूँ, असंसाधित चावल, जौ, ज्वार, बाजरा, मकई आदि आते हैं।

आध्यात्मिक पोषण

गर्भावस्था के प्रारम्भ में भ्रूण गर्भाशय में कोशिकाओं के गुच्छे के रूप में विकसित होता रहता है जहाँ माँ से अलग उसका कोई अस्तित्व नहीं होता। तीसरे महीने में पंचप्राणों की प्रेरणा से विकसित हो रहे शिशु को प्राणिक ऊर्जा का व्यक्तिगत स्रोत उपलब्ध हो जाता है और वह एक शारीरिक अस्तित्व प्राप्त कर लेता है। चौथे महीने में 'जीव' शरीर रूपी वाहन में, जो पहले से ही इसकी तैयारी कर रहा था, प्रवेश कर जाता है और इस समय से उस अजन्मे शिशु की अपनी चेतना, अपनी आत्मा हो जाती है। इस क्षण से माँ एक ऐसे व्यक्ति का वहन करने लगती है जिसकी अपनी विलक्षण आध्यात्मिक प्रतिभाएँ एवं आध्यात्मिक क्षमताएँ होती हैं। तब माँ को उस शिशु का केवल शारीरिक पोषण नहीं करना होता, बल्कि अपनी चेतना की शुद्धता एवं शक्ति के द्वारा उसका आध्यात्मिक सिंचन भी करना होता है।

बुद्धिमानों ने हमेशा यह पाया है कि बच्चे के आध्यात्मिक व्यक्तित्व का ताना-बाना गर्भ में ही बुना जाता है। यह जानकारी हमें शास्त्रों के माध्यम से प्रह्लाद तथा परीक्षित की कथाओं के रूप में प्राप्त हुई है।

प्रह्लाद का पिता हिरण्यकशिपु एक राक्षस तानाशाह था जिसने निरंकुश होकर अपनी प्रजा की स्वाभाविक स्वतन्त्रता का दमन किया, विशेषकर उनकी

उपासना की स्वतन्त्रता का। प्रह्लाद जब गर्भ में ही थे तभी उसकी माता अपने दुष्ट पति के महलों को त्याग ऋषि नारद के आश्रम में चली गयी थीं, जहाँ उन्होंने उसे आध्यात्मिक सत्य का ज्ञान दिया और भगवान् विष्णु की विशेष महिमाओं से अवगत कराया। यद्यपि प्रह्लाद गर्भ में ही थे, फिर भी वे उस ज्ञानपूर्ण दीक्षा के सहभागी हुए और तभी वे पिता के प्रकोप के बावजूद बाल्यकाल से ही भगवान् विष्णु के निष्ठावान् भक्त बने। प्रह्लाद की भक्ति के कारण ही श्री हरि ने उन्हें ऐसी आन्तरिक शक्ति प्रदान की जिसके द्वारा वह अपने अत्याचारी पिता के विनाश का कारण बने और बाद में उन्हें उच्चतम सिद्धि प्राप्त हुई।

परीक्षित का जीवन भी गर्भ के अनुभवों से प्रेरित था। कुरुक्षेत्र के युद्ध के पश्चात् अश्वत्थामा ने पाण्डवों की जन्मी-अजन्मी, सभी सन्ततियों की हत्या के उद्देश्य से एक प्रक्षेपास्त्र छोड़ा। इसका मुख्य लक्ष्य थी उत्तरा, जिसके गर्भ में अर्जुन का पोता पल रहा था।

कुन्ती को दिये गये वचन को पूरा करने के लिए श्री कृष्ण एक प्रकाश पुंज के रूप में उत्तरा के गर्भ में प्रवेश कर गये। गर्भ के शिशु को प्रक्षेपास्त्र के सन्निकट होने पर जो अतीव उष्णता का अनुभव हुआ था वह अचानक शीतल हो गया। उसने एक प्रकाश को अपने चारों ओर घूमते देखा जो झुलसाने वाले उस प्रक्षेपास्त्र से उसकी रक्षा कर रहा था। वह बालक एक धर्मपरायण राजा के रूप में विकसित हुआ, सबका चहेता बना और श्रीमद्भागवत् के प्रसार का माध्यम बना। उसे परीक्षित नाम दिया गया। परीक्षित– वह जो ढूँढ़ता है, सचमुच, वह आजीवन उस प्रकाश को ढूँढ़ता रहा, जिसने जन्म के पूर्व ही उसकी रक्षा की थी। अन्ततः वह श्रीकृष्ण के रूप में उस प्रकाश को पहचान पाया, जो प्रेम और प्रकाश के प्रतिरूप हैं।

ये चिरकालीन कथाएँ शिशु के जन्म के पूर्व से ही उसे आशीर्वादित करने के महत्त्व का स्मरण कराती हैं। आज के शिशु चिकित्सक तथा मनोचिकित्सक भी ऐसा मानने लगे हैं कि व्यक्तित्व की कुछ विशिष्टताएँ शिशु के जन्म से पूर्व के विशेष वातावरण का परिणाम हो सकती हैं। गर्भाशय के वातावरण का रासायनिक पक्ष, विशेषकर आवश्यक हॉर्मोनों का सही अनुपात माता के सर्वांगीण स्वास्थ्य पर निर्भर रहता है। किन्तु यह सम्भव नहीं, और शायद कभी न हो कि जन्म के पूर्व के अनुभव के प्रभावों और वंशानुक्रम के द्वारा प्राप्त विशेषताओं के अन्तर को पहचाना जा सके। फिर भी, यह तथ्य है कि माता के

स्वास्थ्य तथा उसकी मनोवृत्ति का प्रभाव शिशु के विकास पर पड़ता है। माँ की बीमारी और उसके स्नायुओं का तनाव निश्चित रूप से बच्चे को उसके जन्म के पूर्व और पश्चात् कुप्रभावित करते हैं।

इस सन्दर्भ में योग की शिथिलन तथा ध्यान की क्रियाएँ अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। शरीर में होने वाले अनेक सूक्ष्म परिवर्तनों के कारण गर्भावस्था में अनेक स्त्रियाँ भावनात्मक रूप से संवेदनशील हो जाती हैं। उन्हें विचित्र वस्तुओं को खाने की लालसा होती है, भाव-प्रवण स्वप्न आ सकते हैं, अचानक अकारण विषाद उत्पन्न हो सकता है, या आँसू आ सकते हैं। इस प्रकार के अनुभव न केवल दुर्बल करते हैं, बल्कि उनकी गम्भीरता शरीर की व्यवस्था को अस्त-व्यस्त कर सकती है। यौगिक शिथिलन की ऐसी अनेक तकनीकें हैं जिनका उपयोग भावनात्मक तनाव को कम करने तथा आने वाले बच्चे के लिए सामंजस्यपूर्ण वातावरण तैयार करने में किया जा सकता है।

यद्यपि बच्चा गर्भ में सुरक्षित रहता है, किन्तु बाहरी वातावरण से अप्रभावित नहीं रहता। वह ध्वनि के प्रति विशेष रूप से संवेदनशील होता है। बच्चे की हृदयगति अनपेक्षित और तीव्र ध्वनि से बढ़ जाती है तथा उस पर घण्टियों के बजने या लोरियों के गाने का प्रभाव भी पड़ता है। गर्भाशय के वातावरण में माँ के हृत्स्पन्दन की आश्वस्तिकारक लय बच्चे को सतत् प्रभावित करने वाला तत्त्व है।

जब माँ मन्त्र जप करती है, तो वह इसके द्वारा बच्चे की ध्वनि के प्रति संवेदनशीलता में एक और आयाम जोड़ देती है– एक आध्यात्मिक आयाम जो बच्चे की चेतना के केन्द्र में अनुगूँज उत्पन्न करता है। मन्त्र जप और ध्यान स्त्री को अपने अस्तित्व की गहराइयों में जाने का अवसर देते हैं जहाँ उसकी चेतना का विलय विकसित हो रहे बच्चे की चेतना के साथ होता है और उसकी चेतना बच्चे की चेतना पर सकारात्मक प्रभाव भी डाल सकती है।

योगनिद्रा

योगनिद्रा योग में ध्यान की ऐसी सहज तकनीक है जिसका अभ्यास दिन के किसी भी समय में बीस मिनट से एक घण्टे तक, कितनी देर भी किया जा सकता है। इसका अभ्यास लेट कर किया जाता है, अन्य आसनों की तरह बैठकर नहीं। इसकी ये विशेषताएँ गर्भावस्था में अभ्यास के लिए अत्यन्त सुविधाजनक एवं उपयुक्त हैं।

योगनिद्रा का अभ्यास सामान्यत: शवासन में किया जाता है, किन्तु अनेक स्त्रियों की, विशेषकर गर्भावस्था की अन्तिम स्थिति में, श्वास शवासन में संक्षिप्त चलने लगती है। ऐसी स्थिति में विकल्प के रूप में मत्स्य-क्रीड़ासन का सुझाव दिया जाता है। इस आसन में एक करवट होकर लेटा जाता है, नीचे का पैर सीधा रहता है और ऊपर के पैर को घुटने से मोड़कर एक तकिये पर रखा जाता है ताकि पेट पर दबाव नहीं पड़े। चिकित्सक प्रसूति के लिए इस स्थिति को बहुत पसन्द करते हैं तथा सोते समय अनेक व्यक्ति स्वत: इस स्थिति में आ जाते हैं, गर्भवती माताओं के लिए यह एक आरामदेह विकल्प है।

ऐसे समय में जब स्त्रियाँ अपने शरीर के प्रति अत्यन्त संवेदनशील हो जाती हैं, यह तकनीक शरीर की शिथिलीकृत सजगता के द्वारा मन को तनावमुक्त करती है। जब मन उस स्थिति में पहुँच जाता है तब उसमें एक क्रम से संकेतों और छवियों को प्रतिरोपित किया जाता है, जिन्हें अनासक्त सजगता के साथ एक साक्षी के रूप में देखना होता है। यह सजगता यौगिक विकास के लिए महत्त्वपूर्ण है और ज्यों-ज्यों इसकी शक्ति एवं क्षेत्र का विस्तार होता है, प्रेम, शान्ति और सामंजस्य की सकारात्मक भावनाएँ जीवन में व्याप्त होती जाती हैं। यह शिशु के विकास के लिए सर्वोत्तम भावनात्मक परिवेश है जो शिशु के लिए गर्भ से निकलने के पश्चात् पूर्णत: सुरक्षात्मक भी है। इस प्रकार का साक्षी भाव प्रसूति काल के लिए महत्त्वपूर्ण होता है, क्योंकि यह माता को उसकी शारीरिक वेदना से मुक्त करता है तथा उस समय हो रही घटनाओं के प्रति अधिक सजग होने में मदद करता है।

योगनिद्रा में क्रमिक कल्पनाएँ माता के लिए विशेष रूप से उपयोगी हैं, ये माता को उसके गर्भ में शिशु के विकास की सूक्ष्म अवधारणा प्रदान करती हैं। योगनिद्रा की अति संवेदनशील तथा विस्तीर्ण अवस्था में माता न केवल अपने, बल्कि अपने शिशु के भी अधिक निकट होती है। घनिष्ठता की चेतन अनुभूति गर्भावस्था को माता के आध्यात्मिक विकास और पुनर्जन्म के अवसर में रूपान्तरित कर देती है।

गर्भाशय में जीवन

चिकित्सा-विज्ञान ने मानव भ्रूण के दैनिक विकास, गर्भ के रूप में इसके विकास तथा अन्तत: शिशु के रूप में इसके जन्म के विषय में बहुत कुछ

पता लगाया है। गर्भ धारण के छ: या सात दिनों के बाद 'नया जीव' स्वयं को गर्भाशय के अस्तर में आरोपित कर लेता है। इस अवस्था में इसे तब तक भ्रूण कहते हैं जब तक कि इसका वर्ग पहचानने योग्य न हो जाये, मनुष्य के लिए यह लगभग सातवाँ सप्ताह होता है। इसके बाद इस जीव को इसका जन्म होने तक गर्भ कहा जाता है।

जब भ्रूण एक महीने से कम का होता है तो उसके हाथ-पैर छोटी कलियों के समान प्रतीत होते हैं। उस समय भ्रूण पूर्णत: अपना रूप ग्रहण कर लेता है, यद्यपि उसकी लम्बाई आधे इंच से भी कम होती है। हृदय का स्पन्दन जीवन के पहले महीने के अन्त के कुछ दिनों पूर्व प्रारम्भ हो जाता है। इस समय शिशु एक ऐसी थैली (ऐम्नियॉटिक सैक) में बन्द रहता है जो पूर्णत: द्रव पदार्थ से भरी होती है। वह इस थैली में जन्म के समय या कुछ पहले तक रहता है। जब यह थैली फट जाती है, तब हवा के साथ इसका सम्पर्क होता है।

सातवें सप्ताह तक भ्रूण मानव के रूप में पहचाने जाने योग्य हो जाता है। मस्तिष्क पर्याप्त रूप से विकसित होकर विद्युत आवेशों को सम्प्रेषित करने लगता है तथा इतनी प्रारम्भिक अवस्था में भी मस्तिष्क अन्य अवयवों के बीच समन्वय स्थापित करता है। भ्रूण का विकास प्रतिदिन लगभग एक मिलीमीटर की दर से होता है। यह विकास नियमित ढंग से नहीं होता है, बल्कि पहले एक अंश विकसित होता है और फिर दूसरा। भ्रूण के छियालीस से अड़तालीस दिन का होने पर उसमें अस्थि पंजर का विकास आरम्भ होता है।

तीसरे महीने की अवधि में भ्रूण हिल-डुल सकता है और वह अत्यन्त सक्रिय भी हो सकता है। इसकी मांसपेशियाँ भी विकसित हो जाती हैं, इसलिए यह अपने हाथ-पैर हिला सकता है और शीघ्र ही यह पकड़ना भी सीख लेता है। मांसपेशियो में होने वाले संकुचन को, जो बाद में मुखाभिव्यक्तियों का रूप ले लेते हैं, अंकित किया जा सकता है। अधिकांशत: माता को अपने बच्चे की गति का अनुभव तब तक नहीं होता है जब तक वह पूरी तरह विकसित नहीं हो जाता और गर्भाशय फैलकर श्रोणि तल से ऊपर नहीं हो जाता। और यह प्राय: चौथे या पाँचवें महीने में होता है।

स्नायु तन्त्र भी विकसित होता रहता है– भ्रूण दबाव और तीव्र ध्वनि पर प्रतिक्रिया व्यक्त कर सकता है। बाह्य उद्दीपक के प्रति संवेदनशीलता शायद गर्भ के लिए अत्यन्त आवश्यक है। जन्म के पूर्व के वातावरण का प्रभाव भी यह निश्चित करने के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है कि व्यक्ति की प्रतिक्रियाएँ क्या

होंगी। सम्भावित वयस्क पर जन्म के पूर्व के वातावरण तथा उसके शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य पर उस वातावरण के प्रभाव के विषय में हम उतना नहीं जानते हैं जितना हमें जानना चाहिए। भ्रूण रचना एवं उसके विकास पर एक्स-रे, कई दवाओं (निकोटीन आदि) और कुछ अन्य पदार्थों के दुष्प्रभाव को हम अवश्य जानते हैं।

ऐसा माना जाता है कि सर्वप्रथम मानव शरीर के मुख में संवेदना आती है। आँखों, हाथों तथा अन्य अंगों को स्नायुओं के पर्याप्त अंश बाद में प्राप्त होते हैं जो उन्हें स्पर्श के प्रति संवेदनशील बनाते हैं। नौवें सप्ताह तक भी स्पर्श के प्रति संवेदनशील नहीं हो पाने वाले भ्रूण जीव के महत्त्वपूर्ण शारीरिक अंग हैं पीठ एवं सिर का ऊपरी हिस्सा, जो जन्म के समय तक संवेदनहीन रहते हैं।

चौथे महीने के अन्त तक बच्चे का भार जन्म के समय तक होने वाले उसके भार का आधा हो जाता है। पाँचवें महीने से माँ को अपने बच्चे की गति का पता चलने लगता है। वह सोता है, जागता है और अपनी मनपसन्द शारीरिक स्थितियाँ भी अपना लेता है। छठे महीने में कुछ वसा बच्चे के शरीर पर संचित होने लगती है, दूध के दाँतों की जड़ें तो विकसित होती ही रहती हैं, उनके पीछे स्थायी दाँतों की जड़ों को भी स्थान मिल जाता है। छठे महीने के अन्त तक बच्चे की लम्बाई लगभग एक फुट हो जाती है और उसका भार लगभग आधा किलोग्राम हो जाता है। उसकी अंगुलियों के नाखूनों का विकास प्रारम्भ हो जाता है और वह अत्यन्त सक्रिय हो जाता है।

गर्भाशय के अन्तिम तीन महीनों के जीवन में शरीर के अनेक अंगों को पूर्णता प्राप्त होती है, किन्तु यह मात्र उनका परिष्करण होता है। इस समापक अवधि में बच्चा विकसित होता रहता है, उसका भार बढ़ता है और मांसपेशियों पर उसे नियन्त्रण प्राप्त हो जाता है। जन्म के समय तक उसका आकार इतना बड़ा हो जाता है कि गर्भाशय की सीमित परिधि में उसकी गति अवरुद्ध हो जाती है। उसकी आवश्कताएँ ऐसी हो जाती हैं जिनकी आपूर्ति में नाभि रज्जु असमर्थ हो जाती है।

ऐसा अपूर्व विकास माँ के शरीर के अन्दर होता रहता है जिसके लिए उसे चेतन स्तर पर कोई प्रयास नहीं करना पड़ता। विभिन्न यौगिक अभ्यासों के माध्यम से गर्भवती माता अपने गर्भ के प्रति प्रगाढ़ घनिष्ठता की अनुभूति के साथ अधिक सजग हो सकती है।

प्रसव-क्रिया

प्रसव की प्रक्रिया उस समय प्रारम्भ होती है जब पीयूषिका (पिट्यूटरी) ग्रन्थि से पीटोसीन नामक हॉर्मोन स्रावित होता है और ऐम्नियॉटिक थैली फट जाती है और वह द्रव पदार्थ बह जाता है जिसने बच्चे को आघातों से अब तक सुरक्षित रखा है। गर्भावस्था की सम्पूर्ण अवधि में गर्भाशय में अक्सर होने वाले संकुचन की पुनरावृत्ति एवं तीव्रता बढ़ जाती है और यही प्रसव वेदना का आरम्भ है।

प्रसव की प्रारम्भिक अवस्था में ये संकुचन पन्द्रह सैकण्ड से एक मिनट तक के होते हैं। इस क्रम में गर्भाशय में धीरे-धीरे कड़ापन आता है जो अधिकतम स्थिति में आने के बाद धीरे-धीरे फैल जाता है। यह अवस्था बच्चे के आकार और स्थिति, माँ के श्रोणि प्रदेश (पेल्विस एरिया) के आकार तथा गर्भाशय के व्यवहार के अनुसार दो से चौबीस घण्टों की हो सकती है। इस समय गर्भाशय की लम्बगत मांसपेशियाँ अनैच्छिक रूप से गर्भाशय ग्रीवा की वर्तुल मांसपेशियों को खींचकर खोलने में सक्रिय रहती हैं। ज्यों-ज्यों गर्भाशय ग्रीवा अधिकाधिक खुलती जाती है, संकुचन की प्रबलता और बारम्बारता तब तक बढ़ती जाती है जब तक गर्भाशय ग्रीवा पूर्णत: फैल नहीं जाती।

प्रसव की उस अवस्था को संधिकाल की अवस्था कहते हैं जो गर्भाशय ग्रीवा में बच्चे का सिर समाने के लिए दस सेन्टीमीटर का फैलाव आने और बच्चे को प्रसव नलिका में प्रवेश करने देने के तुरन्त पहले होती है। प्राय: यही अवस्था सर्वाधिक वेदनापूर्ण होती है। इसके साथ मिचली, पैरों में ऐंठन, कंपकंपी, पीठ दर्द आरम्भ हो जाता है, चिड़चिड़ापन और भय भी उत्पन्न हो जाता है।

प्रसव की दूसरी अवस्था में बच्चे को बाहर निकाल देने की उत्कट इच्छा उत्पन्न हो जाती है। किन्तु इस प्रवृत्ति को तब तक रोकना चाहिए जब तक गर्भाशय ग्रीवा पूर्णत: फैल न जाये। जब ऐसा हो जाता है, तब आप बच्चे को बाहर ठेलने की इच्छा को पूरा कर सकती हैं। अब संक्रमण अवस्था की वेदना उल्लास की भावना में रूपान्तरित हो जाती है, क्योंकि इस संसार में बच्चे की यात्रा प्रारम्भ करने में आप स्वयं सक्रिय भाग लेने लगती हैं।

प्राय: इसी अवस्था में निश्चेतक दिया जाता है, किन्तु यदि उचित प्रशिक्षण एवं तैयारी हो तो इसकी आवश्यकता नहीं भी हो सकती है। स्वाभाविक प्रसूति के क्रम में प्रसव की पराकाष्ठा पर भी आप सचेत रहेंगी जिसकी अनुभूति वेदना के रूप में नहीं, बल्कि आनन्द के रूप में होगी।

प्रसव की तीसरी अवस्था में बच्चे के निकलने के बाद नाभि रज्जु बाहर आ जाता है। यह प्राय: पाँच से दस मिनट के अन्तराल में हो जाता है। इसके पूरी तरह निकल जाने के बाद प्रसूति की प्रक्रिया पूर्ण हो जाती है।

प्रसूति में योग

गर्भधारण करना कोई रोग नहीं है जिसके लिए निरन्तर औषधियों का सेवन किया जाय। यद्यपि कभी-कभी इनकी सहायता की आवश्यकता होती है, फिर भी अधिकांश प्रसूतियाँ स्वाभाविक होती हैं और बिना किसी कष्ट के उन्हें पूरा किया जा सकता है। यह भी आवश्यक नहीं कि प्रसूति एक यंत्रणापूर्ण अनुभव ही हो, हमारे भय और अपर्याप्त तैयारी इसे ऐसा रूप दे देते हैं। हमें प्रसव की वेदना और श्रम-साध्य प्रयास के अन्तर को समझना होगा जो आवश्यक तो है ही, आनन्दप्रद भी है।

यौगिक तकनीकों के उपयोग से कुछ स्त्रियों के लिए प्रसूति पूर्णत: वेदनाहीन होती है, जबकि अधिकांश स्त्रियाँ प्रसव की अन्तिम अवस्था में आधे से एक घण्टे की पीड़ा का अनुभव करती हैं। यौगिक तकनीकों के द्वारा यदि इस पीड़ा को पूर्णत: समाप्त नहीं भी किया जा सके तो उसे निश्चित रूप से कम किया जा सकता है।

इससे अधिक महत्त्वपूर्ण यह है कि योग हमें प्रसूति के समय पूर्णत: सजग रहने योग्य बनाता है ताकि शरीर की सहज प्रवृत्तियों के प्रति, जो इस समय प्रकट होती हैं, हमारी स्वत: स्फूर्त प्रतिक्रिया हो। जब कोई स्त्री नियमित रूप से योग का अभ्यास करती रहती है तो वह अपने अनुभवों का सजगता के साथ वेदनाहीन प्रसूति के लिए व्यवहार करती है।

काली आसन– परम्पराओं का अनुकरण करने वाली संस्कृतियों में प्रसूति के लिये उकड़ू बैठने वाले काली आसन को अपनाया जाता है। यह आसन प्रसव की उत्तर अवस्थाओं तथा प्रसूति के लिए अत्यन्त लाभप्रद है। अनेक दशकों से आधुनिक स्त्रियाँ प्रसूति के समय पीठ के बल लेटकर दोनों पैरों को घुटनों से मोड़ कर फैलाये रखती हैं। यह विशेषकर अस्पताल में प्रशान्तावस्था (सिडिटेड) में होने वाली प्रसूति की स्थिति में होता है जहाँ टखनों को सहारा देने के लिए प्रसूति टेब पर पट्टियों से बाँध दिया जाता है। इस अवस्था में प्रसूति नलिका क्षैतिज और ऊर्ध्वमुखी हो जाती है जिससे स्त्री को गुरुत्वाकर्षण के विरुद्ध प्रयास करना पड़ता है। उकड़ू आसन की अपेक्षा

इसमें मांसपेशियों को अधिक बल लगाना पड़ता है और इस तरह ऊर्जा पीठ और पैरों की मांसपेशियों में व्यर्थ नष्ट हो जाती है।

काली आसन में प्रसूति-नलिका तथा श्रोणि तल अधोमुखी होते हैं, जिससे उन्हें गुरुत्वाकर्षण एवं अपान शक्ति का लाभ प्राप्त होता है, जो श्रोणि में प्रवाहित होने वाली अधोमुखी शक्ति है। यह उकड़ू आसन स्त्री को गर्भाशय के प्रत्येक संकुचन पर पूरी क्षमता, शक्ति एवं नियन्त्रण के साथ बच्चे को नीचे लाने योग्य बनाता है और प्रसव जल्दी से पूरा होता है। पर्याप्त यौगिक तैयारी रहने पर एक चिकित्सक या प्रसाविका के नाम मात्र निर्देशन में एक स्त्री काली आसन में सरलता से बच्चे को जन्म दे सकती है।

काली आसन से प्रसूति के समय माता की शारीरिक एवं आध्यात्मिक सहभागिता में वृद्धि हो जाती है। उसमें माँ काली का आत्मविश्वास एवं उनकी शक्ति आ जाती है, और प्रसूति एक शक्तिशाली अभिव्यक्ति बन जाती है। यह उचित प्रयासों के द्वारा उपलब्धि का एक अनुष्ठान बन जाता है।

प्राणायाम

इस सम्बन्ध में प्रसूति कक्ष के अन्दर प्राणायाम पर मुख्य रूप से जोर दिया जाता है। ज्यों-ज्यों गर्भावस्था बढ़ती जाती है, प्राणायाम के शिथिलन तथा अनुप्राणन पक्ष पर मन की स्पष्टता के लिए श्वास के साथ शरीर के अनुभवों एवं गतिविधियों में सामंजस्य स्थापित करने की कला को सीखने पर बल दिया जाता है। प्रसूति के वास्तविक समय में श्वास, शरीर एवं मन का सामंजस्य स्त्री को श्वास की लय एवं गर्भाशय के संकुचन को सम्बद्ध करने में मदद करता है, जिससे वह प्रसव को नियन्त्रित रखते हुए इस सम्पूर्ण प्रक्रिया में एक उल्लासपूर्ण सजगता बनाये रखती है। लयबद्ध श्वास थकान को कम करती है तथा भय एवं वेदना से बचाती है।

सम्भवत: आप ऐसा सोच सकती हैं कि प्रसूति के नाटक में प्राणायाम पर ध्यान नहीं दिया जा सकेगा, विशेषकर जब यह आपका पहला बच्चा हो। यदि आपके पति, मित्र या कोई प्रशिक्षित व्यक्ति उस समय आपका हाथ पकड़ें तथा आपको श्वसन एवं शिथिलन का निर्देश दें तो यह निश्चित ही आपके लिए सहायक होगा। फिर भी इन तकनीकों का अभ्यास प्रतिदिन प्राणायाम के अभ्यास के साथ किया जा सकता है तथा योगनिद्रा के क्रम में इसकी कल्पना की जा सकती है ताकि समय आने पर आप स्वत: उनका उपयोग करने लगें।

प्रसूति के समय श्वसन की चार प्रक्रियाएँ होती हैं–

1. संकुचन के प्रारम्भ होने पर गहरा यौगिक श्वसन
2. संकुचन के शिखर पर भस्त्रिका
3. संकुचनों के बीच सामान्य श्वसन
4. द्वितीय अवस्था के अन्त में बच्चे को बाहर ठेलते समय अन्तर्कुम्भक।

जब प्रसव प्रारम्भ होता है, तब अपने श्वास को गहरे यौगिक श्वसन के साथ समस्वर कर लें। नाभि के ऊपर-नीचे होने से इसका पता चलता है। जब संकुचन प्रबल होने लगे तो भस्त्रिका प्राणायाम करें। यहाँ भस्त्रिका के मूल रूप में हम थोड़ा परिवर्तन ला रहे हैं, नासिकाओं के द्वारा श्वास छोड़ने के स्थान पर खुले मुँह से श्वास निकालें।

जब संकुचन समाप्त हो जाय तो लम्बे और सहज अन्त:श्वसन के द्वारा श्वास को सामान्य होने दें तथा शरीर के तनाव और कड़ेपन को नि:श्वास के माध्यम से मुक्त होने दें। उसके बाद सामान्य श्वास को नियन्त्रणहीन चलने दें, किन्तु सजगता के साथ नाभि पर उसका अनुभव करती रहें। अगला संकुचन प्रारम्भ होने पर श्वास को तब तक गहराती जायें जब तक कि यौगिक श्वसन पूर्णत: आरम्भ न हो जाय और फिर उसी चक्र को दुहरायें।

श्वसन का यह ढाँचा पारगमन में चलता रहेगा जहाँ बच्चे को समय से पूर्व बाहर निकालने की प्रवृत्ति को कुछ समय के लिये रोकना होगा। सजगता को नाभि से वक्ष के केन्द्र में स्थानान्तरित कर तथा भस्त्रिका द्वारा उत्पन्न हल्केपन की अनुभूति पर मन को केन्द्रित कर इसको नियन्त्रित किया जा सकता है।

प्रसव की दूसरी अवस्था में मुँह खोलकर हाँफने की प्रक्रिया जारी रहती है। इसी अवस्था में अपनी शक्ति लगाकर बच्चे को बाहर निकलने में मदद करनी चाहिए। इसका सबसे अच्छा तरीका है– श्वास को अन्दर रोककर अपनी पूरी ताकत लगा देना। इस क्रम में त्वरित तथा गहरा नि:श्वास निकलेगा और भस्त्रिका स्वत: प्रारम्भ हो जायेगा।

प्रसूति के सम्पूर्ण क्रम में संकुचनों के बीच पूर्णत: शिथिल होना आवश्यक है, विशेषकर श्रोणि प्रदेश और मूलाधार की मांसपेशियों का। उपर्युक्त मांसपेशियों का स्पष्ट तथा निश्चित निर्धारण और नियन्त्रण सरलता से हो सकता है यदि आप गर्भावस्था में मूलबन्ध का अभ्यास करती रही हों। योगनिद्रा में सजगता का त्वरित क्रमावर्तन भी सम्पूर्ण शरीर को शीघ्रता से शिथिलता प्रदान करेगा।

यदि माता पर्याप्त रूप से सबल तथा स्वस्थ है तो बिना मूर्च्छित हुए वह प्रसूति कक्ष में बहुत कुछ उपलब्ध कर सकती है। पिछले कई वर्षों में दवाओं की सहायता से प्रसूति सम्पन्न करना एक आदर्श बन गया है जबकि दुर्भाग्यवश उसके कारण माता सजग रहकर प्रसूति में सम्मिलित होने से तथा सुखद आध्यात्मिक जागरण के अवसर से वंचित हो जाती है।

प्रसूति के उपरान्त

गर्भावस्था में शरीर में निरन्तर परिवर्तन आते रहते हैं और यह प्रक्रिया प्रसूति के कुछ समय बाद तक जारी रहती है, किन्तु विपरीत क्रम में। प्रसूति के कुछ घण्टों के अन्दर शरीर अपनी सामान्य अवस्था में वापस आने लगता है। गर्भाशय में हल्के संकुचन का अनुभव हो सकता है, क्योंकि वह अपना पूर्व आकार ग्रहण करने लगता है। प्रसूति के समय गर्भाशय का भार लगभग एक किलोग्राम रहता है, जबकि दो सप्ताह के अन्दर यह सिकुड़ कर मात्र 350 ग्राम रह जाता है। स्तनपान कराने से भी संकुचन हो सकते हैं, किन्तु इनके कारण शायद ही पीड़ा होती है।

प्रसूति के लगभग दस सप्ताह बाद तक गर्भाशय से सूति स्राव (लोचिया) निरन्तर स्रवित होता रहेगा तथा यदि आप स्तनपान नहीं करा रही हैं तो छः से आठ सप्ताह के अन्दर सामान्य रूप से ऋतुस्राव भी आरम्भ हो जायेगा। स्तनपान कराने का सीधा प्रभाव इन संकुचनों को प्रेरित करने में पड़ता है, जिसे हम कभी-कभी बाद की पीड़ा कहते हैं, किन्तु शायद ही कभी सचमुच की पीड़ा होती है। प्रसूति के बाद एक-दो दिनों तक माता को कब्ज या मूत्र सम्बन्धी समस्याओं का अनुभव हो सकता है– मूत्र त्याग में कुछ रुकावट हो सकती है अथवा खाँसते या हँसते समय अनैच्छिक रूप से मूत्र निष्कासित हो सकता है। यदि माता कुछ दूर तक टहलना और योग के हल्के अभ्यास करना आरम्भ कर दे तो वह इस परेशानी से भी मुक्त हो सकती है।

प्रसवोत्तर विषाद

प्रसूति के बाद कुछ दिनों तक स्तन में एक पदार्थ उत्पन्न होता है जिसे खीस या नवदुग्ध कहते हैं। लगभग तीसरे-चौथे दिन हॉर्मोनों में कुछ परिवर्तन आते हैं, जिससे दूध स्रवित होने लगता है। हॉर्मोनों में हुए इन परिवर्तनों के परिणामस्वरूप प्रत्येक माँ कुछ दिनों तक भावनात्मक रूप से दुर्बल अनुभव

करती है। प्राय: वह रोती है, उसे दु:स्वप्न आते हैं, उसे इस बात की चिन्ता होती है कि उसमें मातृत्व के लिए पर्याप्त परिपक्वता नहीं आई है, या वह यहाँ तक सोचने लगती है कि उसे बच्चा कतई नहीं चाहिए था। इस तरह की भावना प्राय: कुछ दिनों तक ही रहती है, किन्तु कुछ स्त्रियों में यह विषाद बन कर हफ्तों या महीनों तक रह जाती है।

प्रसूति के पश्चात् होने वाले हॉर्मोन असन्तुलन के कारण प्रसवोत्तर विषाद उत्पन्न होता है जिससे आसन तथा ध्यान के नियमित अभ्यास के द्वारा मुक्त हुआ जा सकता है। जो भी हो पर अन्य बच्चों को गोद लेने वाली माताओं के साथ भी यह समस्या उत्पन्न हो सकती है, जिससे यह संकेत मिलता है कि इसका मुख्य कारण स्त्री की असुरक्षात्मकता तथा अपर्याप्तता की भावनाएँ हैं। इस प्रकार से पीड़ित होने वाली स्त्रियों को प्राय: माता के रूप में अपने सक्षम तथा ममत्वपूर्ण होने में सन्देह होने लगता है।

ऐसे समय में कोई ऐसा व्यक्ति हो जिससे वह बातें कर सके, जो उसकी भावनाओं को समझ सके तो उसे बहुत आराम मिलता है। जब एक स्त्री को अपने परिवार से, मित्रों से तथा अन्य माताओं से आश्वस्ति प्राप्त होती है तो वह शीघ्र ही स्वस्थ हो जाती है। चूँकि थकान से नकारात्मक भावनाएँ बढ़ जाती हैं, इसलिए ध्यान के अभ्यास के द्वारा नींद की कमी को पूरा कर थकान को दूर किया जा सकता है।

माता को अपने भय को दबाना नहीं चाहिए, बल्कि उसका सामना करना चाहिये। प्रतिदिन ध्यान में कुछ समय लगाने से स्त्री को अपने अन्दर शान्ति का मरुउद्यान पाने में मदद मिलेगी। जहाँ उसे अपने सशक्त एवं ममत्वपूर्ण होने का भान होगा। इस प्रकार की दैनिक अभिपुष्टि अन्तत: उसे आश्वस्त करेगी और वह अपने भय से मुक्त हो जायेगी।

योगाभ्यास पुनः आरम्भ करें

नियमित रूप से योग का अभ्यास करने वाली स्त्रियों ने पाया है कि प्रसूति के पश्चात् उन्होंने आश्चर्यजनक शीघ्रता से स्वास्थ्य लाभ किया है तथा उनमें प्रसवोत्तर विषाद की सम्भावनाएँ भी कम होती हैं। प्रसूति के एक-दो दिनों के अन्दर बिछावन पर ही यौगिक श्वसन तथा नाड़ीशोधन प्राणायाम करने का सुझाव दिया जाता है। यदि कोई समस्या नहीं हो तो गठिया निरोधक पवनमुक्तासनों को पुन: प्रारम्भ किया जा सकता है। इस समय

श्रोणि तल की मांसपेशियों को पूर्ववत् सशक्त करने के लिए मूलबन्ध भी महत्त्वपूर्ण है।

प्रसूति के दो सप्ताह के अन्दर स्त्री के शरीर में पुन: परिवर्तन आ जाते हैं, इसलिए दो सप्ताह के बाद वह उन आसनों को पुन: आरम्भ कर सकती है जो वह गर्भावस्था के पूर्व करती थी। इन अभ्यासों को शनैः-शनैः वायुनिरोधक पवनमुक्तासनों से प्रारम्भ करना चाहिए, तत्पश्चात् शक्तिबन्ध के आसन और बाद में प्रति सप्ताह एक या दो मानक आसनों को पुन: प्रारम्भ कर देना चाहिए। उदरीय मांसपेशियों में कसाव लाने के लिए तथा प्रजनन अंगों को पुन: सशक्त बनाने के लिये प्रतिदिन मूलबन्ध एवं उड्डियान बन्ध का अभ्यास करना चाहिए।

अनुभवों से लाभ

गर्भावस्था के समय तथा प्रसूति के बाद कुछ महीनों तक एक अनुभवहीन माता को अन्य स्त्रियों की सहायता से बहुत कुछ सीखना होता है जो स्वयं माताएँ हैं। इस समय नानी-दादियाँ तथा अन्य प्रौढ़ाएँ स्वयं आकर अपने संचित अनुभव बताती हैं तथा आवश्यक जानकारियाँ देती हैं। सभी संस्कृतियों में गर्भधारण से सम्बन्धित कुछ रीति-रिवाज होते हैं। इन्हें अन्धविश्वास कहकर जल्दबाजी में इनकी उपेक्षा नहीं करनी चाहिए।

उदाहरण के लिए भारत में ऐसी प्रथा है कि एक गर्भवती स्त्री गर्भावस्था के अन्तिम तीन महीने तथा प्रसूति के बाद कम-से-कम छ: सप्ताह तक अपनी माँ के घर में रहती है। यह बात व्यर्थ प्रतीत हो सकती है और इसमें असुविधा भी हो सकती है, किन्तु आज भी यह प्रथा प्रचलित है, क्योंकि इसके अनेक लाभ हैं। अपनी माँ के घर में भावी माता अपने घर के प्रतिदिन के गृहकार्यों से मुक्त होकर गर्भावस्था के उत्तर पक्ष में आवश्यकतानुसार आराम पा सकती है। घर की अन्य स्त्रियाँ उसकी देखभाल करती हैं, उसका मार्गदर्शन करती हैं, यह देखती हैं कि उसे उपयुक्त आहार प्राप्त हो रहा है, उसे विभिन्न प्रकार की जड़ीबूटियों से युक्त काषाय तथा लेह इत्यादि देती हैं जो भारत में माता तथा शिशु के स्वास्थ्य के लिए दिया जाता है। इस सौहार्द्रपूर्ण वातावरण में अपने घर की दैनिक परेशानियों से दूर नवप्रसूता माता के पास अपने कल्याण तथा अपने बच्चे के आध्यात्मिक पोषण के लिए चिन्तन-मनन एवं ध्यान का समय होता है।

पुराने समय से कुछ ऐसी प्रक्रियाएँ चली आ रही हैं जो प्रसूति के बाद माँ को पुन: शारीरिक तथा भावनात्मक सन्तुलन प्राप्त करने में मदद करती हैं।

इनके अन्तर्गत प्रतिदिन मालिश, स्नान के अतिरिक्त माँ और बच्चे के लिए कुछ जड़ी-बूटियों का सेवन है। इन प्रारम्भिक सप्ताहों में अपनी माँ के घर में रहकर नव-प्रसूता माता अपने बच्चे की देखरेख करना सीखती है और साथ-ही उसे अपने बच्चे की गतिविधियों को जानने तथा उससे जुड़ने का अवसर प्राप्त होता है। इससे अपनी गृहस्थी का पूर्ण उत्तरदायित्व पुन: संभालने तक एक डरपोक स्त्री में भी माता के रूप में आत्मविश्वास उत्पन्न हो जाता है, वह अपने भय और सन्देहों से मुक्त होकर अपने बच्चे के साथ होने का वास्तविक आनन्द उठाती है।

भारतीय समाज के समान प्रत्येक समाज की अपनी प्रथाएँ होती हैं। दादी-परदादियों से प्राप्त हुई जानकारियाँ वंशानुगत सम्पत्ति के समान होती थीं, जिन पर अस्पताल की सुविधाओं के आने के पूर्व निर्भर किया जाता था। अब, यह आज की स्त्रियों पर निर्भर है कि वे उन मातृक सम्पदाओं को अपना लें इसके पूर्व कि यह प्राचीन बुद्धिमानी विलुप्त हो जाये। उन सारे प्राचीन सुझावों को पूरी तरह मानना शायद सम्भव नहीं हो, तो भी हम उन सब को एकत्र कर उनके सार को सुरक्षित रख सकते हैं।

उदाहरणार्थ, भारत में एक प्रथा है कि प्रसूति-स्नान के पश्चात् एक छोटे बर्तन में आग जला कर उसमें जड़ी-बूटियों तथा मसालों का मिश्रण डालकर सुगन्धित धुआँ तैयार किया जाता है। नव प्रसूता माँ उसके आरपार खड़ी होकर अपने केश सुखाती है जो धुएँ से पवित्र होते रहते हैं, साथ-ही उस धुएँ की उष्णता गर्भाशय में संकुचन लाती है ताकि वह पुन: अपने सही आकार में वापस आ जाये। प्रसूति के कुछ दिनों के बाद इस प्रक्रिया के स्थान पर हम मूलबन्ध के नियमित अभ्यास के द्वारा समान परिणाम प्राप्त कर सकते हैं। मूल प्रथाओं को शत-प्रतिशत वहन करना शायद कठिन हो, किन्तु उनके सार पूर्णतया पक्के हैं। यदि हम ध्यान से देखें तो पायेंगे कि पुरानी परम्पराओं के अनिवार्य तत्त्व परिष्कृत रूप में योग के अभ्यासों में उपस्थित हैं, जो न केवल गर्भावस्था में शारीरिक आवश्यकताओं की, बल्कि हमारी आध्यात्मिक आवश्यकताओं की भी पूर्ति करते हैं।

एक दीक्षा

हर बार जब एक स्त्री योग की सहायता से बच्चे को जन्म देती है तो वह अपने शरीर, मन तथा आत्मा की क्षमताओं को जीवन की मौलिक शक्तियों तथा चेतना के व्यष्टि एवं समष्टि रूपों के साथ संयुक्त कर देती है। जन्म होना

बच्चे के लिए प्रारम्भिक दीक्षा के समान है, और यह माता के लिए अपने आध्यात्मिक नवीनीकरण का अवसर है, इन कठिन क्षणों में अपनी क्षमताओं का स्वाभाविक उत्कर्ष ब्रह्माण्डीय घनिष्ठता के द्वार खोल देता है।

इतनी प्रखर वेदना के पश्चात्
कोई वेदना न रही –
मेरे नवजात पुत्र के मेरी छातियों पर आते एक शान्ति व्याप गई।
मैं उतराती रही गहरी नीली शान्ति की नीरव झील में
शनैः शनैः चहुँ ओर उतरती मखमल सी, मौन रात्रि,
तभी समझ पाई पीड़ा को और उसके प्रयोजन को
तभी बोध हुआ कि हम जन्म क्यों लेते हैं
और तब से धन्य है मेरा जीवन।

अभ्यास के कार्यक्रम

प्रथम तीन माह– अब तक जो साधना करती आई हैं, उसे जारी रखें। यदि आप अभी आरम्भ कर रही हैं तो इस पुस्तक के अन्त में 'आरम्भकों के लिए' दिये गये अभ्यासों की साधना करें।

दोनों ही स्थितियों में निम्नलिखित अभ्यासों को सम्मिलित कर लें–

प्राणायाम – सहज प्राणायाम (54 चक्र), सरल भस्त्रिका प्राणायाम (पाँच चक्र/आराम/पाँच चक्र)।

षट्कर्म – कुंजल क्रिया (सप्ताह में कम-से-कम दो बार)

चौथा माह आरम्भ होने पर– *अब तक चल रही साधना को बन्द कर दें तथा निम्नलिखित अभ्यासों को आरम्भ करें :*

आसन– शवासन, तितली आसन (सौ बार), नमस्कारासन (दस बार), चक्की चलाना (दस/दस बार), कन्धरासन (जितनी देर रोक सकें), मार्जारी आसन (पन्द्रह बार), कन्ध चक्रासन (सुखासन या सिद्धयोनि आसन में दस/दस बार), शीर्ष मुक्तासन (प्रत्येक क्रिया दस बार)।

प्राणायाम– भस्त्रिका प्राणायाम (7 चक्र), नाड़ीशोधन (10 चक्र/आराम/10 चक्र, अनुपात 1:1:2)।

षट्कर्म– लघु शंखप्रक्षालन (सप्ताह में एक या दो बार)।

अन्य– योगनिद्रा (दिन के भोजन के पूर्व या दोपहर में), मन्त्रजप (सुबह और शाम), मत्स्यक्रीड़ासन (सोने तथा आराम करने के लिए)।

प्रसूति के पश्चात्– *निम्नांकित अभ्यास करें*

आसन– पवनमुक्तासन भाग 1 (दोनों ओर 10–10 बार)।

प्राणायाम– सहज प्राणायाम (54 चक्र), नाड़ीशोधन प्राणायाम (10 चक्र, अनुपात 1:1:2)

बन्ध– मूलबन्ध (सरल, 100 बार), मूलबन्ध (श्वास के साथ, 10 बार)

अन्य– योगनिद्रा।

बाद में– *निम्नांकित अभ्यास करें*

आसन– पवनमुक्तासन भाग 2 (प्रत्येक को पाँच बार से आरम्भ कर दस तक बढ़ाना है), चक्की चलाना (10/10 बार)।

बन्ध– उड्डियान बन्ध (पाँच चक्र), मूलबन्ध (सरल, 100 बार), मूलबन्ध (श्वास के साथ, दस बार)।

अन्य– योगनिद्रा।

भ्रंश (प्रोलैप्स)

शरीर के किसी अवयव के विस्थापित होने या अपने स्थान से गिर जाने को 'भ्रंश' कहते हैं। मूत्राशय या मलाशय खिसक सकते हैं, किन्तु स्त्रियों में गर्भाशय का अपने स्थान से खिसक जाना अत्यन्त सामान्य है।

श्रोणि प्रदेश के अन्य अवयवों के समान गर्भाशय भी मांसपेशियों तथा तन्तुओं के सहारे श्रोणि तल के केन्द्र में मलद्वार तथा योनि के बीच जुड़ा रहता है। यदि ये मांसपेशियाँ तथा तन्तु टूट जायें, खिंच जायें या अपनी शक्ति खो दें तो वे दुर्बलता के कारण गर्भाशय को सहारा नहीं दे पाते, जो गुरुत्वाकर्षण के प्रभाव के कारण झूल कर योनि में चला आता है। गम्भीर परिस्थितियों में गर्भाशय वस्तुत: शरीर के बाहर भी निकल जाता है।

लक्षण

गर्भाशय भ्रंश के कारण पीठ के निचले हिस्से में निरन्तर दर्द रहता है और प्राय: योनि स्राव भी होता है। मूत्राशय पर दबाव पड़ने के कारण मूत्रत्याग भी प्रभावित होता है, शायद कुछ कठिनाई के साथ आपको बार-बार मूत्र त्याग करना पड़ता है। अपने मूत्राशय पर भी आपका नियन्त्रण नहीं रह पाता है, तभी तो हर बार हँसने या खाँसने से थोड़ा मूत्र स्वत: निकल जाता है। यदि गर्भाशय योनि के माध्यम से मलाशय पर दबाव डालने लगता है तो कब्जियत भी हो जाती है। गम्भीर स्थितियों में प्राय: यह प्रतीत होता रहता है कि योनि से कुछ निकला जा रहा है। भ्रंश का एक अत्यन्त स्पष्ट लक्षण यह है कि पीठ के बल लेटने पर गुरुत्वाकर्षण का प्रभाव समाप्त हो जाता है और सारे लक्षण भी लुप्त हो जाते हैं।

कारण

प्रसव के समय गर्भाशय को सहारा देने वाली मांसपेशियों तथा अस्थिबन्धों पर जो खिंचाव या दबाव पड़ता है, मूलत: उसी के कारण वे दुर्बल हो जाते हैं। भ्रंश गर्भाशय वाली स्त्रियों में 99% को कम-से-कम एक बच्चा हो चुका होता है। चिरकालिक कब्ज या बारम्बार दस्त होने से जो अतिशय तनाव होता है उससे भी गर्भाशय भ्रंश हो सकता है, किन्तु यह सामान्य नहीं है। वयवृद्धि तथा भारी शारीरिक काम भी इसके कारण हो सकते हैं। इसके लक्षण प्राय: रजोनिवृत्ति के बाद ही परिलक्षित होते हैं, जब प्रभावित मांसपेशियाँ तथा अस्थिबन्ध दुर्बल एवं क्षीण हो जाते हैं।

सुधार

एक बार जब कोई अस्थिबन्ध टूट जाता है तो उसे बिना शल्य क्रिया के सुधारना कठिन होता है और अत्यन्त दुर्बल मांसपेशियों को पुन: अपनी पूर्ण शक्ति प्राप्त करने के लिए कई महीनों तक प्रतिदिन व्यायाम की आवश्यकता होती है। भ्रंश की गम्भीर स्थितियों में योग का उपचार लाभप्रद हो सकता है तथा शल्य क्रिया की आवश्यकता नहीं भी पड़ सकती है। हल्के और हाल में हुए भ्रंश को तो कुछ महीनों के अन्दर उपयुक्त योगाभ्यासों के द्वारा निश्चित रूप से पूर्णत: सुधारा जा सकता है।

इस प्रयोजन के लिए विपरीतकरणी आसन अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। यह आसन शरीर को ऐसे कोण पर मोड़ता है कि उससे न केवल गुरुत्वाकर्षण का प्रभाव समाप्त हो जाता है, बल्कि गर्भाशय श्रोणि गुहा में अपनी उचित स्थिति में चला जाता है। उपचारात्मक उद्देश्य के लिए इस आसन का अभ्यास दिन में तीन बार कई मिनटों तक किया जाना चाहिए। प्रारम्भ में यह आसन पीठ के निचले हिस्से और नितम्ब के नीचे तकिया लगाकर तथा पैरों को दीवाल से टिकाकर किया जा सकता है। नियमित अभ्यास के बाद तकिया हटा दिया जा सकता है और अन्तत: बिना दीवाल के सहारे भी आसन किया जा सकता है। जब आपके आसन में स्थिरता आ जाये तो लगातार पाँच मिनटों तक उसी अवस्था में रहें। यदि इतना सम्भव नहीं हो तो सुविधापूर्वक आप जितनी देर इस आसन में रुक सकती हैं, रुकें। कुछ देर शवासन करने के बाद पुन: आसन दोहरायें।

सशक्त गर्भाशय के लिए भी एक महत्त्वपूर्ण आसन है – नौकासन। इसके अभ्यास के क्रम में स्वत: आन्तरिक संकुचन होता है जो गर्भाशय को खींचकर

कुछ देर के लिए उसके उचित स्थान पर रोके रखता है। सहारा देने वाले अस्थिबन्ध धीरे-धीरे शक्तिशाली होते जाते हैं।

नौकासन के अभ्यास से मूलबन्ध करने की क्षमता का विकास होता है जिसमें गर्भाशय ग्रीवा तथा उसके आसपास के क्षेत्र का संकुचन होता है। जब विपरीतकरणी आसन में दक्षता प्राप्त हो जाती है तब उसी आसन में मूलबन्ध का अभ्यास किया जाता है। प्रभावकारी उपचार तथा शरीर में स्वाभाविक रूप से उपस्थित स्वास्थ्यकारक ऊर्जा, अर्थात् प्राण के उद्दीपन के लिए मूलबन्ध के सरल रूप (त्वरित कुंचन) तथा पूर्ण रूप (कुम्भक के साथ दीर्घ संकुचन) का अभ्यास करना चाहिए।

दिन में कम-से-कम एक बार अन्य मुद्रा तथा बन्धों का अभ्यास भी करना चाहिए, जो न केवल मांसपेशियों को सशक्त बनाते हैं, बल्कि भ्रंश से क्षीण हुई शक्ति को भी पुन: वापस लाते हैं। खड़े होकर या बैठकर किये गए उड्डियान बन्ध से स्वत: दृढ़ मूलबन्ध हो जाता है। इन दोनों को मिलाकर जालन्धर बन्ध में नि:श्वास के साथ महाबन्ध किया जाता है। यह दिन में नौ बार करना चाहिए। इसके बाद अश्विनी मुद्रा के सौ त्वरित संकुचन होने चाहिए।

शीर्षासन, सर्वांगासन तथा हलासन भी सहायक होते हैं, किन्तु कोई भी ऐसा आसन जिसमें उदर के निचले हिस्से पर नीचे की तरफ दबाव पड़ता हो, उसे अवश्य छोड़ देना चाहिए। वर्जनीय आसनों में कौआ चाल, उत्थानासन, लकड़ी काटना, नमस्कारासन तथा सुप्त वज्रासन हैं। दोनों पैरों को सामने फैलाकर उत्तानपादासन में यूँ भी बैठना लाभप्रद है, क्योंकि इसमें श्रोणि अवयवों पर ऊपर की ओर हल्का-सा खिंचाव पड़ता रहता है।

नये आयाम

योग के द्वारा भ्रंश के सुधार के लिए महीनों तक दृढ़ता तथा सावधानी के साथ अभ्यास करने की आवश्यकता होती है। गम्भीर क्षति होने पर कभी-कभी अधिक समय भी लग जाता है। यह स्मरण रखना चाहिए कि कोई यौगिक अभ्यास केवल शरीर के लिए नहीं होता है। आप स्वयं अपनी साधना का सकारात्मक प्रभाव अपने भावनात्मक तथा आध्यात्मिक कल्याण के रूप में भी पायेंगी। भ्रंश के साथ होने वाली चिड़चिड़ाहट तथा विषाद के स्थान पर शान्ति एवं भावनात्मक स्थिरता आ जायेगी, प्राणिक ऊर्जा में होने वाली वृद्धि केवल योग के लिए प्रोत्साहित नहीं करेगी, बल्कि सामान्य जीवन भी

आनन्दपूर्ण हो जायेगा। स्त्रियों के लिए यह नयी बात नहीं है कि उपचार के लिए प्रारम्भ किये जाने वाले अभ्यासों के द्वारा उनके जीवन को अर्थपूर्ण तथा कल्याणकारी आयाम मिल गया है।

अभ्यास के कार्यक्रम

सुबह– निम्नलिखित क्रम में अभ्यास करें :
उड्डियान बन्ध मूलबन्ध के साथ (प्रत्येक बार जितनी देर रोक सकें), शवासन, नौकासन (5 बार, जितनी देर रोक सकें), मूलबन्ध (बैठकर, सरल, 100 चक्र; श्वास के साथ, 11 चक्र), विपरीतकरणी आसन (एक मिनट से आरम्भ करें और पाँच मिनट तक बढ़ायें, आवश्यकतानुसार), (आवश्यक लगे तो बीच-बीच में शवासन करें।
दोपहर के भोजन के पूर्व– विपरीतकरणी आसन (पाँच मिनट तक)।
संध्या में– सुबह के कार्यक्रम को दोहरायें।

मूत्र-प्रणाली के रोग

लगभग प्रत्येक स्त्री गर्भ धारण करने तथा अपने बच्चे को जन्म देने के क्रम में कम-से-कम एक बार अवश्य ही असंयति तथा मूत्राशय की सूजन जैसे मूत्र प्रणाली के रोगों से पीड़ित हो जाती है।

असंयति

मूत्र प्रवाह को रोक पाने की असमर्थता को असंयति कहते हैं। यह आंशिक भी हो सकती है या पूर्ण भी। पूर्ण असंयति सामान्य नहीं है, अधिक वृद्धावस्था में या स्नायु-तन्त्र के क्षतिग्रस्त हो जाने पर ही ऐसा होता है। यद्यपि आंशिक असंयति स्त्रियों में अधिकतर रजोनिवृत्ति के पश्चात् होती है, किन्तु यह किसी भी आयु में हो सकती है। यह दो रूपों में प्रकट होती है–

1. *शीघ्रता असंयति*– इस स्थिति में मूत्र त्याग करने की आवश्यकता का अनुभव होने तथा मूत्र त्याग शीघ्रता से करें, के अनुभव (कि उसे और रोका नहीं जा सकता) के बीच बहुत कम अन्तराल होता है।
2. *दबाव असंयति*– स्त्री के हँसने, खाँसने या किसी तरह का भारी काम (जैसे, कुछ भारी उठाना) करने पर मूत्र की अल्प मात्रा स्वत: निकल जाती है। मूत्राशय के खाली रहने पर भी ऐसा हो सकता है।

कारण

इस दुर्बलता के कई कारण हो सकते हैं, जैसे–स्नायुओं का क्षतिग्रस्त होना, जन्मजात दोष, मूत्राशय का रोग तथा चिरकालिक तनाव। फिर भी इसका मूल कारण मूत्राशय के मुख पर की मांसपेशियों का दुर्बल होना है। प्रसूति

के समय निम्न श्रोणि की मांसपेशियों में खिंचाव आता है और फिर वे झूल जाती हैं या वे शल्य-क्रिया के क्रम में भी क्षतिग्रस्त हो सकती हैं। यदि सचेत होकर इन्हें सुधारा नहीं गया तो ये मांसपेशियाँ कभी अपनी शक्ति पुन: प्राप्त नहीं कर सकती हैं। मूत्राशय के बार-बार संक्रमित होने पर भी ऐसा हो सकता है। धीरे-धीरे इस क्षेत्र की संवेदनशीलता तथा सजगता कुन्द हो जाती है, और स्नायु नियन्त्रण के प्रति मांसपेशियों की प्रतिक्रिया धीमी हो जाती है।

योग उपचार

चिकित्सा क्षेत्र में इस समस्या का शल्य क्रिया के अतिरिक्त अन्य कोई उपाय नहीं है, जबकि योग के उपयुक्त अभ्यासों के द्वारा सरलतापूर्वक इसका उपचार किया जा सकता है। मूलबन्ध, वज्रोली मुद्रा, नौकासन तथा उड्डियान बन्ध इसके लिये अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। मूलबन्ध एवं वज्रोली मुद्रा का सरल रूप में (त्वरित संकुचन) तथा श्वास के साथ अभ्यास होना चाहिए। प्रतिदिन दो बार इनके अभ्यास से कुछ हफ्तों में ही स्पष्ट परिणाम परिलक्षित होने लगेंगे। *(अभ्यास कार्यक्रम के लिए अध्याय के अन्त में देखें)*

सिस्टाइटिस

वस्तुत: मूत्राशय की सूजन सिस्टाइटिस एवं मूत्रमार्ग की सूजन यूरेथ्राइटिस कहलाती है। सिस्टाइटिस शब्द का प्रयोग लक्षणों के उस समूह के लिए किया जाता है जो मूत्राशय के सूजने तथा संक्रमित होने से उत्पन्न होते हैं।

संकेत एवं लक्षण

इसका मुख्य लक्षण यह है कि आप थोड़ी-थोड़ी देर बाद मूत्र त्याग करने की आवश्यकता अनुभव करेंगे। किन्तु ऐसे में मूत्र की धार नहीं होती, बल्कि कुछ बूँदें ही निकलेंगी। जब मूत्र प्रवाहित होता है तो भयंकर जलन होती है। आपको निम्न उदर में जघनास्थि (पेल्विक हड्डी) के ठीक ऊपर मन्द-मन्द पीड़ा भी हो सकती है या मूत्रीय द्वार के चारों ओर घाव जैसा दर्द हो सकता है। कभी-कभी मूत्र दुर्गन्धयुक्त भी हो सकता है तथा इसमें रक्त या पीव भी आ सकती है।

कारण

ये लक्षण तभी सामने आते हैं जब मूत्राशय में सूजन होती है, जो प्राय: संक्रमण की प्रतिक्रिया के रूप में होता है। सामान्यत: यह तभी होता है जब आँतों में उपस्थित जीवाणु बाहर निकलने पर धुलते समय ऊपर की तरफ चले जाते हैं और मूत्रमार्ग से मूत्राशय में चले जाते हैं। योनि-संक्रमण भी इसी प्रकार मूत्र प्रणाली में स्थानान्तरित हो सकते हैं। यद्यपि गुर्दे के संक्रमण का मूत्राशय में चला जाना भी सम्भव है, जैसा कि क्षय रोग में होता है, फिर भी सामान्यत: ऐसा नहीं होता है।

पूर्व प्रवृत्त कारक

तन्तुजाल एवं भ्रंश-गर्भाशय भी मूत्र मार्ग को बाहर से दबा सकते हैं जिससे मूत्र अवरुद्ध होकर जमा हो सकता है, गर्भावस्था में कभी-कभी ऐसा हो जाता है। आसपास के क्षेत्र में हुई शल्य क्रिया या प्रसूति के समय क्षतिग्रस्त हुए मूत्र मार्ग में संक्रमण की सम्भावना बढ़ जाती है। अत्यधिक एवं असावधानीपूर्वक किये गये संभोग, योनि के लिए गन्धनाशक का प्रयोग तथा कुछ गर्भनिरोधक अपलेपों (क्रीम) से भी ऊतकों (टिशु) में जलन पैदा हो जाती है। कुछ स्त्रियों में खाने वाली गर्भनिरोधक गोलियाँ संक्रमण को प्रवृत्त करती हैं, मधुमेह से भी ऐसा होता है। कुछ भोज्य पदार्थ ऐसे हैं जो मूत्र प्रणाली के लिए एलर्जी का कारण बनते हैं।

चिकित्सा

यदि आपमें सिस्टाइटिस के लक्षण हों तो एक चिकित्सक के पास जाना आवश्यक है, क्योंकि चिरकालिक संक्रमण गुर्दों को क्षति पहुँचा सकता है तथा अन्य गम्भीर समस्यायें उत्पन्न कर सकता है।

इसकी चिकित्सा के लिए प्राय: सल्फा तथा ऐन्टीबायोटिक दवाओं का प्रयोग किया जाता है। भ्रंश जैसी समस्या होने पर शल्य चिकित्सा का सुझाव भी दिया जाता है। प्राय: एक-दो दिनों में संक्रमण के लक्षण विलुप्त हो जाते हैं, किन्तु पूर्ण चिकित्सा में दो हफ्ते का या उससे भी अधिक समय लग सकता है। चिकित्सा के क्रम को पूरा करना आवश्यक है। दुर्भाग्यवश, जो दवाएँ मूत्र-संक्रमण को दूर करती हैं, वे शरीर की दूसरी प्रणालियों पर अपना अपरिहार्य दुष्प्रभाव भी डालती हैं। इसके साथ आँतों में प्राय: हमेशा गड़बड़ी होती है

और कभी-कभी मिचली भी आती है। योनिसूजन तथा योनि के छाले भी इसके सामान्य परिणाम हैं। योनि संक्रमण के मूत्राशय में चले जाने पर एक संक्रमण चक्र बन जाता है। यदि मूत्राशय संक्रमण को दूर भी कर दिया गया तो इसके पुन: प्रकोप को रोकने का उपाय नहीं है।

स्त्रियों में अधिक सम्भावना

स्त्रियों में मूत्राशय शोथ सामान्य रूप से पाया जाता है और यह अनुमान लगाया गया है कि पचास प्रतिशत स्त्रियाँ अपने जीवन में कम-से-कम एक बार अवश्य इससे पीड़ित होती हैं, क्योंकि स्त्रियों का मूत्र-मार्ग अत्यन्त छोटा (कुछ सेन्टीमीटर) होता है, जिससे जीवाणु सरलता से ऊपर पहुँच जाते हैं। स्त्रियों में मलद्वार, योनि तथा मूत्र मार्ग के पास-पास होने के कारण जीवाणुओं का उनके बीच अन्तर्गमन आसान होता है। जो जीवाणु आँतों के लिए अनिवार्य होते हैं, वही मूत्र प्रणाली के लिए हानिकारक होते हैं। ये जीवाणु प्राय: मलद्वार और जननेन्द्रियों के बीच त्वचा के ऊपर अवस्थित रहते हैं तथा व्यक्तिगत स्तर पर या साथी के द्वारा स्वच्छता के प्रति असावधान रहने पर ये भग तथा मूत्र द्वार तक चले जाते हैं। इसलिए यह परामर्श दिया जाता है कि संभोग के बाद दोनों सहभागी मूत्र त्याग करें ताकि मूत्रमार्ग स्वच्छ हो जाये।

मूत्राशय शोथ का उन्मूलन प्राय: कठिन होता है, क्योंकि अन्य प्रणालियों से अन्तर्संक्रमण की सम्भावना रहती है तथा चिकित्सा पूरी होने के बाद भी पुन: संक्रमण का भय रहता है। रजोनिवृत्ति के बाद मूत्र मार्ग में परिवर्तन आने के कारण भी यह चक्र जारी रह सकता है।

चिरकालिक मूत्राशय शोथ के कारण बाद में गुर्दों का संक्रमित हो जाना असामान्य नहीं है, क्योंकि जीवाणु मूत्राशय से ऊपर भी चले जाते हैं। इस स्थिति में न केवल बारम्बार मूत्र त्याग करने की आवश्यकता होगी, बल्कि पीठ में तीव्र पीड़ा होगी और ज्वर भी होगा। अधिकतर स्त्रियों में चिरकालिक मूत्राशय शोथ का भावनाओं पर अत्यन्त दुष्प्रभाव होता है। मूत्राशय शोथ की प्रबलता से प्राय: अत्यन्त शारीरिक तथा भावनात्मक बेचैनी होती है। बार-बार इससे आक्रान्त होने पर संत्रास या भयंकर विषाद भी उत्पन्न हो सकता है, क्योंकि यह वैवाहिक सम्बन्धों को प्रभावित करने लगता है, गृहस्थ जीवन (और नौकरी) भी छिन्न-भिन्न हो जाता है।

प्रमुख कारण

सामान्य रूप से मूत्र न केवल एक जीवाणुहीन घोल होता है, बल्कि यह एक प्रभावकारी रोगाणुरोधक (एन्टिसेप्टिक) भी होता है। इसलिए मूत्र प्रणाली में बाहर से प्रवेश करने वाले अधिकांश जीवाणु मूत्र में ही नष्ट हो जाते हैं। किन्तु जब जीवनी-शक्ति कम रहती है तो शरीर के अन्दर के अनेक प्रकार के सूक्ष्म सन्तुलन अव्यवस्थित हो जाते हैं, जिसका पता मूत्र की संरचना की जाँच से चलता है। यही कारण है कि रोग के निदान में मूत्र विश्लेषण इतना सहायक होता है और इसी कारण शरीर की प्रतिरोध शक्ति क्षीण हो जाने पर मूत्रीय संक्रमण का भय बढ़ जाता है।

व्यापक दुर्बलता, अर्थात् हमेशा थकान और दुर्बलता का अनुभव होना ही मूत्रीय संक्रमण का मूल कारण है। कुण्ठाग्रस्त करने वाले संक्रमण-चक्रों से मुक्त होने के लिए शारीरिक एवं भावनात्मक शक्ति को पुन: प्राप्त करना आवश्यक है।

योग उपचार

शरीर के अव्यवस्थित हॉर्मोनों को व्यवस्थित करने तथा प्रचुर शारीरिक ऊर्जा एवं आशावादिता को बनाये रखने के लिए योग के अभ्यास सर्वोत्तम हैं। सावधानीपूर्वक निश्चित किये गये आहार तथा आसन-प्राणायाम एवं ध्यान के एक सन्तुलित कार्यक्रम के आधार पर योग के द्वारा मूत्रीय संक्रमण से बचाव किया जाता है।

आहार और निवारण

यदि आप मूत्राशय शोथ से पीड़ित हैं तो प्रचुर मात्रा में अनाज एवं सब्जियों से युक्त आहार लें। शाकाहारी भोजन श्रेयस्कर होगा, क्योंकि यह मांसयुक्त आहार से होने वाली अम्लता से बचाता है, शरीर को विशुद्ध करता है तथा ऊर्जा संरक्षित रखता है।

- प्रचुर जल पीयें ताकि आप दिन में कई बार मूत्र त्याग कर सकें। (जिन स्त्रियों में कम मूत्र बनता है, उनमें संक्रमण की सम्भावना अधिक होती है।)
- चाय, कॉफी, शराब, अधिक मिर्च तथा बहुत मसालेदार भोजन से परहेज करें। इनसे मूत्राशय में जलन हो सकती है और कुछ लोगों में इनके कारण मूत्र मार्ग में एलर्जिक प्रतिक्रिया भी हो सकती है।

- यदि पर्याप्त तरल पदार्थ ग्रहण करने के बाद भी कम मूत्र बनता है तो दिन में दो बार एक-एक ग्लास नींबू का रस मिश्रित बार्ली का पानी या हरे नारियल का पानी पीयें।
- यह ध्यान रखें कि आपके भोजन में विटामिन 'सी' प्रचुर मात्रा में हो, यह संक्रमण से बचाता है। यह विटामिन सभी हरी सब्जियों तथा टमाटर में पाया जाता है– विशेषकर उन्हें पकाने से पूर्व (अत्यधिक उबालने से विटामिन 'सी' नष्ट हो जाता है।) नींबू, नारंगी, मौसम्बी, आँवला, अंगूर, अनानास, अमरूद आदि फलों में प्रचुर विटामिन 'सी' रहता है।

दैनिक साधना

आपके आत्म-संवर्धन के लिए प्रतिदिन एक निश्चित समय होना चाहिए, जो आपकी ऊर्जा की पुन: पूर्ति करे और आपको ऊर्जस्विता प्रदान करे। बहुत अधिक अभ्यास करने की आवश्यकता नहीं, किन्तु आपको नियमित रूप से अभ्यास करना चाहिए।

दो-तीन महीनों तक सप्ताह में एक बार लघु शंखप्रक्षालन करना चाहिए, ताकि गुर्दों पर पड़ रहा भार दूर हो सके और सम्पूर्ण मूत्र प्रणाली धुल जाये।

आसन– पीछे मुड़ कर किये जाने वाले आसन गुर्दों को उद्दीपित करते हैं और आगे झुक कर किये जाने वाले आसनों के एकान्तरण के साथ ये मूत्राशय की मालिश भी करते हैं। ऐसा करने पर संचित हुआ शुद्ध मूत्र भी निकल जाता है। इस संदर्भ में सूर्य नमस्कार सर्वोत्तम है, क्योंकि इसमें दोनों प्रकार के महत्त्वपूर्ण आसन सम्मिलित रहते हैं और तनावपूर्ण स्नायु तन्त्र को पुन: सन्तुलन प्रदान करते हैं। सुप्त वज्रासन, उष्ट्रासन, मार्जारी आसन, भुजंगासन, धनुरासन इसके लिए अन्य उपयोगी आसन हैं।

मत्स्यासन, उष्ट्रासन और धनुरासन का भी प्रभाव थाइमस ग्रन्थि पर होता है, जो छाती के बीच में स्थित होती है। शरीर में संक्रमण के विरुद्ध इस ग्रन्थि की प्रतिरोधात्मक भूमिका होती है।

अधिकतर स्त्रियों का अनुभव है कि आसनों के द्वारा मूत्र त्याग की आवश्यकता उद्दीपित होती है और आसनों के अभ्यास के बाद वे अपना मूत्राशय खाली करने की आवश्यकता का अनुभव करती हैं, भले ही उन्होंने पहले ऐसा कर लिया हो। सर्वांगासन से यह प्रभाव और बढ़ जाता है।

प्राणायाम केवल श्वास नियन्त्रण का तरीका नहीं है। मुख्यत: यह सूक्ष्म ऊर्जा के स्त्रोतों के माध्यम से जीवनी शक्ति के पुनर्संचार की प्रक्रिया है। यहाँ शीतकारी एवं नाड़ीशोधन महत्त्वपूर्ण हैं।

ध्यान– जब आप थकी हुई होती हैं तो आपके शरीर और मन को वास्तविक आराम की आवश्यकता होती है– किताबों से, फिल्मों से, या बाहर जाकर नहीं, बल्कि विशुद्ध शान्ति के द्वारा। ध्यान हर प्रकार के अवरोध को दूर करता है तथा हमें शरीर को स्वाभाविक रूप से स्वस्थ रखने वाली ऊर्जा के सम्पर्क में लाता है। यह हमें उस विश्रान्तिपूर्ण स्थल पर ले जाता है जहाँ हम विशुद्ध रूप से आराम पाते हैं।

अभ्यास-कार्यक्रम

असंयति

आसन– नौकासन (5 बार, अंतिम स्थिति में जितनी देर तक श्वास रोक सकें)।

मुद्रा/बन्ध– उड्डियान बन्ध (7 बार, खड़े होकर या बैठकर), मूलबन्ध (त्वरित संकुचन 100 बार/आराम/100 बार), फिर श्वास के साथ (10 बार)।

सम्पूर्ण कार्यक्रम को शाम में दोहरायें।

सिस्टाइटिस

आसन– सूर्य नमस्कार (6 चक्र), शवासन, उष्ट्रासन या भुजंगासन, (15 श्वास), मार्जारी आसन (15 श्वास), मत्स्यासन (30 श्वास), पश्चिमोत्तानासन (30 श्वास), सर्वांगासन (3–5 मिनट), शवासन।

प्राणायाम– शीतकारी प्राणायाम (9 चक्र), नाड़ीशोधन प्राणायाम (10 चक्र)

षट्कर्म– लघु शंखप्रक्षालन (सप्ताह में एक बार)

अन्य– अजपाजप ध्यान।

अपस्फीत शिरा (वेरीकोज व्हेन्स)

यदि पैरों को केवल ऊपर रख लेने से ही आपके थके और दु:खते हुए पैरों को आराम मिल जाता है तो आपके पैरों में अपस्फीत शिराएँ उभर रही हैं। अपस्फीत शिराओं का पहला चिह्न है– केवल देर तक टहलने से या भारी काम करने से नहीं, बल्कि दिन-प्रतिदिन आपकी यूँ ही दु:खती हुई टाँगें। अक्सर पैर फूल जाते हैं और उनमें थोड़ी लाली आ जाती है, नहीं तो रक्त नलिकायें त्वचा स्तर या त्वचा स्तर से ठीक नीचे भी स्पष्ट दिखती हैं। ज्यों-ज्यों शिराओं में विकार उत्पन्न होने लगता है, वे फैल कर ढेले के समान हो जाती हैं जिससे पैरों के चारों ओर, टखनों में, घुटनों के पीछे तथा उरु मूल में बहुत दर्द होने लगता है।

कारण

अपस्फीत शिराओं के कई कारण हो सकते हैं–

- पैरों की शिराओं के कपाट (वॉल्व) कमजोर हो जाते हैं जिससे उनमें प्रवाहित होने वाला रक्त ऊपर हृदय में जाने के बदले पुन: उन्हीं में वापस चला आता है। कुछ समय बाद कपाट के चारों ओर के क्षेत्र रक्त से अतिपूरित हो जाते हैं, भद्दे दिखते हैं, बाहर की ओर निकल कर शिराओं में ढेले की तरह पीड़ाजनक हो जाते हैं।
- उदर के फूलने से भी शिराओं पर अत्यधिक दबाव पड़ता है जो अभेद्य, अपारणीय अवरोध उत्पन्न कर देता है, इससे नीचे की शिरायें फैल जाती हैं और कपाटों में दुर्बलता आ जाती है। यह सामान्यत: बहुत मोटे होने पर या चिरकालिक कब्जियत से या गर्भावस्था में हो जाता है।

- पैरों में गहराई में दबी शिराओं में रक्त के एक-दो थक्के (घनास्त्र/थ्रॉम्बस) बन सकते हैं, इससे रक्त नलिकाएँ फैल जाती हैं और कपाट क्षतिग्रस्त हो जाते हैं।

  यह सामान्य कारण नहीं है। पैर की पिण्डलियों को तानने पर बहुत दर्द होना, इसकी पहचान है।

इन सभी स्थितियों में पीड़ित व्यक्ति दिन के अन्त में पैरों में थकान की शिकायत करता है, शायद विशेष बिन्दुओं पर तीव्र पीड़ा होती है। टखनों में सूजन हो सकती है और त्वचा में सामान्य रूप से खुजली हो सकती है। अरक्षित शिराओं से रक्त स्राव तथा फोड़ा होने की सम्भावना भी हो जाती है।

पूर्वप्रवृत्त कारक

अपस्तीफ शिराएँ सामान्यत: अधेड़ या वृद्ध लोगों में और गर्भावस्था में (अस्थायी रूप से) पायी जाती हैं। इस समस्या की प्रवृत्ति वंशानुगत भी हो सकती है। अपस्तीफ शिराएँ ऐसे स्त्री-पुरुषों में होती हैं जिन्हें अपने पेशे में असामान्य रूप से अधिक देर तक खड़े रहना पड़ता है, जैसे– मशीन चालक, विक्रेता, संसाधन संचालक, नाई, यातायात नियंत्रक सिपाही, खजांची और गणक।

चिकित्सा

अत्यधिक गम्भीर स्थितियों में अपस्तीफ शिराओं का इलाज सूई देकर और शल्यक्रिया द्वारा उसे निकालकर किया जाता है। प्रभावित शिराओं में ऐसी सुई दी जाती है जो रक्त-नलिकाओं की दीवालों को इतना मोटा कर देती है कि वे पूरी तरह बन्द हो जाती है और रक्त प्रवाह को पूर्णत: अवरुद्ध कर देती हैं। त्वचा के पास की रक्त नलिकाओं को बाँधकर अपस्तीफ शिराओं को काटकर निकाल दिया जाता है। और तब रक्त का प्रवाह पूर्णत: गहरी आन्तरिक प्रणाली की रक्त नलिकाओं के माध्यम से होने लगता है।

यद्यपि इन उपायों से दर्द और भद्दापन तो दूर होता है, किन्तु ये अपस्तीफ शिराओं की मूल प्रवृत्ति को दूर नहीं कर सकते हैं। अत: एक ऐसे निदानात्मक कार्यक्रम को अपनाना चाहिए जो रक्त संचार में सुधार लाकर अप्रभावित शिराओं को अपस्फीति की सम्भावना से मुक्त रखे।

सामान्य परामर्श

- यदि सम्भव हो तो अनावश्यक रूप से खड़े न रहें और लगातार स्थिर होकर खड़े न रहें। यदि स्थिर खड़ा रहना आवश्यक हो तो सजगता के साथ पैर की मांसपेशियों को बारम्बार संकुचित और शिथिल करें। अन्यथा कुछ दूर टहलें या वहीं पर टहलें।
- इलास्टिक युक्त मोजे या क्रेप बैन्डेज दिन के समय के लिए उपयुक्त हैं। रात में उन्हें उतार दें।
- दर्द को दूर करने और रक्त संचालन को सुधारने में मालिश प्रभावकारी होती है। यदि इसे क्रमबद्ध और नियमित रूप से किया जाये तो यह समस्या को पूरी तरह दूर कर सकता है।
- पैरों को सिर के ऊपर ले जाकर आराम करें। पीठ के बल लेटकर पैरों को दीवाल से टिका कर ऐसा किया जा सकता है।

योग उपचार

सर्वप्रथम कुर्सी पर पैरों को नीचे लटका कर बैठना बन्द करें। पायदान का उपयोग करने के बदले कुर्सी या दीवान पर भी सुखासन या स्वस्तिकासन में बैठें।

गर्भावस्था में मत्स्यक्रीड़ासन में आराम करें। इस आसन में आप एक करवट होकर लेटती हैं, नीचे का पैर सीधा रहता है और नीचे की बाँह को मोड़कर उस पर सिर रखते हैं। ऊपर का पैर घुटने से मोड़कर पेट के पास रखे तकिये पर टिका दिया जाता है। इसके द्वारा बच्चे का भार मुख्य उदरीय शिराओं से हट जाता है जो पैरों में होने वाले रक्त प्रवाह को अवरोधों से मुक्त करता है।

अपर्याप्त पाचन, कब्जियत या मोटापे के कारण पेट के चिरकालिक फैलाव से सम्बन्धित अपस्तीफ शिराओं की स्थिति में लघु शंखप्रक्षालन तथा कुंजल क्रियाओं के साथ कुछ उपयुक्त आसन किये जाने चाहिए।

तलवों और टाँगों का रक्त पिण्डलियों एवं जाँघों की मांसपेशियों के द्वारा पम्प की प्रक्रिया से हृदय में वापस भेजा जाता है। जब चलते, दौड़ते या व्यायाम करते समय ये मांसपेशियाँ संकुचित होती हैं, तो संकुचन के दबाव से रक्त का दोहन हृदय की ओर होता है।

अपस्फीत शिराओं को नियमित कार्यों तथा क्रमबद्ध आसनों के अभ्यास के द्वारा दूर किया जा सकता है। आसनों का अतिरिक्त लाभ यह होता है कि

ये न केवल मांसपेशियों को संकुचित कर रक्त को पंप करते हैं, बल्कि इन आसनों को कुछ देर तक कायम रखने पर ये मांसपेशियों को खींचते भी हैं। मांसपेशियों का खिंचाव उन्हें लचीला बनाता है और जमे हुए अशुद्ध रक्त को निचोड़ कर निकालता है।

पवनमुक्तासन– पवनमुक्तासन की पहली और दूसरी, दोनों शृंखलाएँ वृद्ध व्यक्तियों या गर्भावस्था में अपस्फीत शिराओं के लिए उपयोगी हैं। टखनों एवं पिण्डलियों का क्रमबद्ध खिंचाव रुद्ध रक्त को निचोड़कर बाहर निकालेगा और शरीर के मांसपेशीय पंप को उसे हृदय की ओर ठेलने के लिए प्रेरित करेगा। इन अभ्यासों का लाभ यह है कि इन्हें बैठ कर किया जाता है, इसमें अधिक ऊर्जस्विता या लचीलेपन की आवश्यकता नहीं होती है। पहली शृंखला के अभ्यासों में अँगूठों को मोड़ने, टखनों को खींचने, टखनों को घुमाने तथा घुटनों को घुमाने पर बल दिया जाना चाहिए। दूसरी शृंखला में पैर उठाने तथा साइकिल चलाने वाले अभ्यास अत्यन्त लाभप्रद हैं।

खिंचाव वाले आसन– वे सभी आसन जो पैर की मांसपेशियों को खींचते तथा जाँघ और पिण्डलियों की मांसपेशियों को सबल बनाते हैं, उपयोगी हैं। इनके अन्तर्गत ताड़ासन, पादहस्तासन, जानुशीर्षासन, पश्चिमोत्तानासन, सुमेरु आसन तथा सूर्य नमस्कार आते हैं।

सिर के बल किये जाने वाले आसन– इन आसनों का अभ्यास बहुत महत्त्वपूर्ण होता है– शीर्षासन, सर्वांगासन, विपरीतकरणी आसन तथा हलासन।

पैरों पर लगने वाला गुरुत्वाकर्षण बल इन आसनों के द्वारा व्युत्क्रमित हो जाता है और रुद्ध रक्त को हृदय की ओर प्रवाहित होने का अवसर मिल जाता है। ऐसा होने पर क्षतिग्रस्त शिरायें अपने सामान्य आकार में आ जाती हैं, जिससे कपाटों पर पड़ रहे दबाव में कुछ कमी आ जाती है।

इन आसनों में शीर्षासन सर्वाधिक लाभप्रद है, किन्तु सबसे कठिन भी है। सर्वांगासन तथा विपरीतकरणी आसन अधिकतर लोगों की पहुँच के अन्दर होते हैं। इन आसनों को पाँच से दस मिनट तक करना चाहिए और उसके बाद उतने ही समय के लिए हलासन भी करना चाहिए। अन्त में शवासन में आराम करना चाहिए।

पद्मासन में बहुत देर नहीं बैठना चाहिए, क्योंकि उसमें उरुमूल पर रक्त प्रवाह अवरुद्ध हो जाता है। ध्यान के लिए सिद्धासन या सिद्धयोनि आसन, सुखासन या स्वस्तिकासन में बैठें। वज्रासन में कभी न बैठें।

अधिकतम लाभ के लिए बताए गये आसनों का दिन में दो बार अभ्यास करना चाहिए। यदि आप एक ही बार कर सकती हों तो शाम होने के ठीक पहले करें।

अभ्यास-कार्यक्रम

प्रातः – ताड़ासन (10 बार), पादहस्तासन (15 श्वास), सूर्य नमस्कार (3 – 6 चक्र), शवासन, शीर्षासन या सर्वांगासन (5 मिनट), हलासन, शवासन।

संध्या – पवनमुक्तासन भाग 1 (प्रत्येक को दस बार), पैर उठाना (5 बार), साइकिल चलाना (20 बार), शवासन, जानुशीर्षासन या पश्चिमोत्तानासन (15 श्वास), शवासन (5 – 10 मिनट), शीर्षासन या सर्वांगासन (5 – 10 मिनट), हलासन (5 – 10 मिनट), शवासन।

वृद्ध व्यक्तियों या गर्भवती स्त्रियों के लिए

प्रातः – पवनमुक्तासन भाग 1 (प्रत्येक को बीस बार), पैर उठाना (5 बार), साइकिल चलाना (10 बार), पैरों को दीवाल से टिकाकर पन्द्रह मिनट आराम करना।

संध्या के समय इन्हें दोहरायें।

नारियों के लिए
योग साधना

साधना के लिए मार्गदर्शन

योग की पुस्तकें सन्दर्भ निर्देश तथा प्रेरणा के लिए बहुत अच्छी हैं। किन्तु यह भी सही है कि अधिकतम स्पष्टता एवं व्यक्तिगत लाभ के लिए सभी यौगिक अभ्यासों को किसी सुयोग्य शिक्षक से सीखना चाहिए। जब आपने प्रत्येक आसन, प्राणायाम या ध्यान की क्रियाओं को एक बार सही ढंग से सीख लिया है तो उन्हें लिखित निर्देशों के रूप में रखने की आवश्यकता नहीं।

यद्यपि हम यहाँ साधना के लिए कुछ क्रमबद्ध चर्या का सुझाव दे रहे हैं, फिर भी यही एक मात्र सम्भव क्रम या चर्या नहीं है। किन्तु इन क्रमों को स्त्रियों के लिए विशेष रूप से उपयुक्त पाया गया है। एक कार्यक्रम पूर्णत: नये प्रारम्भकों के लिए है, उसके बाद का कार्यक्रम उन लोगों के लिए है जिनके शरीर में लचीलापन आ चुका है। प्रत्येक कार्यक्रम इस प्रकार बनाया गया है कि वह स्नायु-तन्त्र तथा हॉर्मोनों को सर्वाधिक प्रभावित करे और प्रत्येक चक्र पर उसका क्रमिक रूप से प्रभाव पड़े। इस प्रकार प्रत्येक कार्यक्रम पूर्ण साधना के लिए है। अत: अनिश्चित काल तक इसको जारी रखा जा सकता है। चूँकि आप प्रारम्भिक कार्यक्रम में दक्षता प्राप्त कर लेती हैं, इसलिए उसके बाद आप अधिक जटिल एवं गहन अभ्यास करना चाहती हैं। शास्त्रीय साधना के अन्तर्गत वे प्रचलित आसन-प्राणायाम आते हैं जिन्हें आध्यात्मिक जागृति के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण एवं प्रभावशाली माना जाता है। यहाँ हम आपकी सुविधा के लिए अनुमोदित अभ्यासों के नाम के साथ उनके चित्र भी दे रहे हैं जो घर पर आपकी साधना में उचित क्रम बनाये रखने में आपका मार्गदर्शन करेंगे।

साधना के समय आपकी सजगता बढ़ाने के लिए इनके साथ प्रत्येक अभ्यास में एकाग्रता बिन्दु का भी उल्लेख किया गया है। प्रत्येक प्रक्रिया के लाभों की सूची भी दी गई है। अन्ततः आपको अपने अनुभवों तथा अभ्यासों में अपनी संलग्नता के आधार पर योग साधना का आपके आत्म-अन्वेषण का साधन होने का पता लगेगा।

शिक्षक की खोज

सम्पूर्ण विश्व में बिहार योग विद्यालय के आश्रम तथा शिक्षण केन्द्र हैं। यदि आप अपने घर के निकट किसी योग शिक्षक से सम्पर्क करना चाहते हैं तो कृपया इस पते पर लिखें–

बिहार योग विद्यालय
गंगादर्शन
मुंगेर–811201
बिहार, भारत

प्रारम्भिक अभ्यासियों के लिए

जल नेति	प्रतिदिन
शवासन	शिथिलीकरण के लिए
तितली आसन	100 बार
स्कन्ध चक्र	10/10
ग्रीवा संचालन	10/10 बार
सुप्त पवनमुक्तासन	3/3/3
झूलना-लुढ़कना	30 बार
चक्की चालन आसन	10/10
वज्रासन	15–21 श्वास
सुप्त वज्रासन	15 श्वास
उष्ट्रासन	7–15 श्वास
मार्जारि आसन	15 बार
शशांकासन	15–30 श्वास
प्रणामासन	15–30 श्वास
भ्रामरी प्राणायाम	11 चक्र
नाड़ी शोधन प्राणायाम	10 चक्र/आराम/10 चक्र
मूल बन्ध	10 चक्र/आराम/10 चक्र
योगनिद्रा *	

* इस अभ्यास के लिए योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट द्वारा प्रकाशित, स्वामी सत्यानन्द सरस्वती कृत *योगनिद्रा* पुस्तक पढ़ें।

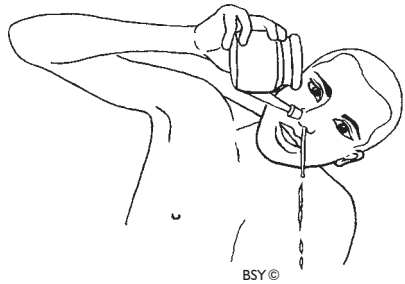

जल नेति (जल से नासिका की सफाई)

यह अभ्यास नासिका प्रदेश से श्लेष्मा के अवरोधों को दूर करता है। साथ-ही सर्दी-जुकाम, कान, नाक एवं गले के संक्रमणों को दूर करता है। आँखों के तनाव को दूर कर नेत्र-ज्योति बढ़ाता है। सायनस संकुलन एवं सायनस के कारण होने वाले सिरदर्द को दूर करने में सहायक होता है। माइग्रेन के कारण होने वाले सिरदर्द को कम करने में उपयोगी है। सम्पूर्ण स्वचालित (अचेतन) तन्त्रिका तन्त्र को, विशेषकर आँखों, श्वसन तन्त्र एवं प्रजनन तन्त्र से सम्बन्धित तन्त्रिकाओं को समन्वित करता है। मिर्गी एवं विषाद की अवस्था में सहायक होता है। आज्ञा चक्र, योगियों के तृतीय नेत्र को उद्दीप्त करता है।

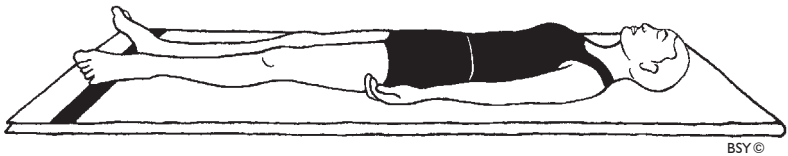

शवासन

सम्पूर्ण शरीर एवं तन्त्रिका तन्त्र में विश्रान्ति लाता है। आसनों के पूर्व एवं पश्चात्, योगनिद्रा के लिए और जब भी थकान को शीघ्र दूर करना चाहें, यह अभ्यास करें। शरीर के प्रत्येक अंग पर, फिर सम्पूर्ण शरीर में एक साथ एकाग्रता का अभ्यास करें।

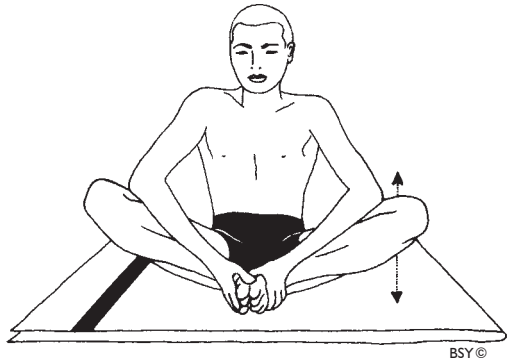

पूर्ण तितली आसन

नितम्बों, घुटनों एवं टखनों के जोड़ों को ढीला करता है। जाँघों की मांसपेशियों में खिंचाव लाता एवं श्रोणि प्रदेश की मांसपेशियों में सामंजस्य लाता है (महिलाओं के लिए विशेष उपयोगी है)। पैरों एवं नितम्बों में गठिया और वात के प्रभावों को दूर करता तथा ध्यान के आसनों में बैठने के लिए तैयार करता है। एकाग्रता–नितम्बों, घुटनों एवं टखनों में हो रही संवेदनाओं पर।

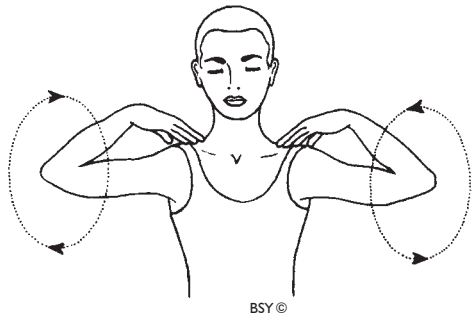

स्कन्ध चक्र

कन्धों के आसन गाड़ी चलाने तथा कार्यालय में कार्य करने के कारण उत्पन्न तनाव को दूर करते हैं और सरवाईकल स्पॉण्डिलाइटिस तथा कन्धों में कड़ेपन को दूर करने में सहायक होते हैं। वे कन्धों एवं छाती को सुगठित बनाये रखते हैं। एकाग्रता–श्वास, मानसिक गिनती और कन्धों के जोड़ों में खिंचाव की संवेदना पर।

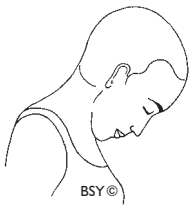

स्थिति 1

स्थिति 2

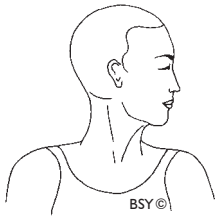

स्थिति 3

स्थिति 4

ग्रीवा संचालन

ये अभ्यास गर्दन के छोर पर स्थित तंत्रिका संधि-स्थल (ग्रीवा-जालक) से निकलने वाली तन्त्रिकाओं को विश्रान्त बनाते हैं। इसका आँखों, सिर एवं श्वसन तन्त्र से जुड़ी तन्त्रिकाओं पर सकारात्मक प्रभाव होता है। हर प्रकार के सिरदर्द तथा स्पॉण्डिलाइटिस को दूर करने में बहुत सहायक होता है। थायराइड ग्रन्थि को सही प्रकार से कार्य करने के लिए सक्रिय बनाता है। विशुद्धि चक्र की जागृति पर भी इसका प्रभाव होता है। प्रत्येक अभ्यास से जिस मांसपेशी समूह में खिंचाव आता है, उस पर एकाग्रता रखनी है।

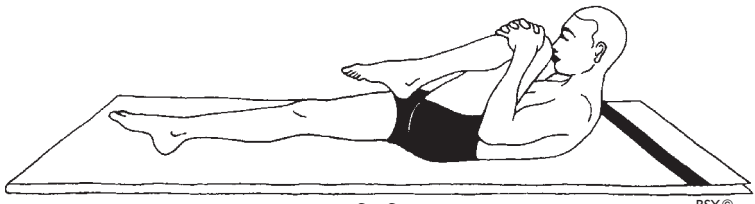

स्थिति 1

सुप्त पवनमुक्तासन

सभी पाचन सम्बन्धी समस्याओं को दूर करता है, विशेषकर गैस बनने, कब्जियत, पेट फूलने आदि को ठीक करता है। कमर के निचले हिस्से तथा

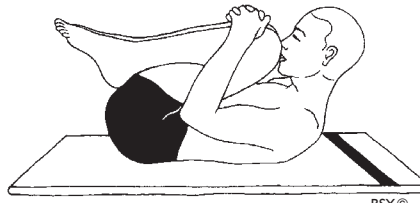

स्थिति 2

नितम्बों की मांसपेशियों में खिंचाव और सामंजस्य लाता है। पेट और नितम्बों पर चढ़े अतिरिक्त भार को कम करने तथा कमर के निचले भाग में होने वाले दर्द को दूर करने में सहायक होता है। आँतों, मूत्राशय, गर्भाशय आदि उदर के सभी अंगों की मालिश करता है। एकाग्रता–उदर में होने वाली संवेदनाओं पर।

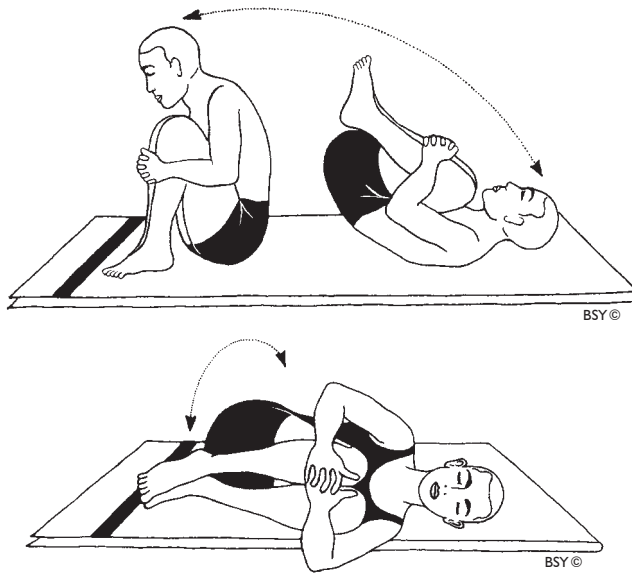

झूलना-लुढ़कना

पाचन सम्बन्धी समस्याओं में सहायक होता है, विशेषकर कब्जियत होने, गैस बनने पर। यकृत को ठीक करता और मधुमेह को दूर करने में सहायक होता है। कमर एवं नितम्बों पर से अतिरिक्त चर्बी को हटाता है। कमर के निचले भाग में होने वाले दर्द तथा तन्त्रिका संकुलन को दूर करने में सहायक होता है। एकाग्रता–उदर में होने वाले खिंचाव या मेरुदण्ड में मरोड़ की संवेदना पर।

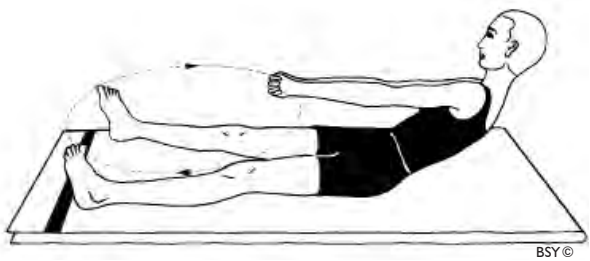

चक्की चालन आसन

श्रोणीय अंगों तथा प्रजनन तन्त्र में सामंजस्य लाता है। कब्जियत, गैस तथा अपचन को ठीक करता है। पेट तथा नितम्बों पर चढ़ी चर्बी को कम करता है, उदर की मांसपेशियों को सशक्त बनाता तथा कमर के निचले भाग के दर्द को कम करता है। संभवत: पूर्ण गर्भकाल तक इसका अभ्यास किया जा सकता है, विशेषकर प्रसव के उपरान्त मांसपेशियों के पुनर्संयोजन के लिए इस अभ्यास का सुझाव दिया जाता है। उड्डियान बन्ध तथा नौलि के अभ्यास की तैयारी के लिए बहुत अच्छा अभ्यास है। यह शक्तिबन्ध श्रृंखला का एक अभ्यास है, जो अवरोधों को दूर कर ऊर्जा के प्रवाह को निर्बाध बनाता है। एकाग्रता–श्वास एवं उदर के संचालन पर।

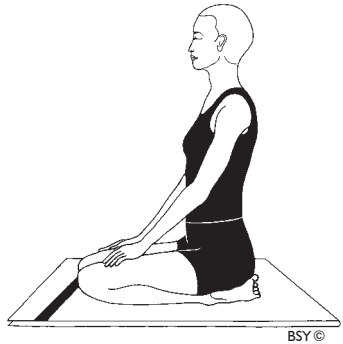

वज्रासन

पीठ को सीधा रखता तथा पीठ के निचले हिस्से में दर्द को दूर करने में सहायक होता है। साइटिका से पीड़ित व्यक्तियों के लिए ध्यान एवं प्राणायाम के अभ्यास के लिए वैकल्पिक आसन है। पाचन क्रिया को उद्दीप्त कर पाचन सम्बन्धी सभी समस्याओं, विशेषकर पेप्टिक अल्सर, उच्च अम्लता, गैस बनना आदि को दूर करता है। पिंगला नाड़ी को उत्तेजित करता है। एकाग्रता–नाभि में या मेरुदण्ड में ऊपर-नीचे श्वास के प्रवाह पर।

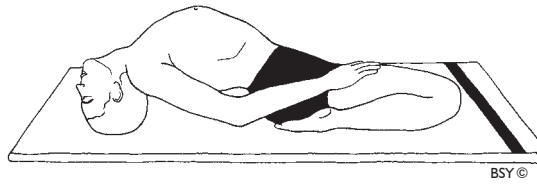

सुप्त वज्रासन

थायराइड ग्रन्थि को प्रभावित करता है, गुर्दों को उद्दीप्त करता है। डिम्बग्रन्थियों तथा स्वाधिष्ठान चक्र पर प्रभाव डालकर हार्मोनों में पुनर्संतुलन लाने में सहायक होता है। मासिकधर्म तथा रजोनिवृत्ति सम्बन्धी सभी समस्याओं में सहायक होता है। मेरुदण्ड की तन्त्रिकाओं को समन्वित करता तथा कमर के निचले भाग में होने वाले दर्द को दूर करने में सहायक होता है। उदर तथा आन्तरिक अंगों की मालिश करता है, चर्बी घटाता तथा पाचन सम्बन्धी समस्याओं को दूर करता है। भ्रंश की अवस्था में इसका अभ्यास नहीं करना चाहिए। एकाग्रता–कमर के निचले भाग में दबाव पर, स्वाधिष्ठान चक्र पर।

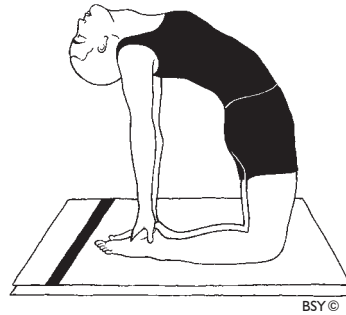

उष्ट्रासन

हार्मोनों में संतुलन लाने में सहायक होता है। मासिक धर्म सम्बन्धी कठिनाइयों को दूर करने में सहायक होता है। दमा तथा श्वसन सम्बन्धी अन्य रोगों के लिए एक महत्त्वपूर्ण अभ्यास है, शरीर में कार्टीजोन की स्वाभाविक आपूर्ति को प्रेरित करता है। तनाव, स्लिप डिस्क या मासिक चक्र के कारण होने वाले कमरदर्द को दूर करता है। एकाग्रता–कमर के निचले भाग में पड़ने वाले दबाव, या वक्ष के केन्द्र पर; विशुद्धि चक्र या आज्ञा चक्र।

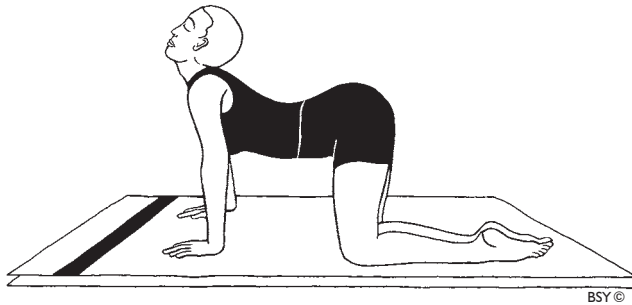

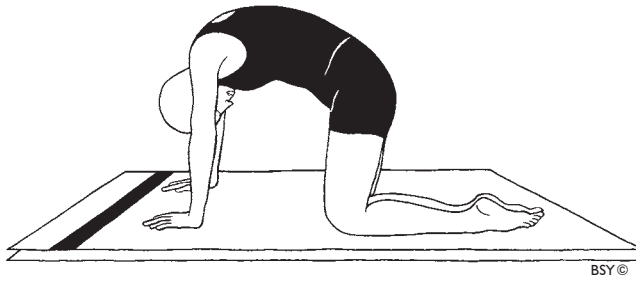

मार्जारि आसन

मेरुदण्ड को तानता और झुकाता है, जिससे मेरुदण्ड की तन्त्रिकाएँ समन्वित होती हैं। पीठ में कहीं भी दर्द हो, इस अभ्यास से दूर हो जाता है। गर्दन तथा कन्धों की मांसपेशियों को विश्रान्त बनाता है, जिससे सिरदर्द तथा स्पॉण्डिलाइटिस को दूर करने में सहायता मिलती है। पेट पर चढ़ी चर्बी को कम करता और पाचन क्रिया को सक्रिय बनाता तथा कब्जियत को दूर करता है। प्रजनन तन्त्र में सामंजस्य और हॉर्मोनों में पुनर्संतुलन लाता है। मासिक चक्र के समय अभ्यास करने से पेट में मरोड़ तथा कमरदर्द ठीक हो जाता है। पूर्ण गर्भकाल तक इसके अभ्यास का परामर्श दिया जाता है। एकाग्रता – नाभि के संकुचन एवं शिथिलन पर, या मेरुदण्ड के खिंचाव पर, मणिपुर चक्र पर।

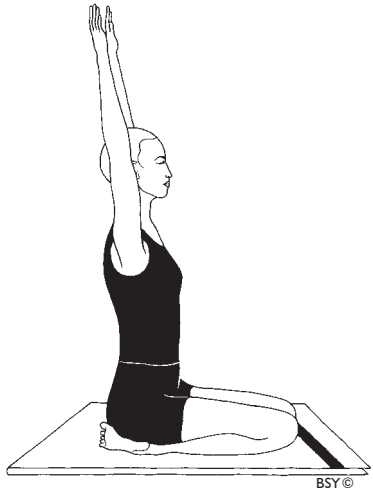

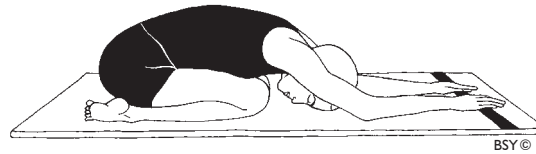

शशांकासन

दमा का दौरा पड़ने पर श्वसन क्रिया में सहायक होता है। श्रोणि प्रदेश की मांसपेशियों को समन्वित करता है, साइटिका नाड़ी को विश्रान्त बनाकर साइटिका के दर्द को कम करता है। रक्त को चेहरे एवं सिर की ओर प्रवाहित कर त्वचा में स्वच्छता लाता है। तनाव, चिन्ता एवं क्रोध से ऊपर उठने में सहायक होता है। एकाग्रता– जाँघों से उदर पर पड़ने वाले दबाव पर, मणिपुर या स्वाधिष्ठान चक्र पर।

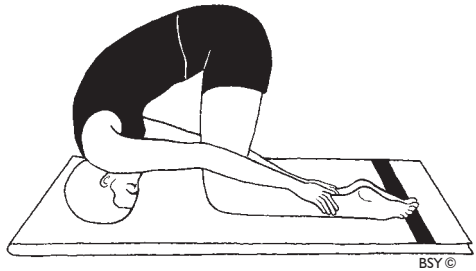

प्रणामासन

सिर की सभी तन्त्रिकाओं तथा ग्रन्थियों पर इसका सबसे महत्त्वपूर्ण प्रभाव होता है, जिसका सम्पूर्ण ग्रन्थि-संस्थान पर अप्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता है। जब थकान या उनींदापन लगे तब यह अभ्यास 'स्फूर्तिकारक' होता है। गर्दन और चेहरे के रंग को साफ करता है, आँखों के तनाव को दूर करता है। निम्न रक्तचाप के लिए उपयोगी है। शीर्षासन के लिए इससे अच्छी तैयारी होती है। एकाग्रता–सिर जहाँ भूमि पर टिका है वहाँ दबाव बिन्दु से आने-जाने वाली श्वास-प्रश्वास पर; सजगता चिदाकाश के प्रति।

भ्रामरी प्राणायाम

प्रश्वास को सुसाध्य बनाता है, जिससे हृदय विश्रान्त होता है और उच्च रक्तचाप को कम करने में सहायता मिलती है। श्वसन प्रदेशों में सापेक्ष दबाव को प्रभावित करता है, जिससे दमा एवं वातस्फीति में आराम मिलता है। चिन्ता एवं क्रोध को कम करता है। नाद योग का एक महत्त्वपूर्ण अभ्यास है। एकाग्रता–गले (विशुद्धि) या मस्तक (आज्ञा चक्र) में श्वास के स्पन्दन पर।

नाड़ी शोधन प्राणायाम

महत्त्वपूर्ण प्राणायाम की आगे की स्थितियों के लिए श्वास को शुद्ध बनाता है। शान्ति स्थापित करता है। एकाग्रता–श्वास के सहज प्रवाह पर। यह सुनिश्चित रखें कि श्वास बहुत धीमी और पूर्णत: नि:शब्द हो। सावधान रहें कि श्वास एकान्तता का प्रतिरूप भंग न हो।

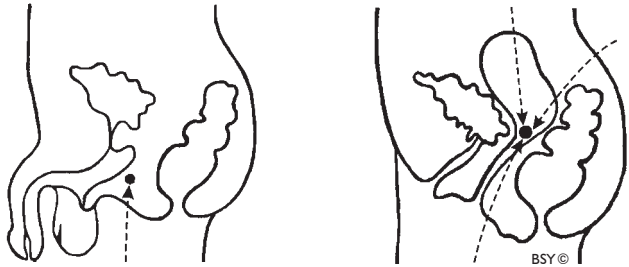

मूलबन्ध

श्रोणि प्रदेश की मांसपेशियों में सामंजस्य लाता है, भ्रंश को रोकता एवं दूर करता है। प्रसवोपरान्त प्रजनन तन्त्र पर नियन्त्रण बढ़ाकर पेशियों को पुनर्संयोजित करता है। श्रोणीय संकुलन, पीठ दर्द तथा मासिक चक्र सम्बन्धी कठिनाइयों को कम करता है। आद्या शक्ति को पुनर्जाग्रत एवं अनुप्रेषित कर विषाद से ऊपर उठने में सहायक होता है। कुण्डलिनी जागरण के लिए मूलाधार चक्र को उद्दीप्त करता है। मैथुन के अभ्यास के लिए आवश्यक है। एकाग्रता–मूलाधार चक्र पर।

मध्यम वर्ग के अभ्यास

ताड़ासन	5 बार
तिर्यक ताड़ासन	10 बार
कटि चक्रासन	20 बार
उड्डियान बन्ध	7 बार (खड़े होकर)
सूर्य नमस्कार	3–12 चक्र
शवासन	शिथिलीकरण के लिए
पूर्व हलासन	3 बार
कन्धरासन	7–15 श्वास रोककर
अर्द्ध शलभासन	दोनों पैरों से 3–3 बार
सरल धनुरासन	7–15 श्वास रोककर
जानुशीर्षासन	7 श्वास रोककर
मेरु वक्रासन	7 श्वास रोककर
विपरीतकरणी आसन	7–15 श्वास रोककर
शीर्षासन स्थिति 1 एवं 2	15–30 श्वास रोककर
भस्त्रिका प्राणायाम स्थिति–1	5 चक्र
नाड़ीशोधन (अनुपात 1:2)	10 चक्र/आराम/10 चक्र
अन्तर्मौन *	

* इस अभ्यास के लिए योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट द्वारा प्रकाशित, स्वामी सत्यानन्द सरस्वती कृत *ध्यान: तन्त्र के आलोक में* पुस्तक पढ़ें।

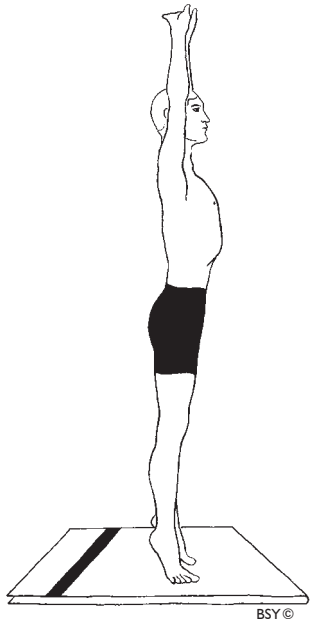

ताड़ासन

टांगों, उदर एवं पीठ की सभी मांसपेशियों को तानता है। वक्ष को फैलाकर गहरी श्वास लेने में सहायक होता है। उदर एवं पाचन तन्त्र को समंजित करता है। रक्त संचार को बढ़ाता तथा शारीरिक एवं मानसिक संतुलन को विकसित करता है। शंख प्रक्षालन के अभ्यास में इसका उपयोग होता है। एकाग्रता– श्वास एवं सिर से पैर तक शरीर के खिंचाव पर।

तिर्यक् ताड़ासन

कमर, नितम्ब तथा बगल की मांसपेशियों को तानता है, जो अन्य गतिविधियों में विरले ही प्रयुक्त होती हैं। इस क्षेत्र में जमा चर्बी को भी कम करता है। पीठ के कड़ेपन तथा दर्द को दूर करता है। फेफड़ों को फैलाकर श्वास को गहरा बनाता है। उदर की मांसपेशियों को विकसित करता है, पाचन तन्त्र को समंजित कर गैस तथा अपचन को दूर करने में सहायक होता है। शंखप्रक्षालन क्रिया में इसका उपयोग होता है। एकाग्रता– खिंचाव की संवेदना पर।

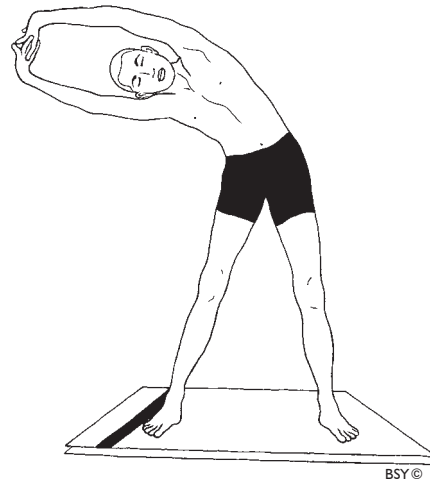

कटि चक्रासन

मेरुदण्ड में कड़ेपन और पीठ दर्द को दूर करता है, मेरुदण्ड की तन्त्रिकाओं में सामंजस्य लाता है। कमर की चर्बी के पुनर्वितरण में सहायता करता है। सही पाचन तथा उत्सर्जन के लिए आँतों को खोलता है। शंख प्रक्षालन में इसका उपयोग होता है। एकाग्रता – मेरुदण्ड के मरोड़ तथा शिथिलन पर।

उड्डियान बन्ध

यह अभ्यास सभी पाचन सम्बन्धी समस्याओं – कब्ज, अम्लता, अपच के लिए रामबाण दवा है। इससे यकृत तथा पेन्क्रियाज उद्दीप्त होते हैं, अत: यह मधुमेह के उपचार के लिए एक उपयोगी अभ्यास है। उदर की मांसपेशियों को सशक्त बनाता तथा सभी श्रोणीय अंगों में सामंजस्य लाता है। यह बन्ध प्राणों को उद्दीप्त कर, उन्हें शरीर के सभी अंगों में वितरित करता है तथा मन को ऊर्जा प्रदान करता है। गर्भकाल में इसका अभ्यास वर्जित है। एकाग्रता – मणिपुर चक्र पर।

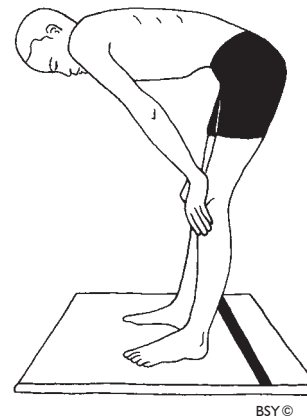

सूर्य नमस्कार

सूर्य नमस्कार शरीर, मन एवं आत्मा के पूर्ण समन्वय के लिए आसन, प्राणायाम एवं मुद्राओं का एक समेकित अभ्यास है। इसके असंख्य लाभ हैं, विशेषकर महिलाओं के लिए। महिलायें सूर्य नमस्कार का अभ्यास किसी भी समय कर सकती हैं, यहाँ तक कि मासिक चक्र तथा गर्भ की प्रारम्भिक अवस्था में भी। केवल जिन महिलाओं को भारी रक्तस्राव होता है, उन्हें मासिक चक्र की अवधि में इसका अभ्यास नहीं करना चाहिए। यह पूर्ण अभ्यास शरीर की सभी मांसपेशियों को तानता एवं सशक्त बनाता है और प्रत्येक जोड़ से कड़ेपन को दूर करता है। यह मेरुदण्ड को अनेक प्रकार से मोड़ता एवं तानता है, जिससे मेरुदण्ड की सभी तन्त्रिकायें सामंजस्य की स्थिति में आ जाती हैं। यह गहरे श्वास को अभिप्रेरित करता तथा अवरुद्ध श्वसन क्षेत्रों को खोलता है। यह हृदय को थोड़ा उद्दीप्त करता और रक्त संचार को सुधारता है। त्वचा शुद्ध हो जाती है और शरीर में गर्मी आती है। अतिरिक्त चर्बी जल जाती है। सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण लाभ यह है कि सूर्य नमस्कार शरीर की प्रत्येक ग्रन्थि को प्रभावित करता है, जिससे हॉर्मोन संस्थान में सामंजस्य एवं सन्तुलन आता है। शारीरिक सन्तुलन के अतिरिक्त सूर्य नमस्कार इड़ा एवं पिंगला नाड़ियों में शीघ्रता से सन्तुलन लाता है, जिससे शरीर एवं मन के बीच आवश्यक सन्तुलन आता है और गहन शिथिलीकरण एवं ध्यान की बहुत अच्छी तैयारी होती है।

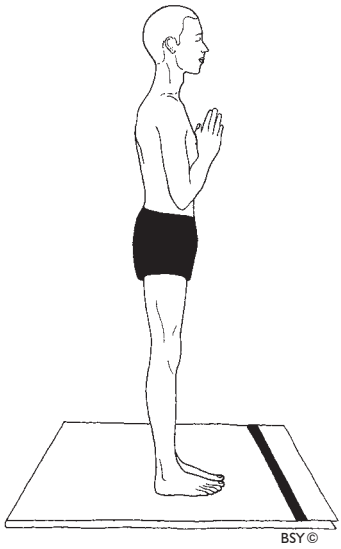

स्थिति 1: प्रणामासन
एकाग्रता अनाहत चक्र पर
मन्त्र– *ॐ मित्राय नमः*
बीज– *ॐ ह्राम्*

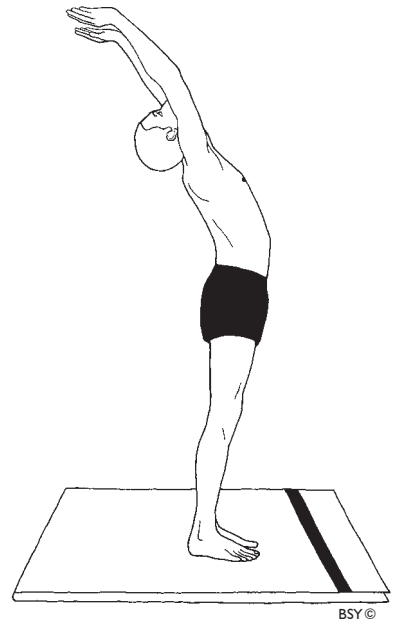

स्थिति 2: हस्त उत्तानासन
एकाग्रता विशुद्धि चक्र पर
मन्त्र– *ॐ रवये नमः*
बीज– *ॐ ह्रीम्*

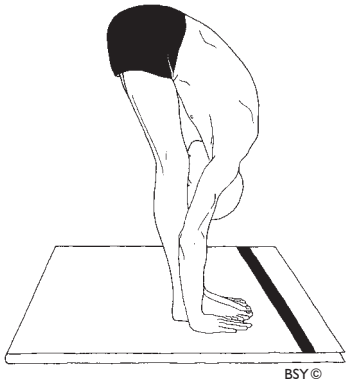

स्थिति 3: पादहस्तासन

एकाग्रता स्वाधिष्ठान चक्र पर

मन्त्र– *ॐ सूर्याय नमः*

बीज– *ॐ ह्रूम्*

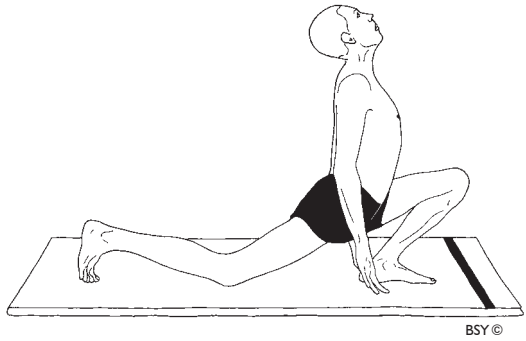

स्थिति 4: अश्व संचालन

एकाग्रता आज्ञा चक्र पर। मन्त्र– *ॐ भानवे नमः ।* बीज– *ॐ ह्रैम्*।

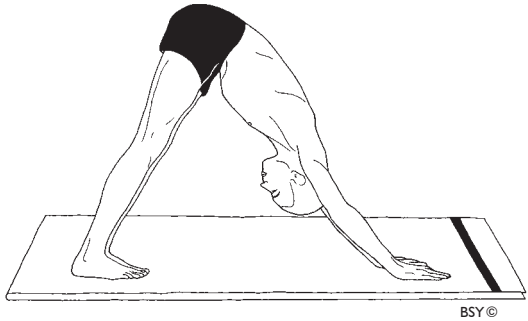

स्थिति 5: पर्वतासन

एकाग्रता विशुद्धि चक्र पर। मन्त्र– *ॐ खगाय नमः।* बीज– *ॐ ह्रौम्।*

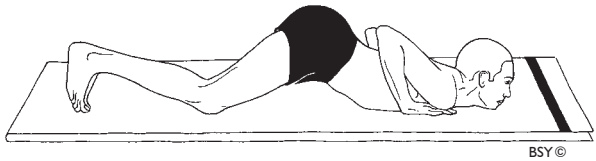

स्थिति 6: अष्टांग नमस्कार

एकाग्रता मणिपुर चक्र पर। मन्त्र– *ॐ पुष्णे नमः।* बीज– *ॐ ह्रः।*

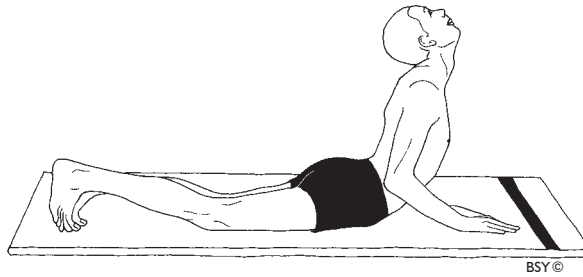

स्थिति 7: भुजंगासन

एकाग्रता स्वाधिष्ठान चक्र पर। मन्त्र– *ॐ हिरण्य गर्भाय नमः।*
बीज– *ॐ ह्रां।*

स्थिति 8: पर्वतासन

एकाग्रता विशुद्धि चक्र पर। मन्त्र– *ॐ मरीचये नमः।* बीज– *ॐ ह्रीं।*

स्थिति 9: अश्व संचालन

एकाग्रता आज्ञा चक्र पर। मन्त्र– *ॐ आदित्याय नमः।* बीज– *ॐ ह्रूं।*

स्थिति 10: पादहस्तासन

एकाग्रता स्वाधिष्ठान चक्र पर। मन्त्र– *ॐ सवित्रे नमः।* बीज– *ॐ ह्रैं।*

स्थिति 11: हस्त उत्तानासन

एकाग्रता विशुद्धि चक्र पर। मन्त्र– *ॐ अर्काय नमः।* बीज– *ॐ ह्रौं।*

स्थिति 12: प्रणामासन

एकाग्रता अनाहत चक्र पर। मन्त्र– *ॐ भास्कराय नमः।* बीज– *ॐ ह्रः।*

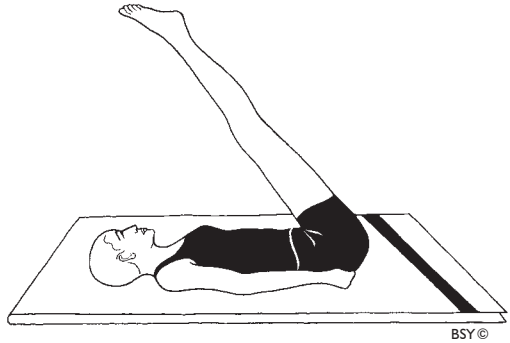

पूर्व हलासन

सशक्त उदरीय मांसपेशियाँ विकसित करता है। पाचन तन्त्र से गैस नि:सृत करता है। पीठ के निचले भाग तथा नितम्बों की मांसपेशियों एवं टांगों के पीछे के भाग को तानता है। श्रोणि तथा वृक्क में सामंजस्य लाता है, नितम्बों में जमा अतिरिक्त चर्बी को कम करने में सहायक होता है। हलासन के अभ्यास में दक्षता प्राप्त करने के लिए आवश्यक प्रारम्भिक अभ्यास है। एकाग्रता– सन्तुलन एवं श्वास पर; मणिपुर चक्र पर।

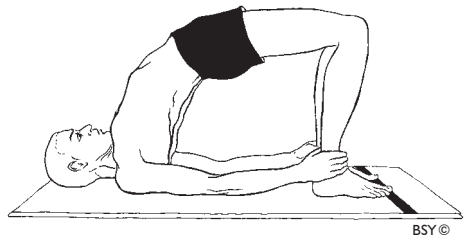

कन्धरासन

स्लिप डिस्क, साइटिका या पीठ के निचले भाग में दर्द से पीड़ितों के लिए एक अति उत्तम अभ्यास है। पीठ के ऊपरी भाग और कन्धों में दर्द को कम करता है। उदर को तानता तथा श्रोणीय अंगों एवं वृक्क में सामंजस्य लाता है। गर्भकाल के दौरान पीठ दर्द एवं कब्जियत को दूर करने में सहायक होता है। चक्रासन के अभ्यास में दक्षता प्राप्त करने के लिए आवश्यक प्रारम्भिक अभ्यास है। एकाग्रता– उदर में श्वास पर, विशुद्धि चक्र पर।

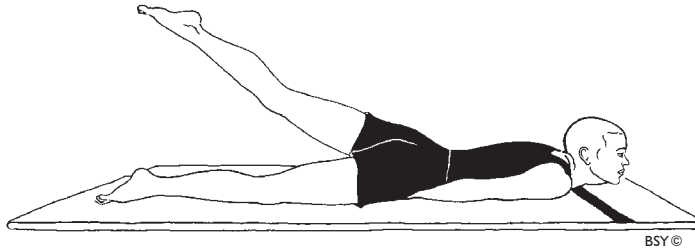

अर्द्ध शलभासन

सायटिका तथा पीठ के निचले भाग के दर्द को दूर करता है। पैरों तथा भुजाओं की मांसपेशियों को विकसित करता है। कब्ज को दूर करता है, रक्त संचार बढ़ाता है, विशेषकर चेहरे में, जिससे रंग साफ होता है। हृदय को थोड़ा उद्दीप्त करता है, तथा निम्न रक्तचाप में सहायक है। एकाग्रता – उदर में श्वास पर, विशुद्धि चक्र पर।

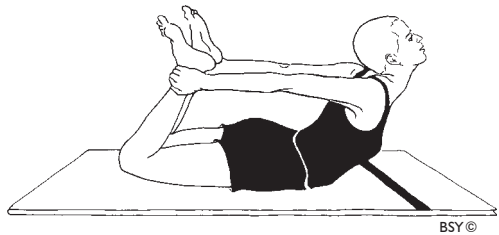

सरल धनुरासन

पीठ के ऊपरी भाग एवं कन्धों के दर्द को दूर करता है। पाचन क्रिया को तीव्र बनाता और पेट पर चढ़ी चर्बी को दूर करता है। हॉर्मोनिक सन्तुलन को बढ़ाता तथा मासिक चक्र को नियमित बनाता है। दमा के रोगियों के अवरुद्ध श्वास मार्गों को खोलने में सहायक होता है। धनुरासन के लिए तैयार बनाता है। एकाग्रता – उदर पर, विशुद्धि या अनाहत चक्र पर।

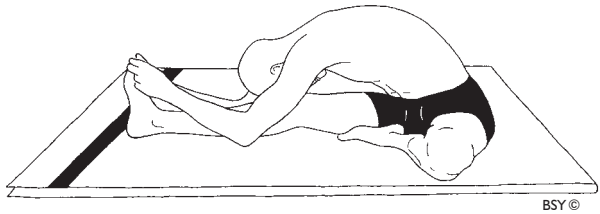

जानु शीर्षासन

पीठ तथा टांगों के पृष्ठ भाग की मांसपेशियों को तानता और नितम्बों के जोड़ों को लचीला बनाता है। चेहरे में रक्त की अतिरिक्त मात्रा भेजता है, जिससे रंग साफ होता है। यकृत, पेन्क्रियाज एवं गुर्दों में सामंजस्य लाता है और एड्रिनल ग्रन्थि की क्रियाओं में नियमन लाता है। स्लिप डिस्क तथा साइटिका से पीड़ित व्यक्तियों को इसका अभ्यास नहीं करना चाहिए। पश्चिमोत्तानासन की तैयारी के लिए इसका अभ्यास किया जाता है। एकाग्रता– पीठ तथा टांगों में खिंचाव पर, स्वाधिष्ठान चक्र पर।

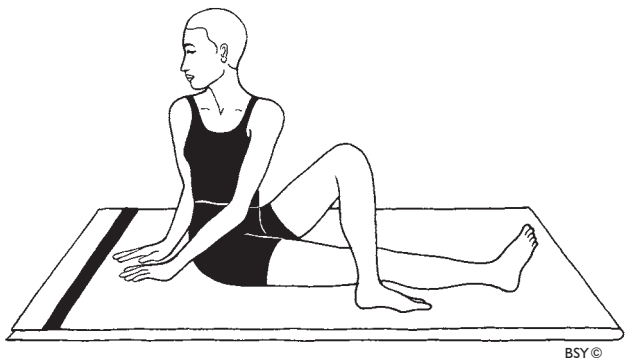

मेरु वक्रासन

मेरुदण्ड को लचीला बनाता है, संरेखण को सही रखता है। पीठ की मांसपेशियों को सबल बनाता तथा पीठ के ऊपरी एवं निचले भागों के दर्द को दूर करता है। इस कारण स्लिप डिस्क, सायटिका तथा स्पॉण्डिलाइटिस के उपचार में उपयोगी है। रक्त संचार और श्रोणि-प्रदेश में तन्त्रिका सामंजस्य में सुधार लाता है, जिससे महिलाओं की सभी प्रकार की समस्याओं को दूर करने में सहायता मिलती है। एकाग्रता– मेरुदण्ड के मरोड़ पर, मणिपुर चक्र पर।

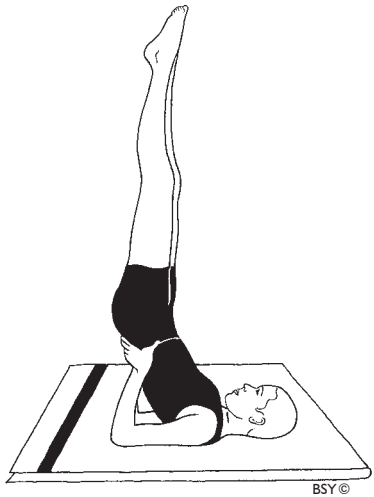

विपरीतकरणी आसन

महिलाओं के लिए विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि यह गर्भाशय को श्रोणि-गुहा में सही स्थिति में लाने में सहायक होता है। भ्रंश से पीड़ित व्यक्तियों के लिए अत्यावश्यक अभ्यास है, मासिक के समय होने वाले दर्द तथा मासिक चक्र की अनियमितता को दूर करने में भी सहायक होता है। सिर तथा चेहरे में रक्त की अतिरिक्त मात्रा भेजता है, जिससे रंग साफ होता और थकान दूर होती है। अपस्फीत शिरा तथा बवासीर के उपचार में भी सहायक है। यह आसन गर्दन एवं पीठ के ऊपरी भाग को तानता है, जिससे पीठ एवं सिरदर्द दूर होते हैं। शीघ्रता से विश्राम एवं शान्ति प्रदान करता है। एकाग्रता–नाभि में श्वास पर, विशुद्धि चक्र पर।

शीर्षासन – स्थिति 1 एवं 2

चेहरे में रक्त की अतिरिक्त मात्रा भेजता है, जिससे रंग साफ और आँखें तेज होती हैं। सम्पूर्ण हॉर्मोन तन्त्र को नियन्त्रित करने वाली मुख्य ग्रन्थि, पिट्यूटरी पर प्रभाव डालता है। गर्दन, कन्धों तथा भुजाओं की मांसपेशियों को सशक्त बनाता है, जिससे वे शीर्षासन के अभ्यास के लिए तैयार होती हैं। साथ ही शरीर की व्युत्क्रमित स्थिति में सन्तुलन का भाव विकसित करता है। पूर्ण शीर्षासन के अभ्यास के पूर्व इस अभ्यास में अवश्य दक्षता प्राप्त कर लेनी चाहिए।

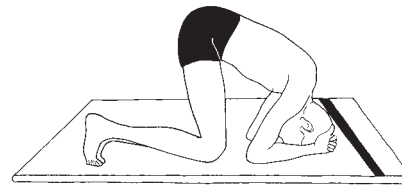

स्थिति 1

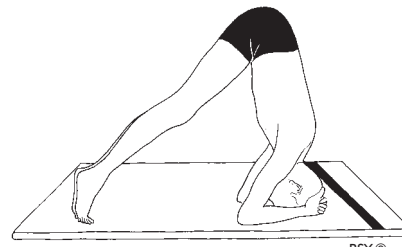

स्थिति 2

भस्त्रिका प्राणायाम

कुछ महीनों के सही अभ्यास के पश्चात् यह महिलाओं के लिए श्रम के दौरान किया जा सकने वाला एक उपयोगी अभ्यास है। भस्त्रिका फेफड़ों में कार्बन डायऑक्साइड के स्तर को घटाता है। यह दमा के रोगियों तथा फेफड़े के अन्य रोगों से पीड़ित व्यक्तियों के लिए अत्युत्तम अभ्यास है। यह गले की सूजन तथा गले में जमा कफ को दूर करता है। यह तन्त्रिका तन्त्र को सन्तुलित एवं सशक्त बनाता है, जिससे शान्ति एवं मानसिक एकाग्रता का अनुभव होता है, यह ध्यान के अभ्यास के लिए तैयार करता है। एकाग्रता–श्वास पर, उदर की गति पर, मणिपुर चक्र पर।

नाड़ी शोधन प्राणायाम

यह सुनिश्चित करता है कि सम्पूर्ण शरीर ऑक्सीजन की अतिरिक्त आपूर्ति से सम्पोषित हो रहा है। कार्बन-डाय-ऑक्साइड को कुशलतापूर्वक बाहर निकाल कर, रक्त से विषाक्त तत्त्वों को दूर कर उसे शुद्ध बनाता है। मस्तिष्क केन्द्रों को उद्दीप्त करता है, जिससे वे अपनी अधिकतम क्षमता से कार्य कर सकें। यह शान्ति, वैचारिक स्पष्टता तथा एकाग्रता लाता है। अधिक मानसिक कार्य करने वालों को यह प्राणायाम करने का सुझाव दिया जाता है। यह प्राणशक्ति को बढ़ाता तथा प्राणों में सामंजस्य लाकर तनाव एवं चिन्ता के स्तर को घटाता है। यह प्राण के अवरोधों को दूर कर इड़ा एवं पिंगला नाड़ियों में सन्तुलन लाता है। जिससे सुषुम्ना प्रवाहित होने लगती है, जो ध्यान की गहन अवस्था में ले जाती है और आध्यात्मिक जाग्रति लाती है। एकाग्रता–श्वास एवं गिनती पर, आज्ञा चक्र पर।

उच्च अभ्यास

श्वासन	शिथिलीकरण के लिए
चक्रासन	15 श्वास
भुजंगासन	15 श्वास
शलभासन	जितनी देर सम्भव हो श्वास रोकें
धनुरासन	15 श्वास
पश्चिमोत्तानासन	30 श्वास
अर्द्ध मत्स्येन्द्रासन	15 श्वास
सर्वांगासन	30–50 श्वास
शीर्षासन	30–50 श्वास
हलासन	30 श्वास
भस्त्रिका प्राणायाम	5 चक्र
नाड़ी शोधन प्राणायाम (अनुपात 1:1:2)	10 चक्र/आराम/10 चक्र
महाबन्ध	5 चक्र
अजपाजप *	

* इस अभ्यास के लिए योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट द्वारा प्रकाशित, स्वामी सत्यानन्द सरस्वती कृत *ध्यान: तन्त्र के आलोक में* तथा स्वामी निरंजनानन्द कृत *धारणा दर्शन* पुस्तकें पढ़ें।

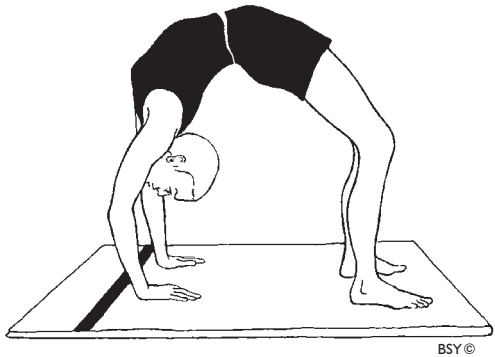

चक्रासन

पाचन एवं प्रजनन तन्त्र का अच्छा सम्पीड़न करता है। पीठ के निचले भाग तथा कन्धों के बीच के भाग को सिकोड़ता है, जिससे पीठ के निचले भाग का दर्द दूर होता है। सम्पूर्ण हार्मोन तन्त्र में पुनर्संतुलन लाने के लिए थायराइड ग्रन्थि, डिम्ब ग्रन्थि, एड्रिनल ग्रन्थि एवं गुर्दों को प्रभावित करता है, महिलाओं के लिए विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण है। शरीर में हल्केपन की अनुभूति लाता तथा ऊर्जान्वित करता है। एकाग्रता – मणिपुर चक्र पर।

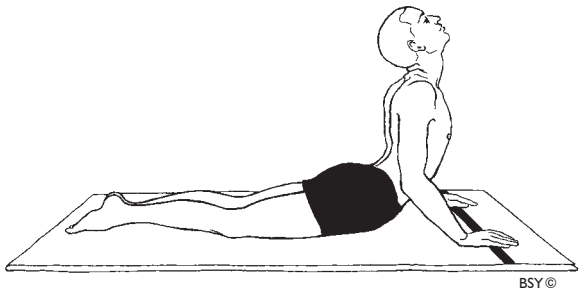

भुजंगासन

स्लिप डिस्क अथवा मासिक चक्र के कारण पीठ के निचले भाग में होने वाले दर्द को दूर करता है। संकुलित श्वास-मार्गों को खोलता है, और दमा के रोगियों के लिए विशेष रूप से उपयोगी है। गुर्दों को उत्तेजित करता है, जिससे जल-धारण में सुधार आता है। श्वेतप्रदर, कष्टपूर्ण मासिक या मासिक न होने की स्थिति में उपयोगी है। थायराइड के स्राव में सन्तुलन लाता है तथा शारीरिक ऊर्जा को बढ़ाता है। एकाग्रता – स्वाधिष्ठान चक्र पर।

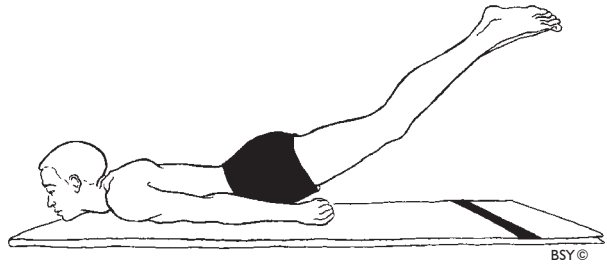

शलभासन

पीठ के निचले भाग एवं श्रोणीय-अंगों को सशक्त बनाता है। सायटिका नाड़ी को समंजित करता है, जिससे सायटिका, स्लिप डिस्क तथा पीठ दर्द में आराम मिलता है। हृदय तथा रक्त संचार को उद्दीप्त करता है। पाचन सम्बन्धी रोगों को दूर करता है। एकाग्रता – विशुद्धि चक्र पर।

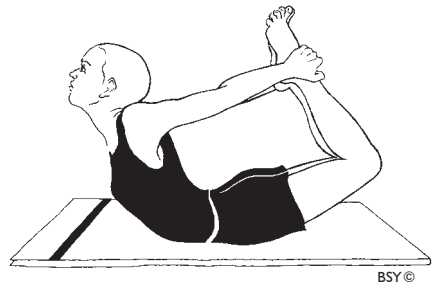

धनुरासन

पीठ, गर्दन एवं सिर के दर्द को दूर करता है। मेरुदण्ड को लचीला बनाता है, पीठ की सभी मांसपेशियों को सशक्त बनाता है। पेट की चर्बी को घटाने में सहायक होता है, उदर की मांसपेशियों को सशक्त बनाता है, गैस, कब्ज, अपच (यदि आपको पेप्टिक अल्सर है तो इसका अभ्यास न करें) को दूर करता है। यकृत में सामंजस्य लाता है और मधुमेह के उपचार में उपयोगी है। छाती में श्वास मार्गों को निर्बाध बनाता है, ब्रोंकाइटिस एवं दमा को दूर करने में सहायक होता है। हॉर्मोन संस्थान पर इसका महत्त्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है, यह मासिक एवं रजोनिवृत्ति के समय होने वाली कठिनाइयों को न्यून बनाता है। विशुद्धि, अनाहत एवं मणिपुर चक्र को प्रभावित करता है। एकाग्रता – अनाहत चक्र।

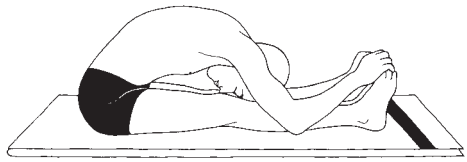

पश्चिमोत्तानासन

पीछे झुकने वाले आसनों के पश्चात् किया जाने वाला आवश्यक विपरीत आसन है। टांगों एवं पीठ की मांसपेशियों को तानता तथा नितम्ब के जोड़ों को लचीला बनाता है। मधुमेह एवं पाचन सम्बन्धी रोगों के उपचार में सहायक है। कब्ज को दूर करता है। गुर्दों एवं एड्रिनल ग्रन्थि को उत्तेजित करता है, जिससे प्राण ऊर्जा की पुनरापूर्ति होती है। श्रोणीय अंगों तथा नाड़ियों पर इसका शक्तिशाली प्रभाव होता है। रजोनिवृत्ति एवं रजस्राव से सम्बन्धित सभी कठिनाइयों को दूर करने में सहायक होता है। मन को शीघ्र विश्रान्त बनाता है, क्रोध को ठण्ढा कर शान्ति स्थापित करता है। एकाग्रता–स्वाधिष्ठान चक्र पर।

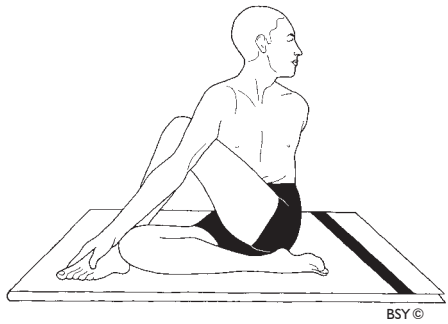

अर्द्ध मत्स्येन्द्रासन

पीठ, कन्धों एवं भुजाओं की मांसपेशियों को विश्रान्त एवं सशक्त बनाता है। मेरुदण्ड के कड़ेपन को दूर करता है, मेरुदण्ड के संरेखण को सुधारता और मेरु-तन्त्रिकाओं में सामंजस्य लाता है। उदर के अंगों की मालिश करता है, जिससे पाचन में सुधार होता और प्रजनन अंगों की संकुलता दूर होती है। पेन्क्रियाज एवं यकृत में सामंजस्य लाता है, मधुमेह के उपचार में सहायक है। एकाग्रता–आज्ञा चक्र पर।

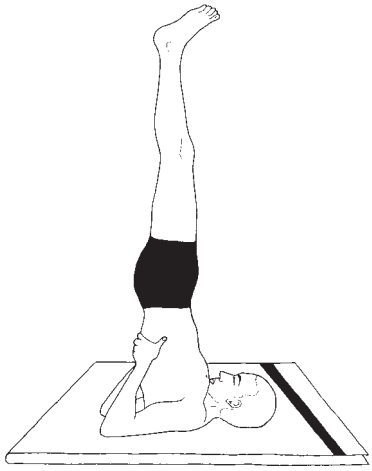

सर्वांगासन

थायराइड ग्रन्थि को प्रभावित करता है, जिससे थायराइड के स्राव में सन्तुलन आता है, जिसके कारण सम्पूर्ण चयापचय प्रभावित होता है। शरीर के समानुपातिक विकास एवं भार के समान वितरण में सहायक होता है। अपस्फीत शिरा तथा बवासीर का उपचार करता है। शरीर के सही तापमान तथा प्राण ऊर्जा के उच्च स्तर एवं सकारात्मक भावनात्मक दृष्टि को बनाये रखता है। एकाग्रता–विशुद्धि चक्र पर।

शीर्षासन

सभी आसनों में सबसे महत्त्वपूर्ण माना जाता है। यह शारीरिक एवं भावनात्मक क्रियाओं के सभी पहलुओं पर अपना प्रभाव डालता है। मस्तिष्क में रक्त संचार बढ़ाता है, जिससे मानसिक स्पष्टता आती और थकान दूर होती है। पानी के जमाव तथा मासिक के पूर्व होने वाले श्रोणीय संकुलन को कम करता है। सभी आंतरिक अंगों में सामंजस्य लाता और श्वसन क्रिया को गहन विश्रान्त बनाता है। इसका सबसे महत्त्वपूर्ण प्रभाव है कि यह थायराइड, पीनियल एवं पिट्यूटरी ग्रन्थि का नियमन करता है, जो सम्पूर्ण हॉर्मोन संस्थान को नियन्त्रित करती हैं। महिलाओं के शारीरिक एवं मनोवैज्ञानिक स्वास्थ्य के लिए बहुत महत्त्वपूर्ण अभ्यास है। एकाग्रता–चिदाकाश या सहस्रार चक्र पर।

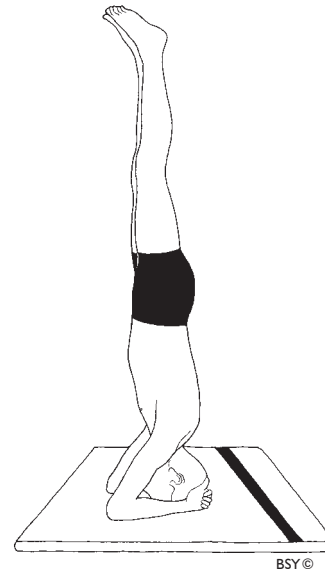

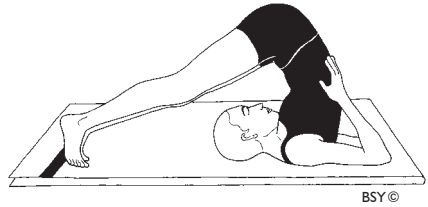

हलासन

सर्वांगासन एवं शीर्षासन का विपरीत आसन है। टांगों, नितम्बों एवं पीठ की मांसपेशियों को तानता है, पीठ के ऊपरी एवं निचले भाग के दर्द को दूर करता है। स्लिप डिस्क एवं साइटिका के रोगी इसका अभ्यास न करें। थायराइड एवं पैरा थायराइड ग्रन्थि को प्रभावित करता है, जिससे शरीर में प्राण ऊर्जा तथा भावनात्मक स्थिरता बढ़ती है। पाचन क्रिया को नियमित बनाता है, मधुमेह एवं बवासीर के उपचार में सहायक है। रंग साफ करता तथा सिर में रक्त की आपूर्ति बढ़ाता है। विश्राम एवं शान्ति की स्थिति लाता है। एकाग्रता – विशुद्धि चक्र पर।

भस्त्रिका प्राणायाम

इड़ा एवं पिंगला नाड़ियों में प्रवाह परिवर्तन के साथ पूर्ण अभ्यास। तमस् को दूर करता और मन में सामंजस्य लाता है। श्वास को विश्रान्त बनाता है, ध्यान के अभ्यास की तैयारी के लिए प्रत्याहार की स्थिति लाता है।

नाड़ी शोधन प्राणायाम

इस प्राणायाम में आगे अन्तर्कुम्भक के साथ 1:1:2 के अनुपात को अपनाते हुए अभ्यास करें। शारीरिक स्वास्थ्य एवं मनोवैज्ञानिक स्थिरता हेतु प्राणिक जालक के शुद्धिकरण के लिए अत्यावश्यक है। चिन्ता को दूर कर शान्ति एवं सकारात्मकता लाता है। प्रत्याहार की स्थिति लाने में सहायक होता है चिदाकाश के प्रति सजगता को बढ़ाता है, जिससे ध्यान के अभ्यास की तैयारी होती है।

महाबन्ध

यह अभ्यास मूल, उड्डियान एवं जालंधर बन्ध का संयोजन है। अतीन्द्रिय ऊर्जा को निम्न चक्रों से उच्च चक्रों की ओर प्रवाहित करता है। कुण्डलिनी क्रिया योग के कुछ अत्यन्त महत्त्वपूर्ण अभ्यासों के लिए आधार निर्मित करता है। ध्यान की तैयारी के लिए बहुत अच्छा अभ्यास है।

नोट

स्वामी मुक्तानंद का जन्म ऑस्ट्रेलिया में हुआ। वे सन् 1974 में बिहार योग विद्यालय आईं। उन्होंने स्वामी सत्यानंद सरस्वती के निर्देशन में कई वर्षों तक प्रशिक्षण प्राप्त किया। वे एक असाधारण योगोपचारक और प्रेरणादायक योग शिक्षिका के रूप में उभरीं।

सन् 1979 से 1985 तक उन्हें दक्षिण भारत में बिहार योग विद्यालय की बैंगलोर शाखा के आचार्य पद पर नियुक्त किया गया। यहाँ से उन्होंने अपने गुरु के मिशन के प्रचार-प्रसार के लिए संपूर्ण दक्षिण भारत में यात्राएँ कीं। उनकी प्रेरणा से अनेक लोगों के हृदय में योग की ज्योति प्रज्वलित हुई।

सन् 1985 में स्वामी मुक्तानंद वापस ऑस्ट्रेलिया गयीं और उन्होंने मनोविज्ञान विषय में स्नातक की शिक्षा पूर्ण कर ब्रिसबेन योग चिकित्सा केंद्र की स्थापना की।

SATYANANDA YOGA
BIHAR YOGA

नव योगिनी तंत्र में आज के समाज की बदलती परिस्थितियों के संदर्भ में स्त्रियों की आवश्यकताओं एवं बहुआयामी समस्याओं के योग सम्मत समाधान हेतु विस्तृत परामर्श सुझाये गये हैं। प्रत्येक नारी की अनूठी जीवन-यात्रा से संबंधित विविध पहलुओं पर वृहत् सिंहावलोकन प्रस्तुत किया गया है और नारी के विविध रूपों एवं बहुविध भूमिकाओं से अवगत कराने की चेष्टा भी की गयी है। इसमें देवी, किशोरी एवं पूर्ण विकसित नारी के वर्तमान रूप की झाँकी आपको प्राप्त होगी।

इस पुस्तक में आप नारी शरीर विज्ञान, नारी मनोविज्ञान, सामाजिक एवं सांस्कृतिक पहलू, विवाह, एकल नारी-जीवन एवं संन्यास-जीवन आदि विभिन्न शीर्षकों के अंतर्गत समग्र दृष्टि से नारी-जीवन का विश्लेषण पायेंगे। इसमें रजः स्राव, गर्भावस्था, रजोनिवृत्ति, अवसाद, पीठ-दर्द, वजन की समस्याओं से निबटने हेतु योगाभ्यास-कार्यक्रम सुझाया गया है। प्रारम्भिक, मध्यवर्ती एवं उच्च स्तरीय योगाभ्यासियों के लिए साधना का सामान्य मार्गदर्शन प्रदान किया गया है और रेखा-चित्र भी दिये गये हैं।

[bar code here]

ISBN : 978-81-86336-15-1